अथ चतुर्थं काण्डम्

अथ सप्तमः प्रपाठकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः, आदित्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्म का हृदय में प्रादुर्भाव

ब्रह्म॑ जज्ञा॒नं प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द्वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒न आ॑वः ।
स बु॒ध्न्या॑ उप॒मा अ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ वि वः॑ ॥ १ ॥

१. **वेनः**=(वेन् to go, to know, to worship) गतिशील ज्ञानी उपासक **पुरस्तात्**=सृष्टि के आरम्भ में **जज्ञानम्**=प्रादुर्भूत होनेवाले **प्रथमम्**=अति विस्तृत–'प्रकृति, जीव व परमात्मा' तीनों का ही ज्ञान देनेवाले वेदज्ञान को **सीमतः**=मर्यादा में चलने के द्वारा और **सुरुचः**=परिष्कृत रुचि के द्वारा—सात्त्विक प्रवृत्ति के द्वारा **वि आवः**=अपने हृदय में प्रकट करता है। वेदज्ञान सृष्टि के आरम्भ में प्रभु के द्वारा दिया जाता है। यह ज्ञान अति विस्तृत है—'प्रकृति, जीव व परमात्मा'- तीनों का ही प्रकाश करता है। इसका प्रकाश उसी के जीवन में होता है जो मर्यादित जीवनवाला होता है तथा उत्तम, परिष्कृत रुचिवाला होता है। २. **सः**=वह वेन **अस्य**=इस प्रभु के इन **बुध्न्याः**=अन्तरिक्ष में होनेवाले **उपमाः**=उपमा देने योग्य 'अद्भुत' **विष्ठाः**=अलग-अलग, मर्यादा में स्थित सूर्यादि लोकों को **विवः**=विशद रूप से देखता है **उ**=और **सतः असतः च**=दृश्य कार्यजगत् तथा अदृश्य कारणजगत् के **योनिम्**=आधारभूत उस प्रभु को **(विवः)**=अपने हृदय में प्रकट करता है। सूर्यादि लोकों में उस प्रभु की ही महिमा दृष्टिगोचर होती है और वह 'वेन' इस कार्यकारणात्मक जगत् के योनिभूत उस प्रभु के प्रकाश को देखने लगता है।

भावार्थ—सृष्टि के आरम्भ में वेदज्ञान का प्रकाश होता है। इसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि जीवन मर्यादा-सम्पन्न हो तथा उत्तम रुचिवाला हो। क्रियाशील ज्ञानी उपासक सब लोक-लोकान्तरों में प्रभु की महिमा को देखता है। प्रभु को ही कार्यकारणात्मक जगत् की योनि जानता है।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः, आदित्यः** ॥ छन्दः—**पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्** ॥

वेदवाणी व यज्ञ

इ॒यं पि॒त्र्या रा॒ष्ट्र्ये॒त्वग्रे॑ प्रथ॒माय॑ ज॒नुषे॑ भुवने॒ष्ठाः ।
तस्मा॑ ए॒तं सु॒रुचं॑ ह्वा॒रम॑ह्यं घ॒र्मं श्री॑णन्तु प्रथ॒माय॑ धा॒स्यवे॑ ॥ २ ॥

१. **इयम्**=यह **पित्र्या**=परमपिता प्रभु से होनवाली **राष्ट्री**=हमारे जीवनों को दीप्त करनेवाली (राज दीप्तौ) **भुवनेष्ठाः**=सब लोकों में स्थित होनेवाली वेदवाणी **प्रथमाय जनुषे**=सर्वोत्कृष्ट जीवन के लिए अथवा (प्रथ विस्तारे) विस्तृत शक्तियोंवाले जीवन के लिए **अग्रे एतु**=हमें सर्वप्रथम प्राप्त हो। वेदवाणी सृष्टि के आरम्भ में प्रभु द्वारा दी जाती है। यह सब लोकों में समानरूप से प्रादुर्भूत होती है। यह हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाती है। हमारे जीवन में इसका प्रमुख स्थान है। हम सबसे पहले इसी का स्वाध्याय करें। २. **तस्मै प्रथमाय धास्यवे**=उस सर्वमुख्य धारण करनेवाले के लिए **एतम्**=इस **घर्मम्**=यज्ञ को **श्रीणन्तु**=परिपक्व करें—संस्कृत

करें। यज्ञ के द्वारा ही उस यज्ञरूप प्रभु का यजन (उपासन) होता है। यह यज्ञ **सुरुचम्**=हमारे जीवन को सम्यक् दीप्त करनेवाला है, **ह्वारम्**=क्रोध का निवारक (दया०) अथवा धूएँ के रूप में कुटिल गतिवाला है तथा **अह्नम्**=प्रतिदिन होनेवाला है (अहनि भवम्)। यज्ञ प्रतिदिन करना होता है—इसमें अनध्याय का प्रश्न ही नहीं। यह अत्यन्त बुढ़ापे या मृत्यु पर ही छूटेगा। यह हमारे जीवन को दीप्त करता है तथा क्रोधादि आसुरभावों का निवारक है।

भावार्थ—हम जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए वेदवाणी का स्वाध्याय करें। वेद-प्रतिपादित यज्ञों को करते हुए प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः, आदित्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान का मार्ग

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ॥ ३॥

१. **यः**=जो **विद्वान् प्रजज्ञे**=ज्ञानी बनता है, वह **अस्य बन्धुः**=इस प्रभु का मित्र होता है-अपने हृदय में प्रभु को बाँधनेवाला होता है। वह **देवानाम्**=देवों के—दिव्य गुणों के **विश्वा जनिमा**=सब जन्मों को **विवक्ति**=अपने जीवन में कहता है, अर्थात् अपने जीवन को दिव्य गुण-सम्पन्न बनाता है। २. **ब्रह्मणः**=ब्रह्म से **ब्रह्म**=वेद को **उज्जभार**=उद्धृत करता है, अर्थात् हृदय में प्रभु का ध्यान करता हुआ यह विद्वान् ज्ञान को प्राप्त करता है और **मध्यात्**=मध्य से **नीचैः उच्चैः**=नीचे व ऊपर से—अन्तरिक्षलोक से तथा पृथिवी व द्युलोक से—हृदय, शरीर व मस्तिष्क से **स्वधाः**=आत्मधारण-शक्तियोंवाला यह विद्वान् **अभिप्रतस्थौ**=प्रभु की ओर प्रस्थित होता है—'हृदय, शरीर व मस्तिष्क' तीनों को उन्नत करता हुआ यह प्रभु-प्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़ता है।

भावार्थ—ज्ञानी १. प्रभु को हृदय में बाँधता है, २. दिव्य गुणयुक्त बनता है, ३. प्रभु से वेदज्ञान प्राप्त करने का यत्न करता है, ४. हृदय, शरीर व मस्तिष्क को उन्नत करता हुआ प्रभु की ओर बढ़ता है।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः, आदित्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

रोदसी स्कम्भन

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान्मही अस्कभायद्वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः॥ ४॥

१. **सः**=वह प्रभु **हि**=ही **दिवः**=द्युलोक को **सः**=वही **पृथिव्याः**=इस पृथिवीलोक को **ऋतस्थः**=ऋत में स्थापित करनेवाला है—दोनों लोकों को नियम में स्थित करता है। **मही रोदसी**=इन महान् द्यावापृथिवी को **क्षेमं अस्कभायत्**=कल्याणकारीरूप में थामता है। २. वह **महान्**=पूजनीय प्रभु **मही**=इन महान् लोकों को **अस्कभायत्**=थामता है। वह प्रभु **द्यां सद्म**=द्युलोक के रूपगृह में **च**=तथा **पार्थिवं रजः**=इस पृथिवीलोक में **विजातः**=विशेषरूप से प्रादुर्भूत हुआ है—इन लोकों में सर्वत्र प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होती है।

भावार्थ—प्रभु ही द्युलोक व पृथिवीलोक को नियम में स्थापित करते हैं। वे ही सबके कल्याण के लिए इनका धारण करते हैं। वे महान् प्रभु इन्हें थामते हैं, इनमें प्रभु की महिमा का प्रादुर्भाव होता है।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः, आदित्यः** ॥ छन्दः—**पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्** ॥

सर्वव्यापक प्रभु के उपासन के साथ दिन का आरम्भ

स बुध्न्या ∫दाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः॥ ५॥

१. **सः**=वे महान् प्रभु **जनुषः**=इस उत्पन्न होनेवाले संसार के **बुध्न्यात्**=मूल से लेकर **अग्रं, अभि**=ऊपरी भाग तक **आष्ट्र**=व्याप्त हो रहे हैं और **देवता**=दान आदि गुणों से युक्त **बृहस्पतिः**=सम्पूर्ण ज्ञान के अधिपति प्रभु **तस्य**=उस उत्पन्न लोक के **सम्राट्**=शासक हैं, २. **यत्**=जब **शुक्रम्**=यह दीप्यमान **अहः**=दिन **ज्योतिषः**=द्योतमान सूर्य से **जनिष्ट**=प्रकट होता है, **अथ**=तब **द्युमन्तः**=ज्ञान की दीप्तिवाले **विप्राः**=मेधावी पुरुष **विवसन्तु**=अपने-अपने कर्मों में विविधरूप से प्रवृत्त होते हैं, अथवा हवि के द्वारा देवों का परिचरण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु एक सिरे से दूसरे सिरे तक सर्वत्र व्याप्त हैं। वे ही इस ब्रह्माण्ड के शासक हैं। ज्ञानी लोग सूर्योदय होते ही उस प्रभु का उपासन करते हैं और अपने कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः, आदित्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे

नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन्नु॥ ६॥

१. **नूनम्**=निश्चय से **अस्य**=इस **पूर्व्यस्य**=सृष्टि से पूर्व होनेवाले (हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे) **महो देवस्य**=महान् देव के **तत् धाम्**=उस तेज को **काव्यः**=ज्ञानी पुरुष **हिनोति**=अपने अन्दर प्रेरित करता है। ज्ञानी सूर्योदय होते ही प्रभु के सम्पर्क में आता है और प्रभु के तेज को अपने में ग्रहण करता है। २. **इत्था**=इसप्रकार **एषः**=यह ज्ञानी **नु**=अब **ससन्**=सोता हुआ रात्रि के **पूर्वे अर्धे**=पहले आधे भाग के **विषिते**=(षोऽन्तकर्मणि, सित=finished, ended) समाप्त होने पर **बहुभिः साकम्**=अपने परिवार के बहुत व्यक्तियों के साथ **जज्ञे**=उदित हो उठता है। रात्रि के पिछले प्रहर में उठकर यह सपरिवार उपासना आदि कर्मों में प्रवृत्त होता है। वस्तुतः प्रभु के तेज को प्राप्त करने का यही मार्ग है।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष प्रभु के तेज को अपने में प्रेरित करता है। इसी उद्देश्य से यह (उत्थाय पश्चिमे यामे) रात्रि के पूर्वार्द्ध में निद्रा लेकर उत्तरार्द्ध में प्रभु की उपासना के लिए उठ खड़ा होता है।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**बृहस्पतिः, आदित्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

नम्रता द्वारा प्रभु का ज्ञान

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत्स्वधावान्॥ ७॥

१. **यः**=जो **अथर्वाणम्**=(थर्वतिचरतिकर्मा) निश्चल, कूटस्थ **पितरम्**=सबके पालक **देवबन्धुम्**=देववृत्ति के व्यक्तियों के बन्धु **च**=और **बृहस्पतिम्**=ब्रह्मणस्पति—ज्ञान के स्वामी—प्रभु को **नमसा अवगच्छात्**=नमन के द्वारा जानता है। वह जानता है **यथा**=कि हे प्रभो! **त्वम्**=आप **विश्वेषां जनिता असः**=सबके प्रादुर्भूत करनेवाले हैं। उपासक नम्रता के द्वारा प्रभु को सबके उत्पादक के रूप में जान पाता है। २. यह जानता है कि **कविः**=वे प्रभु क्रान्तदर्शी

हैं—सर्वज्ञ हैं, **देवः**=प्रकाशमय हैं—सबके प्रकाशित करनेवाले हैं, वे सब-कुछ देनेवाले हैं (देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा)। **न दभायत्**=वे प्रभु उपासक को कभी हिंसित नहीं होने देते, वासनाओं के आक्रमण से उपासक को प्रभु ही बचाते हैं, **स्व-धावान्**=प्रभु आत्मधारण-शक्तिवाले हैं अथवा (स्वधा-अन्न) धारण करने के लिए सब अन्नों को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—नम्रता द्वारा हम प्रभु के स्वरूप को जानने का प्रयत्न करें। इन्हें सर्वोत्पादक, सर्वज्ञ, सर्वप्रद, रक्षक व अन्नदाता के रूप में देखें। अगले सूक्त का ऋषि भी 'वेन' ही है—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

आत्मदाः, बलदाः

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं उपासते प्रशिषं यस्यं देवाः।
योऽ३स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवायं हविषा विधेम॥ १॥

१. **यः**=जो **आत्मदाः**=जीवों का हित सिद्ध करने के लिए अपने को दे डाले हुए हैं—उस प्रभु का प्रत्येक कार्य जीवों की उन्नति के लिए है, **बलदाः**=जो प्रभु सब शक्तियों को देनेवाले हैं, **विश्वे**=सभी **यस्य उपासते**=जिसकी उपासना करते हैं, कष्ट आने पर सभी उस प्रभु का स्मरण करते हैं, परन्तु **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **यस्य**=जिसकी **प्रशिषम्**=आज्ञा को उपासित करते हैं। देव सदा प्रभु की आज्ञा की उपासना करते हैं—प्रभु के निर्देशों के अनुसार चलते हैं। २. **यः**=जो प्रभु **अस्य**=इस **द्विपदः**=दो पैरवाले पक्षियों और **यः**=जो **चतुष्पदः**=चौपाये पशुओं के **ईशे**=ऐश्वर्य को स्थापित करनेवाले हैं, पशु-पक्षियों में वासनारूप से ऐश्वर्यों की स्थापना करनेवाले हैं। मधुमक्षिका को मधु-निर्माण की क्या ही अद्भुतशक्ति उसने प्राप्त कराई है? चील को उड़ने की, सिंह को तैरने की, इसीप्रकार सब कौशलों को मानव के लिए आदर्श के रूप में प्रभु ने उस-उस पशु-पक्षी में रक्खा है। उस **कस्मै**=आनन्दमय **देवाय**=देव के लिए, प्रकाशमय प्रभु के लिए **हविषा**=दानपूर्वक अदन के द्वारा **विधेम**=हम पूजा करते हैं। प्रभु देव हैं, दानवाले हैं, सब-कुछ दे डालते हैं। हम भी देव बनें, देव बनकर ही प्रभु का सच्चा उपासन होता है।

भावार्थ—सब शक्तियों को देनेवाले उस प्रभु की हम उपासना करें। प्रभु के निर्देशों के अनुसार चलें, सदा बचे हुए को खानेवाले बनें। यज्ञरूप प्रभु का उपासन इसीप्रकार हो सकता है।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अनन्य शासक प्रभु

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूवं।
यस्यं छायामृतं यस्यं मृत्युः कस्मै देवायं हविषा विधेम॥ २॥

१. **यः**=जो **प्राणतः**=श्वासोच्छ्वास लेनेवाले और **निमिषतः**=आँख मूँदे हुए, अर्थात् सुप्त-से—जड़ **जगतः**=जगत् का—चराचर व स्थावर-जंगम जगत् का **महित्वा**=अपनी महिमा के कारण **एकः राजा बभूव**=अकेले ही शासक हैं। प्रभु किसी अन्य की सहायता बिना ही सम्पूर्ण संसार का शासन कर रहे हैं। प्रभु की महिमा महान् है। २. **यस्य**=जिस प्रभु का—प्रभु से किया गया **छाया**=छेदन-भेदन (छो छेदने) **अमृतम्**=हमारे लिए अमृतत्व को देनेवाला है, प्रभु से दिया गया दण्ड हमारी उन्नति का ही कारण होता है। **यस्य**=जिस प्रभु की प्राप्त कराई गई **मृत्युः**=मृत्यु

भी हमारी अमरता के लिए ही है, उस **कस्मै**=आनन्दमय **देवाय**=सर्वप्रद व प्रकाशमय प्रभु के लिए हम **हविषा**=दानपूर्वक अदन से **विधेम**=पूजा करते हैं। प्रभु यज्ञरूप हैं। हम भी यज्ञशेष का सेवन करते हुए प्रभु का सच्चा पूजन कर पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अनन्य शासक हैं। प्रभु से दिया गया दण्ड व प्रभु-प्राप्त मृत्यु हमारे भले के लिए ही है। यज्ञशेष का सेवन करते हुए हम प्रभु का उपासन करें।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

यस्य असौ पन्थाः रजसो विमानः

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम्।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ३॥

१. **यम्**=जिस प्रभु को **रोदसी**=ये द्यावापृथिवी **अव-तः**=रक्षण के हेतु से **अह्वयेथाम्**=पुकारते हैं। ये द्यावापृथिवी **क्रन्दसी**=(क्रन्दन्ति क्रोशन्ति अनयोराश्रिता जनाः) प्रभु को पुकारनेवाले हैं, इनमें स्थित लोग **भियसाने**=भयभीत होते हुए सदा रक्षणार्थ प्रभु को पुकारते हैं। ये द्यावापृथिवी प्रभु की व्यवस्था में **चस्कभाने**=एक-दूसरे का धारण किये हुए हैं। यह पृथिवी यज्ञों द्वारा द्युलोक का धारण करती हैं, द्युलोक वृष्टि द्वारा पृथिवी का धारण करता है। २. **यस्य**=जिस प्रभु का **असौ**=वह **पन्थाः**=मार्ग—प्रभु-प्राप्ति का मार्ग **रजसः विमानः**=रजोगुण का विशेषरूप से माप-तोलकर निर्माण करनेवाला है, अर्थात् प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में—देवयान में—सत्त्वगुण के साथ रजोगुण का परिमित अंश होता है, जो सत्त्वगुण को क्रियाशील बनाये रखता है। यह देववृत्ति का मनुष्य इसीलिए सात्त्विक होते हुए भी क्रियाशील होता है। हम उस आनन्दमय देव के लिए हवि के द्वारा पूजन करें।

भावार्थ—सारा संसार रक्षण के लिए प्रभु को पुकारता है। प्रभु-प्राप्ति का सात्त्विक मार्ग रजोगुण के उचित पुट के कारण क्रियाशील होता है। हम यज्ञरूप प्रभु का हवि के द्वारा पूजन करें।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

त्रिलोकी व सूर्य में प्रभु की महिमा का दर्शन

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्व१न्तरिक्षम्।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥

१. **यस्य**=जिसकी **महित्वा**=महिमा से **द्यौः**=यह द्युलोक **उर्वी**=विस्तीर्ण हुआ है **च**=और जिसकी महिमा से **पृथिवी**=यह पृथिवी **मही**=महत्त्वपूर्ण हुई है, **यस्य**=जिसकी महिमा से ही **अदः**=वह **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्षलोक **उरु**=विस्तीर्ण हुआ है, उस आनन्दमय देव का हम दानपूर्वक अदन से पूजन करें। २. उस देव का पूजन करें **यस्य**=जिसकी महिमा से **असौ**=वह **सूरः**=सूर्य **विततः**=अपने प्रकाश से सर्वत्र फैला-सा हुआ है।

भावार्थ—यह द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक व द्युलोकस्थ सूर्य—ये सब उस प्रभु की महिमा का प्रकाश कर रहे हैं, प्रभु की महिमा से ही ये विस्तीर्ण हो रहे हैं। हम हवि के द्वारा इस प्रभु का पूजन करें।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'पर्वतों, समुद्रों, पृथिवी व दिशाओं' में प्रभु की महिमा का दर्शन

यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ५॥

१. उस आनन्दमय देव का हम हवि के द्वारा पूजन करें **यस्य महित्वा**=जिसकी महिमा से **विश्वे**=सब **हिमवन्तः**=हिमाच्छादित पर्वत खड़े हैं, **यस्य**=जिसकी महिमा से **इत्**=ही **समुद्रे**=समुद्र में भी **रसाम्**=रसों की उत्पत्ति-स्थान पृथिवी को **आहुः**=कहते हैं। चारों ओर समुद्र है, बीच में यह पृथिवी है। समुद्रों से आवृत यह पृथिवी भी प्रभु की महिमा का प्रकश कर रही है। २. **च**=और **इमाः**=ये **प्रदिशः**=फैली हुई दिशाएँ **यस्य**=जिस प्रभु की **बाहू**=बाहु स्थानापन्न हैं, उस आनन्दमय देव का हम हवि के द्वारा पूजन करें।

भावार्थ—हिमाच्छादित पर्वतों में, समुद्र के मध्य में स्थित इस पृथिवी में, इन विस्तृत दिशाओं में—सर्वत्र प्रभु क महिमा का प्रकाश हो रहा है। हम इस प्रभु का हवि के द्वारा पूजन करें।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्** ॥

अपो वै द्यौः

आपो अग्रे विश्वमावन्गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः।
यासु देवीष्वधि देव आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ६॥

१. **आपो वै द्यौ** (शत० ६.४.१.९) **आपो वै दिव्यं नभः** (शत० ६.८.५.३) इन वाक्यों के अनुसार द्युलोक (आकाश) ही 'आपः' है। यह आकाश भी प्रभु से प्रादुर्भूत होता है—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। इस आकाश में ही सारा संसार गर्भरूप से रहता है। **आपः**=यह आकाश व दिव्य नभ (Nebula) ही **अग्रे**=आरम्भ में **विश्वम्**=सम्पूर्ण विश्व को **आवन्**=अपने में (अरक्षत्) रखता था, **गर्भं दधानाः**=इन्होंने ही इसे गर्भरूप से धारण किया हुआ था। **अमृताः**=यह द्युलोक अविनाशी है। स्वामी दयानन्द के शब्दों में 'उत्पन्न-सा' होता है, वस्तुतः यह तो सदा से है। **ऋतज्ञाः**=ये द्युलोक ही वृष्टि-जल को (ऋत-rain-water) जाननेवाले हैं, यहीं से वृष्टि होती है। २. **यासु**=जिस **देवीषु**=प्रकाशमय द्युलोक में **अधि देवा आसीत्**=अधिष्ठातृरूपेण प्रभु थे। प्रभु से अधिष्ठित ही यह आकाश सम्पूर्ण विश्व को जन्म देता है। उस **कस्मै**=आनन्दमय **देवाय**=सर्वप्रद प्रभु के लिए **हविषा**=दानपूर्वक अदन के द्वारा **विधेम**=पूजा करें।

भावार्थ—सम्पूर्ण संसार इस आकाश के गर्भ में है। प्रभु से अधिष्ठित आकाश विश्व को जन्म देता है। इस प्रभु के लिए हम हवि द्वारा पूजन करनेवाले हों।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्** ॥

'हिरण्यगर्भ' प्रभु

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ७॥

१. **हिरण्यगर्भः**=ज्योतिर्मय पदार्थों को गर्भ में धारण करनेवाला वह प्रभु **अग्रे समवर्त्तत**=पहले से ही है—वह सृष्टि से पूर्व है। वह कभी उत्पन्न नहीं होता। **जातः**=सदा से प्रादुर्भूत हुआ-हुआ वह प्रभु **भूतस्य**=प्राणिमात्र का **एकः**=अकेला ही **पतिः आसीत्**=रक्षक है। वे प्रभु सृष्टि के निर्माण व धारणरूप कार्यों में किसी के साहाय्य की अपेक्षा नहीं करते। २. **सः**=वे प्रभु ही **पृथिवीम्**=इस पृथिवी को **उत**=और **द्याम्**=द्युलोक को **दाधार**=धारण कर रहे हैं। उस **कस्मै**=आनन्दमय **देवाय**=सर्वप्रद, प्रकाशमय प्रभु के लिए **हविषा**=हवि के द्वारा **विधेम**=हम पूजन करें।

भावार्थ—सारे ब्रह्माण्ड को गर्भरूप में धारण करनेवाले प्रभु कभी बने नहीं। सदा से विद्यमान प्रभु ही प्राणिमात्र के रक्षक हैं। वे ही पृथिवीलोक व द्युलोक का धारण करते हैं। हम हवि के द्वारा उस प्रभु का अर्चन करें।

ऋषिः—**वेनः** ॥ देवता—**आत्मा** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

हिरण्यय उत्सः

आपो॑ व॒त्सं ज॒नय॑न्ती॒र्गर्भ॒मग्रे॒ समैर॑यन्।
तस्यो॒त जाय॑मान॒स्योल्ब॑ आसीद्धिर॒ण्यय॒: कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥ ८ ॥

१. **आपः**=इस द्युलोक ने **वत्सं जनयन्तीः**=सबके निवासस्थानभूत इस संसार को जन्म देने के हेतु से (वसन्ति अस्मिन् इति वत्सः) **अग्रे**=सृष्टि के आरम्भ में **गर्भम्**=गर्भरूप से अवस्थित इस संसार को **समैरयन्**=प्रेरित किया—गतिमय किया। २. **उत**=और **जायमानस्य**=उत्पन्न होते हुए **तस्य**=उस द्युलोक के गर्भरूप संसार का **उल्बः**=गर्भ-वेष्टन **हिरण्ययः आसीत्**=ज्योतिर्मय प्रभु ही थे—प्रभु ने ही इन सबको वेष्टित किया हुआ था। **कस्मै**=उस आनन्दमय **देवाय**=प्रकाशमय प्रभु के लिए **हविषा विधेम**=दानपूर्वक अदन द्वारा पूजन करें।

भावार्थ—द्युलोक से जन्म लेनेवाला यह सारा संसार प्रभु से वेष्टित था। हम उस ज्योतिर्मय प्रभु का हवि के द्वारा अर्चन करें।

विशेष—अगले सूक्त का ऋषि 'अथर्वा' है—प्रभु-पूजन से अपनी वृत्ति को स्थिर बनानेवाला। वह प्रयत्न करके कामादि शत्रुओं को अपने से दूर करता है।

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**व्याघ्रः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

व्याघ्र-तस्कर-वृक

उदि॒तस्त्रयो॑ अक्रमन्व्या॒घ्रः पुरु॑षो॒ वृक॑:।
हिरु॒ग्घि यन्ति॒ सिन्ध॑वो॒ हिरु॑ग्दे॒वो वनस्पति॒र्हिरु॑ङ् नमन्तु॒ शत्र॑वः॥ १ ॥

१. **इतः**=इस स्थान से **त्रयः**=तीन **उद् अक्रमन्**=उठकर दूर चले जाएँ। एक तो **व्याघ्रः**=विशिष्ट आघ्राणमात्र से प्राणियों को नष्ट करनेवाला व्याघ्र, दूसरा **पुरुषः**=(परमेणोत तस्करः) चोर पुरुष और तीसरा **वृकः**=प्राणियों का घातक अरण्यश्वा (भेड़िया)। २. **सिन्धवः**=स्यन्दनशील नदियाँ **हिरुक् हि**=नीचे (Below) की ओर ही **यन्ति**=चली जाती हैं। यह **देवः**=रोगों को जीतनेवाला **वनस्पतिः**=वृक्ष **हिरुक्**=नीचे भूमि में, जड़के रूप मे चला जाता है। **शत्रवः**=ये शातनशील व्याघ्र आदि भी **हिरुक् नमन्तु**=नीचे झुक जाएँ। नदियाँ नीचे की ओर जा रही हैं, वृक्षों की जड़ें नीचे और नीचे चली जा रही हैं, ये हमारे शत्रु भी नीचे झुक जाएँ।

भावार्थ—व्याघ्र, तस्कर व वृक हमसे दूर ही रहें। ये हमारे सामने झुक जाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**व्याघ्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सर्प और अघायु

परे॑णैतु प॒था वृक॑: पर॒मेणो॒त तस्क॑रः। परे॑ण द॒त्वती॒ रज्जु॒: परे॑णाघा॒युर॑र्षतु॥ २ ॥

१. **वृकः**=यह प्राणिहिंसक अरण्यश्वा **परेण**=हमारे सञ्चार-मार्ग से भिन्न **पथ**=मार्ग से **एतु**=जाए, **उत**=और **तस्करः**=चोर पुरुष भी **परमेण**=उससे भी दूरतर मार्ग से जानेवाला हो। २. **दत्वती**=यह दाँतोवाली **रज्जुः**=रस्सी के आकार का सर्प **परेण**=अन्य मार्ग से जाए।

अघायुः=अघ=पाप, अर्थात् दूसरों का हिंसन चाहनेवाला यह पापी भी **परेण**=अन्य मार्ग से ही **अर्षतु**=जाए।

भावार्थ—वृक, चोर, साँप व अशुभेच्छु हिंसक हमसे सदा दूर रहें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**व्याघ्रः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

व्याघ्र के 'आँख, मुख व दाँतों का नाश'

अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि। आत्सर्वान्विंशतिं नखान्॥ ३॥

१. हे **व्याघ्र**=अपने विशिष्ट आघ्राणमात्र से नष्ट करनेवाले व्याघ्र! **ते अक्ष्यौ च**=तेरी आँखों को और **ते मुखं च**=तेरे मुख को भी **जम्भयामसि**=हम विनष्ट करते हैं। २. **आत्**=और **सर्वान्**=सब **विंशतिं नखान्**=बीसों नाखुनों को भी नष्ट करते हैं।

भावार्थ—व्याघ्र आदि के उन अङ्गों को नष्ट कर दिया जाए, जिनसे वे विनाश का कारण बनते हैं। इसीप्रकार राष्ट्र में हिंसकों के हिंसा-साधनों को समाप्त करके उन्हें हिंसन के अयोग्य बना दिया जाए।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**व्याघ्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'व्याघ्र, स्तेन, अहि, यातुधान व वृक' का विनाश

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि। आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम्॥ ४॥

१. **वयम्**=हम **दत्वताम्**=दाँतोंवालों में **प्रथमम्**=मुख्य—अपनी दंष्ट्राओं से फाड़ देनेवालों में प्रधानभूत **व्याघ्रम्**=व्याघ्र को **जम्भयामसि**=नष्ट करते हैं। व्याघ्रों व व्याघ्र-वृत्तिवाले पुरुषों को राष्ट्र से दूर करना आवश्यक है। २.**आत उ**=और अब इसके बाद **स्तेनम्**=चोर को नष्ट करते हैं। **अथ उ**=और अब निश्चय से **अहिम्**=सर्प को नष्ट करते हैं। **यातुधानम्**=पीड़ा का आधान करनेवाले राक्षसों को दूर करते हैं, **अथ उ**=और निश्चय से **वृकम्**=भेड़िये को व भेड़िये की वृत्तिवाले पुरुष को विनष्ट करते हैं।

भावार्थ—राष्ट्र से व्याघ्र, स्तेन, अहि, यातुधान व वृकों का दूर करना आवश्यक है। निरुपद्रव राष्ट्र में ही प्रजा उन्नति कर सकती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**व्याघ्रः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

चोर का निरादर, मार्गध्वंसक को वध-दण्ड

यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम्॥ ५॥

१. **अद्य**=आज **यः**=जो भी **स्तेनः**=चोर **आयति**=आता है, **सः**=वह **संपिष्टः**=सम्यक् पिसा हुआ—चूर्णीभूत-सा किया हुआ **अपायति**=दूर जाता है। चोर को सारा जनसमाज सामूहिकरूप से दण्डित करनेवाला हो, उन्हें कोई आश्रय देनेवाला न हो। २. जो कोई भी **पथाम्**=मार्गों के—नियमों के **अपध्वंसेन**=बुरी तरह ध्वंस से—नियमों के भंग से **एतु**=गति करे, **इन्द्रः**=राजा **तम्**=उसे **वज्रेण**=वज्र के द्वारा—विनाशक शस्त्र के द्वारा **हन्तु**=नष्ट करे। नियमों को बुरी तरह तोड़नेवाले को राजा वध-दण्ड दे।

भावार्थ—चोर को जनसमाज उचित दण्ड देता हुआ चोरी आदि से निरुत्साहित करे। सदा उलटे मार्ग से चलनेवाले को राजा वध-दण्ड दे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**व्याघ्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

हिंस्र पशुओं के भय से रहित मार्ग

मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः।
निम्रुक्ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः॥ ६॥

१. **मृगस्य**=हिंस्र पशु के **दन्ताः**=दाँत **मूर्णाः**=मूढ—खादन में असमर्थ हो जाएँ **उ**=और **पृष्टयः अपि**=इसकी पसलियाँ भी **शीर्णाः**=विनष्ट हो जाएँ, यह किसी के भी हिंसन में समर्थ न रहे। २. हे पान्थ! **गोधा**=गोह आदि प्राणी **ते**=तेरी **निम्रुक्**=दृष्टि का अविषय **भवतु**=हो। रास्ते में तुझे गोह आदि विघ्नकारक न मिलें। यह **शशयुः**=झाड़ियों में छिपकर सोनेवाला **मृगः**=हिंस्र पशु **नीचा अयत्**=निचले मार्ग से ही चला जाए—यह मार्ग में रुकावट का कारण न बने।

भावार्थ—हिंस्र पशुओं के दाँत व पसलियाँ शीर्ण कर दी जाएँ। मार्ग में गोह व हिंस्र पशुओं का भय न बना रहे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**व्याघ्रः**॥ छन्दः—**ककुम्मतीगर्भोपरिष्टाद्बृहती**॥

संयम न कि वियम

यत्संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः॥
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्॥ ७॥

१. **यत्**=चूँकि **संयमः**=जो संयम है—आत्मशासन है वह **वियमः न**=उच्छृंखलता नहीं और **यत्**=क्योंकि **वियमः**=उच्छृंखलता—नियमविरुद्ध गति **संयमः न**=संयम नहीं है। इन संयम और वियम में आकाश-पाताल का अन्तर है। २. जो संयम है, वह **इन्द्रजाः**=(इन्द्रस्य जनयिता) इन्द्र को जन्म देनेवाला है। यह संयम मनुष्य को इन्द्र, अर्थात् देवराट् बनाता है—सब दिव्य गुणों से सम्पन्न करता है। यह संयम **सोमजाः**=(सोमस्य जनयिता) शरीर में सोमशक्ति को उत्पन्न करनेवाला है—सोम (Semen) की स्थिरता का कारण बनता है। हे संयम! तू **व्याघ्रजम्भनम्**=व्याघ्र आदि हिंस्र पशुओं के समान हिंसक वृत्तियों को समाप्त करनेवाला है। संयम मनुष्य को पाशविक वृत्तियों से ऊपर उठाकर दिव्य वृत्तियोंवाला बनाता है। वियम मनुष्य में पाशववृत्तियों को प्रबल करता है।

भावार्थ—संयम हमें इन्द्र—देवराट् बनाता है। यह व्याघ्रतुल्य हिंस्रवृत्तियों का विनाश करता है। यह हममें सोम का रक्षण करता है। इसके विपरीत वियम हमें पशु ही बना डालता है।

विशेष—संयम 'सोमजाः' है, सोम को जन्म देनेवाला है। इस सोम से शक्तिशाली बनकर यह अथर्वा सदा प्रसन्नचित्त व गतिशील होता है। यह सोमजनक ओषधियों का ही प्रयोग करता है। अगले सूक्त में इसी बात का वर्णन है।

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (उच्छुष्मौषधिः)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गन्धर्व द्वारा ओषधि खनन

यां त्वा गन्धर्वो अखनद्वरुणाय मृतभ्रजे। तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम्॥ १॥

१. **यां त्वा**=जिस तुझ ओषधि को **गन्धर्वः**=ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाले ज्ञानी पुरुष ने **वरुणाय**=पाप का निवारण करनेवाले उत्तम पुरुष के लिए **अखनत्**=खोदा है, जो किन्हीं अज्ञात कारणों से **मृत-भ्रजे**=(भ्राजृ दीप्तौ) नष्ट दीप्तिवाला हो गया है, रोगवश उसकी शक्ति में

कमी आ गई है। सामान्यतः उसकी वृत्ति अच्छी है। इसके स्वास्थ्य व शक्तिवर्धन के लिए गन्धर्व एक ओषधि खोदकर लाता है। २. **ताम्**=उस **त्वा ओषधिम्**=तुझ ओषधि को **वयम्**=हम **खनामसि**=खोदते हैं, जो तू **शेपहर्षिणीम्**=(शेप=पेशस्) रूप को—आकृति को हर्षित करनेवाली है। यह ओषधि शक्ति-सम्पन्न बनाकर मृत-दीप्तिवाले चेहरे को फिर से दीप्त-सा कर देती है। इस ओषधि का सेवन करके यह वरुण फिर चमक उठता है।

भावार्थ—उत्तम वृत्तिवाले, परन्तु किसी रोगवश नष्ट दीप्तिवाले पुरुष के लिए ज्ञानी वैद्य 'ऋषभक' आदि ओषधियों को खोदकर लाता है। इस ओषधि के सेवन से फिर सबल होकर यह वरुण चमक उठता है। ओषधि का प्रयोग ज्ञानी पुरुष को ही करना है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (उच्छुष्मौषधिः)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उषा-जागरण व प्रभु-स्तवन

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः। उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना॥ २॥

१. **उषाः उत्**=(एजत्) उषा का उदय हुआ है, **उ**=और **सूर्यः उत्**=सूर्य ऊपर उठा है। इस सूर्योदय काल में **इदम्**=यह **मामकम्**=मेरे द्वारा किया जानेवाला **वचः**=स्तुति-वचन भी **उत्**=उच्चरित हुआ है। २.यह—गतमन्त्र के अनुसार गन्धर्व से खोदी गई ओषधि का सेवन करनेवाला पुरुष **वाजिना**=शक्तिदेनेवाले **शुष्मेण**=शत्रु-शोषक बल से **उद् एजतु**=ऊपर गतिवाला हो, उन्नत हो। यह **प्रजापतिः**=उत्तम प्रजाओं का स्वामी बने—उत्तम सन्तानों को प्राप्त करे और **वृषा**=शक्तिशाली हो।

भावार्थ—उषा में प्रबुद्ध होकर सूर्योदय के साथ ही हम प्रभु-स्तवन करनेवाले बनें। उत्तम ओषधियों के प्रयोग से उत्तम सन्तानोंवाले व शक्तिशाली हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (उच्छुष्मौषधिः)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

तपे हुए सोने के समान

यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति। ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः॥ ३॥

१. **यथा**=जिस प्रकार **विरोहतः**=स्वास्थ्य में विशिष्ट रूप से उन्नत होते हुए **ते**=तेरा चेहरा **अभितप्तम् इव**=तपे हुए स्वर्ण के समान **अनति स्म**=प्राणित होता है, **ततः**=उस प्रकार **इयम्**=यह **ओषधिः**=ओषधि **ते**=तेरे शरीर को **शुष्मवत्तरम्**=अतिशयित बलवाला **कृणोतु**=कर दे।

भावार्थ—ओषधि-प्रयोग से पूर्ण स्वस्थ हुआ-हुआ यह पुरुष सबल होकर इसप्रकार चमक उठे कि इसका चेहरा तपे हुए सोने के समान दीप्त हो उठे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (उच्छुष्मौषधिः)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सुषमा-सारा (ओषधि)

उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम्। सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन्धेहि तनूवशिन्॥ ४॥

१. **ओषधीनाम्**=ओषधियों में यह ओषधि **शुष्मा**=रोगरूप शत्रुओं के शोषक बलवाली है **ऋषभाणाम्**=शक्तिसेचन-समर्थ ओषधियों में यह **सारः**=सारभूत व उत्कृष्ट है। यह ओषधि इस वरुण को (वरुणाय मृतभ्रजे-मन्त्र १) **उत्**=फिर से उठा दे—उन्नत बलवाला करे। २. हे **तनूवशिन्**=शरीर को वश में करनेवाले **इन्द्र**=जितेन्द्रिय पुरुष! तू **अस्मिन्**=अपने इस शरीर में **पुंसाम्**=शक्तिशाली पुरुषों में होनेवाले **वृष्ण्यम्**=वीर्य को **संधेहि**=सम्यक् धारण कर।

भावार्थ—शक्तिवर्धक ओषधि के प्रयोग से यह मृत-सी दीप्तिवाला रुग्ण पुरुष उठ खड़ा हो। शरीर को वश में रखता हुआ यह उत्कृष्ट शक्ति को धारण करे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (उच्छुष्मौषधिः)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'आर्शम्' वृष्ण्यम्

अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम्। उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम्॥ ५॥

१. ओषधियों से उत्पन्न होनेवाली शक्ति के विषय में कहते हैं कि तू **अपाम्**-जलों का **प्रथमजः**=प्रथम स्थान में होनेवाला **रसः**=रस है, **अथ उ**=और निश्चय से **वनस्पतीनाम्**=वनस्पतियों का सार है। वनस्पतियाँ जल से ही परिपोषित होती हैं। उन वनस्पतियों में यह जल ही रोग निवारक तत्त्वों की स्थापना करता है 'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा'। २. **उत**=और यह जलों और वनस्पतियों का रस **सोमस्य**=सोमशक्ति का—वीर्य का **भ्राता असि**-भरण करनेवाला है **उत**=तथा तू वह **वृष्ण्यम्**-वीर्य है जो **आर्शम्**-(ऋश्-to kill) रोग-कृमियों को नष्ट करनेवाला है और पुरुषों को (ऋश=to go) गतिशील बनानेवाला है।

भावार्थ—जलों व ओषधियों के सेवन से शरीर में उस सोम (वीर्य) की उत्पत्ति होती है जो हमें नीरोग बनाकर खूब गतिशील बनाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः, सविता, सरस्वती, ब्रह्मणस्पतिः**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

धनुः इव तानया पसः

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः॥ ६॥

१. हे **अग्ने**-अग्रणी प्रभो! **अद्य**-आज—गतमन्त्र के अनुसार ओषधियों व जलों के रस का सेवन होने पर **अस्य**-इस पुरुष के **पसः**-(राष्ट्रम्) शरीररूप राष्ट्र को **धनुः इव**-धनुष के समान **तानय**=फैलाइए। इसके शरीर-राष्ट्र की शक्तियाँ इसप्रकार फैलें, जैसेकि तीर चलाने के समय धनुष को फैलाते हैं। २. हे **सवितः**=प्रेरणा देनेवाले प्रभो! **अद्य**=आज आप उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराते हुए इस पुरुष के शरीर-राष्ट्र का वर्धन कीजिए। हे **देवि**-दिव्य गुणों को जन्म देनेवाली **सरस्वति**=विद्या की अधिष्ठातृदेवते! तू **अद्य**=आज इसके ज्ञान का वर्धन करती हुई इसके शरीररूपी राष्ट्र का वर्धन कर। हे **ब्रह्मणस्पते**=(ब्रह्म=तपः) तपों के रक्षक प्रभो! **अद्य**-आज आप **अस्य**-इस पुरुष को तपस्वी बनाते हुए इसके शरीर-राष्ट्र का वर्धन कीजिए।

भावार्थ—आगे बढ़ने की भावना, प्रभु की प्रेरणा, विद्या का आराधन व तपस्या हमारे शरीर-राष्ट्र का वर्धन करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पतिः (उच्छुष्मौषधिः)**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

अग्लान मन से

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि।
क्रमस्वर्शइव रोहितमनवग्लायता सदा॥ ७॥

१. प्रभु कहते हैं कि **अहम्**=मैं **ते पसः**=तेरे शरीररूप राष्ट्र को इसप्रकार **आतनोमि**=विस्तृत करता हूँ, **इव**=जैसेकि **ज्याम्**=डोरी को **धन्वनि अधि**-धनुष पर फैलाते हैं। तेरा यह शरीर-राष्ट्र जलों व ओषधियों के रसों के सेवन से विस्तृत शक्तिवाला बन जाए। २. हे विस्तृत शक्तिवाले पुरुष! **इव**=जैसे **ऋशः**=हिंस्र पशु (ऋश् to kill) **रोहितम्**=मृग पर आक्रमण करता है, इसीप्रकार तू **सदा**-सदा **अनवग्लायता**-ग्लान न होते हुए मन से **आक्रमस्व**=जीवन-मार्ग पर आक्रमण करनेवाला बन। सब विघ्नों को जीतता हुआ तू आगे बढ़।

भावार्थ—शरीर की शक्तियों का वर्धन करते हुए हम अग्लान मन से विघ्नों पर आक्रमण

करते हुए आगे बढ़ें।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**वनस्पति: (उच्छुष्मौषधि:)**॥ छन्द:—**अनुष्टुप्**॥

'अश्व व ऋषभ' के समान शक्तिवाला बनना

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन्धेहि तनूवशिन्॥ ८॥

१. हे **तनूवशिन्**-शरीर को वश में करनेवाले पुरुष! तू **अस्मिन्**-इस शरीर में **तान्** उन **वाजान्** शक्तियों को **धेहि**-धारण कर **ये वाजा:, अश्वस्य** जो शक्तियाँ घोड़ों की हैं, घोड़े के समान तू इस शरीर को सबल बना। यह चलते हुए कभी थके नहीं। **अश्वतरस्य**=खच्चर की जो शक्तियां हैं, उन्हें तू धारण कर। तू खच्चर के समान कार्यभार को वहन करनेवाला बन। **अजस्य** बकरे की जो शक्तियाँ हैं, तू उन्हें धारण कर। तू अज के समान गतिशील हो तथा सब रोगों को दूर फेंकनेवाला हो। **च** और **पेत्वस्य**-मेंढे की जो शक्तियाँ हैं, उन्हें तू धारण कर। मेढा जिस प्रकार अपने विरोधियों से टक्कर लेता है, उसी प्रकार तू अपने शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला हो। २. **अथ**-और अब **ऋषभस्य** एक बैल की जो शक्तियाँ हैं, उन्हें तू धारण कर। बैल की भाँति तू कार्य शकट की धुरा का वहन करनेवाला हो।

भावार्थ—हम संयमी जीवन बिताते हुए अश्व के समान वेगवाले हों, खच्चर के समान कार्यभार का वहन करें, बकरे के समान दिनभर गतिशील हों, मेढे के समान शत्रुओं से टक्कर ले सकें तथा बैल के समान कार्य शकट की धुरा को धारण करनेवाले हों।

विशेष—इसप्रकार शक्तियों का वर्धन करता हुआ यह 'ब्रह्मा' बनता है। यह वस्तुत: राष्ट्र-यज्ञ का भी ब्रह्मा बनकर राष्ट्र का प्रबन्ध इतनी उत्तमता से करता है कि राष्ट्र में चोरी इत्यादि का कोई भय नहीं रहता, सारी प्रजा चैन की नींद सो सकती है। इस राजा का उद्देश्य यही होता है कि सारे लोग आराम से सो सकें। उनकी नींद को निर्विघ्न बनाने के लिए वह स्वयं जागरित रहता है।

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**वृषभ:, स्वापनम्**॥ छन्द:—**अनुष्टुप्**॥

सूर्यास्त के साथ सोने की तैयारी

सहस्रशृङ्गो वृषभो य: समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्ये ना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि॥ १॥

१. **सहस्रशृंग:**-हज़ारों रश्मियोंवाला **वृषभ:**=वृष्टिजल का वर्षक **य:**-जो सूर्य **समुद्रात्**= उदयाचल के परिसरवर्ति (समीपस्थ) अन्तरिक्ष प्रदेश से **उदाचरत्**-उदित होता है, **तेन** उस **सहस्येन** शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले बल को प्राप्त कराने में उत्तम सूर्य के साथ **वयम्**-हम **जनान्**-लोगों को **निस्वापयामसि**-सुलाते हैं, अर्थात् सूर्यास्त होता है—सूर्य सोता सा है और हम लोगों को भी सुला देता है। २. राजा राष्ट्र में ऐसा प्रयत्न करे कि प्रजा सूर्योदय के साथ जाग उठे और सूर्यास्त के साथ कार्य विरत हो सोने की तैयारी करे। इस स्वाभाविक जीवन के परिणामस्वरूप लोग न केवल शरीर में अपितु मन में भी स्वस्थ बने रहेंगे।

भावार्थ—राजा राष्ट्र में ऐसी व्यवस्था करे कि सभी प्रजा सूर्यास्त होने पर सोने की तैयारी करे। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वृषभः, स्वापनम्** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥

नींद के अनुकूल वातावरण

न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन्॥ २॥

१. राष्ट्र में नगरों का निर्माण इसप्रकार हो कि **वातः**=वायु **भूमिं न अतिवाति**=भूमि पर बहुत तीव्र गति से—आँधी आदि के रूप में बहनेवाला न हो। नगरों के चारों ओर एक-दो किलोमीटर चौड़े बगीचे हों। ये वायु के वेग को रोकने में सहायक होंगे। २. घरों का निर्माण भी इसप्रकार हो कि **कश्चन**-कोई भी **न अतिपश्यति**=ऊपर से एक-दूसरे घरवालों को देख न सके। सब घरवाले कुछ गुप्तता अनुभव कर सकें। ३. हे वायो! **इन्द्रसखा**=इन जितेन्द्रिय पुरुषों का मित्रभूत **चरन्** बहता हुआ तू **सर्वाः स्त्रियः**-सब स्त्रियों को **स्वापय**-सुला दे, **च**-और **शुनः च**-कुत्तों को भी सुला दें। कुत्तों का भौंकना भी नींद में विघ्न का कारण न बन जाए।

भावार्थ—नगरों व घरों का निर्माण इसप्रकार हो कि तेज हवा के झोंके न लगें तथा लोगों को अपने घरों में कुछ एकान्त-सा प्रतीत हो, कुत्तों का भौंकना भी नींद के विघ्न का कारण न बने।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वृषभः, स्वापनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

स्त्रियों की निर्भीक निद्रा

प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि॥ ३॥

१. अवस्था-भेद के अनुसार कोई नारी कहीं सोई है और कोई कहीं। **प्रोष्ठेशयाः**=(प्रोष्ठ) जो दस-बारह वर्ष की कुमारियाँ छोटे-छोटे फलकों पर सोई हैं। **तल्पेशयाः**=जो युवतियाँ खाटों पर सो रही हैं, **याः नारीः**=जो स्त्रियाँ अभी बहुत छोटी अवस्था में होने से **वह्यशीवरीः**-आन्दोलिका—हिंडोले में ही सो रही हैं तथा **याः**-जो **पुण्यगन्धयः**=पुण्यगन्धवाली **स्त्रियः**=विवाहित स्त्रियाँ हैं, **ताः सर्वाः**=उन सबको **स्वापयामसि**=हम सुलाते हैं।

भावार्थ—घरों में स्त्रियों का कमरा इसप्रकार सुरक्षित हो कि वे निश्चिन्त होकर सो सकें। यह निश्चिन्तता की निद्रा उन्हें स्वस्थ बनाएगी और वे घर को बड़ा उत्तम बना सकेंगी।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**वृषभः, स्वापनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

निश्चेष्टतामयी गाढ़ निद्रा

एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम्। अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे॥ ४॥

१. **एजत् एजत् अजग्रभम्**=प्रत्येक हिलते हुए अङ्ग को मैंने नींद के द्वारा निग्रह में किया है **चक्षुः**-आँख को व **प्राणम्**=घ्राणेन्द्रिय को (प्राणसञ्चारस्थानाश्रितं गन्धग्राहकमिन्द्रियम्-सा०), **अजग्रभम्**=निद्रा से निश्चल किया है। २. इन **रात्रिणां अतिशर्वरे**=रात्रियों के घने अन्धकार के काल में **सर्वा**-सब **अङ्गानि**=अंगों को **अजग्रभम्**=मैंने निगृहीत किया है।

भावार्थ—गाढ़ निद्रा में सब अङ्ग बिल्कुल निश्चेष्ट हो गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई मनुष्य घोड़े बेचकर सो गया है। यह गाढ़ निद्रा स्वास्थ्य के लिए अत्युत्तम होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वृषभः, स्वापनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

घर के द्वारों व इन्द्रिय-द्वारों को बन्द करना

य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन्विपश्यति।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा॥ ५॥

१. **यः आस्ते**-जो बैठा है, **यः चरति**-जो चल रहा है **च**=और **यः तिष्ठन्**-जो खड़ा हुआ **विपश्यति**-विविध दिशाओं में देख रहा है, **तेषाम्**-इन सबकी **अक्षिणि सन्दध्मः** आँखों को बन्द करते हैं। २. **यथा** जैसे **इदम्**-यह **हर्म्यम्** घर बन्द द्वारवाला किया जाता है, **तथा**-उसी प्रकार घर में रहनेवाले भी बन्द इन्द्रिय द्वारोंवाले किये जाते हैं। घर के सब द्वारों का ठीक से बन्द होना निश्चिन्तता व सुरक्षा की भावना में सहायक है तथा इन्द्रिय द्वारों का बन्द होना निद्रा की गाढ़ता की ओर ले-जाता है।

भावार्थ—हम घर के द्वारों को बन्द करके निश्चिन्त से होकर, इन्द्रिय-द्वारों को बन्द करके गाढ़ निद्रा में जानेवाले बनें। घर में कुछ व्यक्ति हिल डुल रहे हों तो भी दूसरों को ठीक नींद नहीं आ सकती।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वृषभः, स्वापनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

छोटे बालक की गाढ़ निद्रा

स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः॥ ६॥

१. **माता** इस नव उत्पन्न बालक की माता **स्वप्तु**-अब रात्रि के समय सोये। **पिता स्वप्तु**-पिता भी सोये, **श्वा स्वप्तु**-घर का कुत्ता भी सो जाए—यह भौंकता न रहे, क्योंकि बालक की नींद पर उसका हानिकर प्रभाव होगा। **विश्पतिः**-घर का मुखिया—प्रजापति भी **स्वप्तु**-सो जाए। २. **अस्यै ज्ञातयः**-इसके अन्य बन्धु बान्धव भी **स्वपन्तु**-सो जाएँ। **अयम्**-यह **अभितः जनः** चारों ओर के लोग भी **स्वप्तु**-सो जाएँ पड़ौस में भी शोर न होता रहे अथवा घर के नौकर-चाकर भी शोर न करते रहें। वे भी सोने की करें।

भावार्थ—छोटे बालक के विकास के लिए उसकी नींद बड़ी आवश्यक है। माता पिता व अन्य वन्धु बान्धव रात्रि में सब सो जाएँ, ताकि शान्त, नीरव वातावरण में बच्चा भी सोया रहे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वृषभः, स्वापनम्**॥ छन्दः—**पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्**॥

राजा जागे, सब सोएँ

स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम्।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्रइवारिष्टो अक्षितः॥ ७॥

१. राजा स्वप्न को सम्बोधित करते हुए कहता है कि **स्वप्न**-निद्रा की देवते! **स्वप्नाभिकरणेन**-नींद के सब साधनों से **सर्वं जनम्**=सब लोगों को **निष्वापय** सुला दे। राजा राष्ट्र में इसप्रकार की व्यवस्थाएँ करता है कि लोग सूर्यास्त के साथ सोने की तैयारी करें। नित्य कर्मों से निवृत्त होकर सो जाएँ। २. **आ उत्सूर्यम्**-सूर्योदय तक **अन्यान् स्वापय** हे निद्रे! औरों को तो सुला, बस **अहम्**=मैं **इन्द्रः इव**=एक जितेन्द्रिय पुरुष की भाँति **आव्यूषम्**-उषाकाल तक **जागृतात्**-जागता रहूँ। राजा ही सो गया तो राष्ट्र-रक्षा कैसे होगी? राष्ट्र-यज्ञ को चलानेवाला ब्रह्मा यह राजा ही तो है, इसके मन्त्री, कार्यकर्त्ता व सेवक ही ऋत्विज हैं। ये सो गये तो यज्ञ समाप्त हो जाएगा। राजा सोया तो राष्ट्र में सदा चोरी आदि के भय से लोग निश्चिन्त निद्रा प्राप्त

न कर सकेंगे। राजा जागता है तो प्रजा निश्चिन्त हो निन्द्रा ले पाती है। मैं **अक्षितः**-(न क्षितं यस्मात्) राष्ट्र को क्षीण न होने दूँ, **अरिष्टः**-(न रिष्टं यस्मात्) राष्ट्र को हिंसित न होने दूँ। जागता हुआ राजा ही 'अक्षित व अरिष्ट' होता है।

भावार्थ—राजा सदा जागरूक बनकर प्रजा को क्षीण व हिंसित होने से बचाए।

विशेष—राष्ट्र-रक्षा के महान् भार को उठाकर चलनेवाला 'गरुत्मान्' (गुरुं भारं उद्यम्य उड्डीय गतः) अगले सूक्त का ऋषि है। यह सब प्रकार के विषों के निवारण की व्यवस्था करता है।

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**ब्राह्मणः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'दशशीर्ष, दशास्यं' ब्राह्मण

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः। स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम्॥ १॥

१. **ब्राह्मणः**-वेदज्ञान प्राप्त करनेवाला **प्रथमः जज्ञे**=(प्रथ विस्तारे) शक्तियों का विस्तार करनेवाला होता है। **दशशीर्षः**-धर्म के दसों लक्षणों (धृति-क्षमा दम-अस्तेय-शौच-इन्द्रियनिग्रह धी-विद्या-सत्य अक्रोध) के दृष्टिकोण से यह शिखर पर होता है—यही इसके दस शिर होते हैं। यह **दशास्यः**=दस मुखोंवाला—दसों इन्द्रियों से ज्ञान व शक्ति का भोजन करनेवाला होता है। २. **सः** वह **प्रथमः**-प्रथम स्थान में स्थित (विस्तृत उन्नत शक्तियोंवाला) ब्राह्मण **सोमं पपौ**-सोम का पान करता है—वीर्यशक्ति का अपने अन्दर रक्षण करता है और परिणामतः **सः**=वह **विषम्**=विष को **अरसं चकार**=प्रभावशून्य कर देता है—विष को यह निर्वीर्य कर देता है। इसपर विष का प्रभाव नहीं होता। सोमरक्षण से जहाँ शरीर पर विषों का प्रभाव नहीं होता, वहाँ 'ब्राह्मण, दशशीर्ष व दशास्य' बनने से लोगों की विषभरी बातों का इसके मन पर कुप्रभाव नहीं पड़ता।

भावार्थ—हम ज्ञानप्रधान जीवनवाले बनकर लोगों के विषभरे शब्दों से मानस-सन्तुलन को न खोनेवाले बनें। शरीर में सोम का रक्षण करते हुए शरीर में विष का प्रभाव न होने दें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**द्यावापृथिवी, सप्त सिन्धवः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विषैली भावना को दूर करना

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत्सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम्॥ २॥

१. **यावती** जितने ये **द्यावापृथिवी**-द्युलोक व पृथिवीलोक **वरिम्णा**=विस्तार से फैले हैं, **यावत्**=जहाँ तक ये **सप्त सिन्धवः**=सात समुद्र **वितष्ठिरे**=विशेषरूप से स्थित हुए हैं, **इतः**=इस सारे प्रदेश से **ताम्**=उस **विषस्य दूषणीम्** विष को दूषित करनेवाली, अर्थात् विषप्रभाव को नष्ट करनेवाली **वाचम्**-मधुर ज्ञान की वाणी को **निरवादिषम्**-मैंने निश्चय से व्यक्तरूप से कहा। २. हम मधुर ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हुए लोकहृदय से विषभरे भावों को दूर करने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—हम उस ज्ञानमयी मधुरवाणी का उच्चारण करें जो लोगों के हृदयों से विषैले भावों को दूर करनेवाली हो।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सुपर्णः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'गरुत्मान् सुपर्ण'

सुपर्णस्त्वा गरुत्मान्विष प्रथममावयत्। नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः॥ ३॥

१. हे **विष** विष **गरुत्मान्**-कर्म व ज्ञानरूप उत्तम पंखोंवाले **सुपर्णः**-सम्यक् पालक व पूरणात्मक कर्मों में प्रवृत्त पुरुष ने **प्रथमम्**=सर्वप्रथम **त्वा आवयत्** तेरा भक्षण किया है, **न अमीमदः**-न तो तूने उसे मदयुक्त—ज्ञानविकल किया और न ही मूढ़ बनाया (रुप विमोहने)। २. ज्ञानविकल व मूढ़ बनना तो दूर रहा **उत**-प्रत्युत तू **अस्मै**-इस गरुत्मान् सुपर्ण के लिए **पितुः अभवः**=रक्षक अन्नवाला बन गया। गरुड़ पक्षी साँप को खा जाता है, परन्तु उसपर साँप के विष का घातक प्रभाव नहीं होता।

भावार्थ—हम ज्ञान व कर्मरूप उत्तम पक्षोंवाले बनें पालन व पूरणात्मक कर्मों में लगे हुए हम लोगों की विषैली बातों से ज्ञानविकल व मूढ़ न बनेंगे, अपितु उनके निन्दात्मक प्रलापों में अपनी कमियों का निरीक्षण करते हुए अपने को निर्दोष बनाने के लिए यत्नशील होंगे।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**विषम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विषदिग्ध बाण

यस्त आस्यत्पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम्॥ ४॥

१. **यः**-जो **पञ्चांगुरिः**-पाँच अंगुलियोंवाला हाथ **वक्रात्**-वक्रीभूत (टेढ़े हुए-हुए) **अधिधन्वनः चित्**-अधिज्य (डोरीयुक्त) धनुष से **अपस्कम्भस्य**-(अपस्कभ्यते धनुषि धार्यते इति बाणः) बाण के **शल्यात्**-लोहमय अग्रभाग से हे विष! **ते**-तुझे **आस्यत्** पुरुष-शरीर में फेंकता है, **अहम्**=मैं **विषम्**-उस विष को **निरवोचम्**=उचित चिकित्सा द्वारा निर्गत हुआ हुआ कहता हूँ, अर्थात् शरीर से उस विषप्रभाव को दूर कर देता हूँ।

भावार्थ—युद्ध में विषैले बाणों का प्रयोग होने पर शरीर में होनेवाले विषप्रभाव को सद्वैध शीघ्र ही दूर कर देता है।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**विषम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विष को मन्त्रयुक्त औषध से दूर करना

शल्याद्विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः।
अपाष्ठाच्छृङ्गात्कुल्मलान्निरवोचमहं विषम्॥ ५॥

१. **शल्यात्**=बाण के अयोमय अग्रभाग से होनेवाले **विषम्**-विष को **निरवोचम्**-मैंने मन्त्रयुक्त (विचारपूर्वक प्रयुक्त) औषध से निकाल दिया है, इसी प्रकार **प्राञ्जनात्**=किसी वस्तु के प्रलेप से होनेवाले विष को मैंने दूर किया है। २. **अपाष्ठात्**-बाण की नोक से—किसी नुकीले कील आदि से होनेवाले विष को मैंने दूर किया है। इसीप्रकार **शृंगात्**-किसी पशु के सींग से होनेवाले विष को तथा **कुल्मलात्** कुत्सित प्राणिमल से उद्भूत विष को मैं मन्त्रयुक्त औषध से दूर करता हूँ।

भावार्थ—विविध कारणों से उत्पन्न होनेवाले विष को एक सद्वैद्य मन्त्रयुक्त औषध से दूर करे।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**विषम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शल्य, इषु व धनुष की अरसता

अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम्।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम्॥ ६॥

१. हे **इषो**=बाण! **ते**-तेरा **शल्यः**-विषदग्ध अयोमय अग्रभाग **अरसः**=निर्विष हो जाए **अथो**-और तब हे बाण! **ते**=तेरा **विषम्**=विष **अरसम्**-निर्वीर्य—प्रभावशून्य हो जाए। २. **उत**=और **अरसस्य**-निःसार **वृक्षस्य**=वृक्ष का बना हुआ **ते**=तेरा **धनुः**-धनुष **अरसारसम्**=अतिशयेन नीरस व निर्वीर्य हो जाए।

भावार्थ—धनुषबाण व बाण का अग्रभाग सभी विष-प्रभावों से रहित हो जाएँ।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**विषम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विषदाताओं को दण्डित करना

ये अपीषन्ये अदिहुन्य आस्यन्ये अवासृजन्।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः॥ ७॥

१. **ये**-जो लोग **अपीषन्**-विषोपादान औषध को पीसकर देते हैं, **ये**-जो लोग **अदिहन्**-इस विष का लेप करते हैं, **ये आस्यन्**=जो विष को दूर से शरीर पर फेंकते हैं—ऐसिड आदि डाल देते हैं, **ये अवासृजन्**=जो समीपस्थ होते हुए अन्न-पान आदि में विष मिला देते हैं, **ते सर्वे**=वे सब **बध्रयःकृताः**=उचित दण्ड व्यवस्था के द्वारा निर्वीर्य किये जाते हैं। राजा इन्हें दण्डित करता हुआ इन पापों से रोकता है २. **विषगिरिः**=कन्दमूल आदि के विष का उत्पत्तिहेतुभूत पर्वत भी **वध्रिः कृतः**=निर्वीर्य किया गया है। ऐसे पर्वतों पर भी राजा सामान्य लोगों के आने-जाने पर प्रतिबन्ध लगाता है, तब उस पर्वत के कन्दमूल आदि का दुरुपयोग नहीं हो पाता।

भावार्थ—राजा विविध प्रकार से विष देनेवालों को दण्डित करे। विषोत्पत्ति स्थानों पर सामान्य लोगों के आने-जाने को निषिद्ध कर दे।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**विषम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विष-खनन पर प्रतिबन्ध

वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम्॥ ८॥

१. राष्ट्र में उचित नियमों के द्वारा हे **ओषधे**! विषोपादानभूत ओषधे! **ते खनितारः**-तेरे खोदनेवाले **वध्रयः**=निर्वीय हो जाएँ—इन कर्मो को करने में इनकी कमर टूट जाए। हे ओषधे! **त्वम्**=तू भी **वध्रिः असि**=निर्वीर्य हो गई है। २. वास्तव में **सः पर्वतः**=पर्वोंवाला—शिलाओं की तहोंवाला **गिरिः**=पर्वत भी **वध्रिः**=निर्वीर्य हो गया है, **यतः**=जिस पर्वत से **इदं विषम्**=यह विष **जातम्**=उत्पन्न होता है।

भावार्थ—विषौषधों को खोदनेवालों पर प्रतिबन्ध हो। विषोत्पदक पर्वतों पर भी लोगों के आने-जाने पर प्रतिबन्ध हो।

विशेष—अगले सूक्त का विषय भी यही है। 'गरुत्मान्' ही ऋषि है।

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वरणावत्याम् अधि

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि। तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम्॥ १॥

१. **इदम्**=यह **वाः**=जल **वारयातै**=विष का निवारण करता है, जो **वरणावत्याम् अधि**=उस नदी में है, जो वरण-वृक्षोंवाली है। जिस नदी के किनारे वरण वृक्ष हों, उस नदी का जल

विषनिवारक गुणों से युक्त होता है। **२. तत्र**-वहाँ—उस वरण-वृक्षवाली नदी में **अमृतस्य आसक्तिम्**-अमृत का आसेचन होता है। वरण वृक्ष के पत्तों व फूलों आदि में जो रस है, वह नदी के जल को विष-निवारक औषध सा बना देता है। **तेन** उससे **ते विषम्**-तेरे विष को **वारये**=दूर करता हूँ।

भावार्थ—घर व ग्रामों में जलों के किनारे वरण-वृक्षों का रोपण करना चाहिए, इनसे उन जलों में विष-निवारणशक्ति उत्पन्न हो जाएगी। ये जल हमें नीरोग बनाएँगे।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

करम्भ

अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम्। अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते॥ २॥

१. **प्राच्यं विषम्**=शरीर के पूर्वभाग में होनेवाला विष **अरसम्** निर्वीर्य होता है। **यत् उदीच्यम्** जो उत्तरभाग में होनेवाला विष है, वह भी **अरसम्**-प्रभावशून्य होता है। २. **अथ** और अब **इदम्**-यह **अधराच्यम्**-निचले भाग में होनेवाला विष **करम्भेण**-दधिमिश्रित सत्तुओं से (जौ के बने सत्तुओं से) **विकल्पते**=विगत सामर्थ्य होता है।

भावार्थ—दधिमिश्रित सत्तुओं के प्रयोग से सब विष प्रभाव शून्य हो जाते हैं।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'तिर्यं, पीबस्पाक उदारथि' करम्भ

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीबस्पाकमुदारथिम्।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः॥ ३॥

१. **तिर्यम्**-विष के प्रभाव को तिरोहित करनेवाले, **पीबस्पाकम्**=चरबी का ठीक से पाचन कर देनेवाले **उदारथिम्**-विषप्रभाव को दूर करके इन्द्रियों की शक्तियों को प्रकाशयुक्त करनेवाले **करम्भं कृत्वा**-दधिमिश्रित सत्तुओं को बनाकर **क्षुधा**=भूख के अनुसार **किल जक्षिवान्**-निश्चय से इस पुरुष ने खाया है। २. हे **दुष्टनो**-शरीर को दूषित करनेवाले विष! **त्वा** तुझे लक्ष्य करके ही इस करम्भ का प्रयोग किया गया है। **सः** वह तू इस करम्भ प्रयोग को **न रूरुमः** मूढ़ (मूर्च्छित) नहीं बनता।

भावार्थ— दधिमिश्रित सत्तु विषप्रभाव को दूर करते हैं, शरीर में चरबी का ठीक से पाचन करते हैं, इन्द्रियों की शक्ति का वर्धन करके उन्हें प्रकाशमय करते हैं। इनका प्रयोग होने पर ये शरीर को विषमूढ़ नहीं होने देते। ये शरीर से विषैले प्रभाव को हटाते हैं।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**वनस्पतिः**॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्**।

वचा

वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि।
प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि॥ ४॥

१. हे **मदावति** विषप्रभाव से मूर्च्छा लानेवाली—विषोपादानभूत औषध! **ते** तेरे **मदम्**-मूर्च्छाकर प्रभाव को **शरम् इव** धनुष से विमुक्त बाण की भाँति **विपातयामसि** शरीर से विलोपित करते हैं। २. **येषन्तम्**=बुद्बुदाते हुए **चरुम् इव**-चरु के समान (An oblation of rice and barly) तुझे **वचसा** वच ओषधि के प्रयोग द्वारा **प्रस्थापयामसि**-दूर भेजते हैं। (वचः-A kind of aromatic root) विष शरीर में एक विचित्र सी गरमी पैदा करता है। यहाँ इस गरमी को बुद्बुदाते हुए चरु की गरमी से उपमित किया गया है। वच ओषधि इस प्रभाव को दूर करती है।

भावार्थ—वच नामक ओषधि विष-प्रभाव को दूर कर शरीर को नीरोग और स्वस्थ बनाती है।

ऋषिः—**गरुत्मान्** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

स्थाम्नि तिष्ठ

परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि। तिष्ठा वृक्षइव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः॥ ५॥

१. **ग्रामम् इव**=ग्राम के समान—जनसमूह के समान **आचितम्**=उपचित हुए-हुए इस विष को **वचसा**=वच ओषधि के प्रयोग से **परिस्थापयामसि**=अन्यत्र स्थापित करते हैं, अर्थात् दूर करते हैं। २. हे **अभ्रिखाते**=कुदाल से खोदी गई ओषधे! तू **वृक्षः इव**=वृक्ष की भाँति **स्थाम्नि**=स्थिरता में **तिष्ठ**=स्थित हो, अपने स्थान पर वृक्ष की भाँति निश्चल होकर ठहर। तू शरीर में व्याप्त मत हो। **न रूरुपः**=तू शरीर को मूढ़ मत बना। वच के प्रयोग से गतमन्त्र की 'मदावती' का प्रभाव सीमित (localised) हो जाता है।

भावार्थ—विष के बढ़ते प्रभाव को हम वच के प्रयोग से सीमित कर देते हैं।

ऋषिः—**गरुत्मान्** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पर्वतों पर मिलनेवाली 'विषौषध'

पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन्दूर्शेभिरजिनैरुत। प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः॥ ६॥

१. हे ओषधे! **पवस्तैः**=पवन के लिए—शोधन के लिए एकत्र फेंके गये—इकट्ठे किये गये (पवमानाय अस्तैः) सम्मार्जनीतृणों से **त्वा**=तुझे **पर्यक्रीणन्**=इन लोगों ने खरीदा है, **उत**=और **दूर्शेभिः**=दुष्ट ऋश्य-सम्बन्धी **अजिनैः**=चर्मों से तुझे खरीदा है। सम्मार्जनी-तृण व अजिन देकर तेरा क्रय किया गया है। २. इसप्रकार हे **ओषधे**=विषमूलिके! **त्वम्**=तू **प्रक्रीः असि**=प्रकर्षेण खरीदी गई है। हे **अभ्रिखाते**=कुदाल से खोदी गई ओषधे! तू **न रूरुपः**=इस पुरुष को मूढ़ नहीं बनाती।

भावार्थ—सम्मार्जनी-तृणों व ऋश्य-सम्बन्धी चर्मों से विनिमय के द्वारा इस विषनाशक ओषधि को खरीदा गया है। यह मनुष्य को विषप्रभाव जनित मूर्च्छा से मुक्त करती है।

ऋषिः—**गरुत्मान्** ॥ देवता—**वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विष-चिकित्सा

अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान्नो अत्र मा दभन्तद्व एतत्पुरो दधे॥ ७॥

१. **ये अनाप्ताः**=जो अननुकूल—अविश्वसनीय, धोखेबाज लोग **वः**=तुम्हारे साथ सम्बद्ध **यानि**=जिन **प्रथमा**=मुख्य **कर्माणि**=कर्मों को **चक्रिरे**=करते हैं, उन अनाप्त पुरुषों के वे कर्म **अत्र**=यहाँ **नः वीरान्**=हमारे वीरों को **मा दभन्**=मत हिंसित करें। २. धोखेबाज लोग यदि धोखे से किन्हीं विष-प्रयोगों को करते हैं **तत्**=तो मैं **एतत्**=इस भैषज्य कर्म—विष-चिकित्सा कर्म को **वः**=तुम्हारे **पुरः**=सामने **दधे**=स्थापित करता हूँ। वरणवृक्ष के रसयुक्त जलों, दधिमिश्रित सत्तुओं व वच के प्रयोग से तुम विष-प्रभाव को दूर करो।

भावार्थ—धोखे से किसी ने विष दे दिया तो शीघ्र ही उचित भैषज्यरूप कर्म से उस विष-प्रभाव को दूर किया जाए।

विशेष—इन अनाप्त पुरुषों को प्रजा के अहितकारी कर्मों से दूर करनेवाले राजा का उल्लेख अगले सूक्त में है। वह स्थिरवृत्ति का होने से 'अ-थर्वा' कहलाता है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रस का सञ्चार करनेवाला यह 'अङ्गिराः' है अथवा सतत क्रियाशील होने से यह अङ्गिराः है, यही

अगले सूक्त का ऋषि है।

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता -**राज्याभिषेकः**, आपः (**मन्त्रोक्ता राजादयः**)॥
छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

आचार्य द्वारा राज्याभिषेक

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम्॥ १॥

१. **भूतः** ऐश्वर्य को प्राप्त यह राजा (भूतिः अस्य अस्तीति) **भूतेषू**-सब प्राणियों में **पयः**-आप्यायन (वर्धन) को **आदधाति** धारण करता है। उनके लिए आप्यायन के साधनभूत दूध आदि पदार्थों को प्राप्त कराता है। इसप्रकार **सः** वह **भूतानाम्** सब प्राणियों का—प्रजावर्ग का **अधिपतिः**-स्वामी व रक्षक **बभूव** होता है। २. **तस्य** उसके **राजसूयम्**-राज्याभिषेक कर्म को **मृत्युः चरति**-आचार्य सम्पादित करता है (आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः)। इसके पिछले जीवन को समाप्त करके इसे नया ही जीवन देता है। **सः राजा** वह राजा **इदं राज्यम्**-इस राज्य को **अनुमन्यताम्**-स्वीकार करे। यह राज्यकार्य को करनेकी स्वीकृति दे—इस बोझ को उठाने के लिए अनुकूल मतिवाला हो।

भावार्थ—आचार्य एक योग्य व्यक्ति को राज्यभार वहन करने के लिए तैयार करे। उसका राज्याभिषेक करके उसे राज्यकार्य को सम्यक् सम्पादित करने की प्रेरणा दे। यह राजा सब प्रजावर्ग का रक्षण करता हुआ उनके जीवन धारण के लिए आवश्यक दूध आदि पदार्थों को उन्हें प्राप्त कराए।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**राज्याभिषेकः**, आपः (**मन्त्रोक्ता राजादयः**)॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सपत्नहा, मित्रवर्धनः

अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन्॥ २॥

१. आचार्य राजा को राज्यसिंहासन पर बिठाता हुआ कहता है—हे राजन्! **अभिप्रेहि** इस सिंहासन की ओर बढ़ (चल)। **मा अपवेनः**-अनिच्छा व्यक्त मत कर (वेनतिः कान्तिकर्मा)। **उग्रः** उद्गूर्ण बलवाला तू शत्रूओं के लिए दुरासद (अजय्य) हो। **चेत्ता**-कार्य-अकार्य के विभाग के ज्ञानवाला तू **सपत्नहा**-शत्रुओं को नष्ट करनेवला हो। २. हे **मित्रवर्धनः**-मित्रभूत राष्ट्रों का वर्धन करनेवाले राजन्! तू **आतिष्ठ** सिंहासन पर स्थित हो और **देवाः**-देववृत्ति के ज्ञानी पुरुष **तुभ्यम्** तेरे लिए **अधिब्रुवन्** आधिक्येन उपदेश देनेवाले हों। उनके योग्य परामर्शों से तू सदा राज्यकार्यों को ठीक से करनेवाला हो।

भावार्थ—राजा तेजस्वी, कार्याकार्य विभाग को समझनेवाला व शत्रुओं का संहार करनेवाला हो मित्रों का वर्धन करनेवाला यह राजा उत्कृष्ट ज्ञानी पुरुषों से उचित परामर्शों को प्राप्त करता रहे।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**राज्याभिषेकः**, आपः (**मन्त्रोक्ता राजादयः**)॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

श्रियं वसानः

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषं छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ॥ ३॥

१. **आतिष्ठन्तम्**=सिंहासन पर आरुढ़ होते हुए इस राजा को **विश्वे**=सब **परि-अभूषन्**-चारों ओर से सेवित करनेवाले हों (परितः भवन्तु, वर्त्तन्ताम्, सेवन्ताम्)। **श्रियं वसानः**=राज्यलक्ष्मी को धारण करता हुआ यह राजा **स्वरोचिः**=स्वायत्त दीप्तिवाला—तेजस्विता से चमकता हुआ **चरति**-राज्य का परिपालन करता है। २. इस **वृष्णः**=प्रजा पर सुखों का सेचन करनेवाले **असुरस्य**=शत्रुओं का प्रक्षेपण करनेवाले इस राजा का **नाम**-यश **महत्**=महान् है। इसके नाम-श्रवण से ही शत्रु भयभीत होकर भाग उठते हैं। यह **विश्वरूपः**=शत्रु, मित्र, कलत्र आदि में नानाविध रूपवाला होता हुआ—सबके साथ तदनुरूप व्यवहार करता हुआ **अमृतानि**-अमृतत्व के प्रापक—राष्ट्र के अविनाश के साधनभूत—दण्ड युद्ध आदि कर्मों को **आतस्थौ**=(आतिष्ठतु, आचरतु) स्थिरता से करता है।

भावार्थ—सिंहासनारूढ़ राजा का सब प्रजावर्ग सेवन करता है। यह राजा दीप्तिवाला होता हुआ विचरता है। इसके नाम से ही शत्रु भयभीत हो जाते है। यह उपयुक्त कामों को करता हुआ प्रजा को अमर बनाने का प्रयत्न करता है।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**राज्याभिषेकः, आपः (मन्त्रोक्ता राजादयः)**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रजाओं का प्रिय राजा

व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो मुहीः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः॥ ४॥

१. **वैयाघ्रे**=व्याघ्र-चर्म पर, व्याघ्र-चर्म से बने हुए सिंहासन पर **अधि**-अधिष्ठित हुआ-हुआ तू **व्याघ्रः (इव)**-व्याघ्र की भाँति दुष्प्रधर्ष होता हुआ **महीः दिशः**-प्राची आदि महान् दिशाओं में **विक्रमस्व**-विक्रम कर। विजय प्राप्त करनेवाला होकर अपने को इन दिशाओं में फैला। २. तेरी शासन की प्रणाली ऐसी उत्तम हो कि **सर्वाः विशः**-सब प्रजाएँ **त्वा**=तुझे **वाञ्छन्तु**-चाहें तथा **दिव्याः**=अन्तरिक्ष से होनेवाले **पयस्वतीः**=सारवाले, वर्धन के साधनभूत **आपः**-जल भी तुझे चाहें, अर्थात् तेरे राष्ट्र में अनावृष्टि न हो।

भावार्थ—राजा सिंहासन पर बैठकर चारों ओर विजय प्राप्त करे। यह प्रजाओं का प्रिय हो। इसके राष्ट्र में अनावृष्टि न हो।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः**॥ देवता—**राज्याभिषेकः, आपः (मन्त्रोक्ता राजादयः)**॥
छन्दः—**विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

'दिव्यान्तरिक्ष व पार्थिव' जल

या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम्।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा॥ ५॥

१. **दिव्याः**-द्युलोक में होनेवाले **याः आपः**=जो जल **पयसा**=अपने सारभूत रस से **मदन्ति**=प्राणियों को आनन्दित करते हैं और जो जल **अन्तरिक्षे**-अन्तरिक्षलोक में हैं, **उत वा**=अथवा **पृथिव्याम्**-पृथिवी में हैं **तासाम्**-उन **सर्वासाम्**=लोक त्रय में अवस्थित सब **अपाम्**=जलों के **वर्चसा**=बलकर सार से **त्वा अभिषिञ्चामि**=तुझे अभिषिक्त करता हूँ। २. राज्याभिषेक के समय सब जलों को इकट्ठा करके उनसे राजा का अभिषेक करते हैं। इसप्रकार 'राजा का शासन कहाँ तक' है—यह सबको ज्ञात हो जाता है। राजा को भी राष्ट्र में सब जलों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना है। राजा के 'ब्रह्मज्य' बनने पर ही अनावृष्टि आदि होती है। राजा राष्ट्र में शिक्षा आदि की सुव्यवस्था करता है तो इसप्रकार की आधिदैविक आपत्तियाँ नहीं

आतीं।

भावार्थ—राज्याभिषेक के समय राजा को दिव्य, अन्तरिक्ष व पार्थिव—सब जलों से अभिषिक्त करते हुए प्रेरित करते हैं कि उसे इन सब जलों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना है।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**राज्याभिषेकः, आपः (मन्त्रोक्ता राजादयः)** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'प्रभु-प्रेरणा प्राप्त करनेवाला' राजा

अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत्॥ ६॥

१. हे राजन्! **दिव्याः**-आकाश से होनेवाले **पयस्वतीः**-रसमय व आप्यायन के हेतुभूत **आपः**-जलों ने **त्वा**-तुझे **वर्चसा**-रोग निवारक शक्ति से **अभि असिचन्**=सर्वतः सिक्त किया है। २. अभिषिक्त होने पर **सविता** वह प्रेरक प्रभु **त्वा**-तुझे **तथाकरत्**-इसप्रकार बनाये—ऐसी क्षमता प्राप्त कराए कि **यथा** जिससे तू **मित्रवर्धनः असः** मित्रों का वर्धन करनेवाला हो।

भावार्थ—दिव्य जलों के तेज से अभिषिक्त होकर राजा शक्तिशाली बनता है। प्रभु की प्रेरणा के अनुसार कार्य करता हुआ यह मित्रों का वर्धन करनेवाला होता है।

ऋषिः—**अथर्वाङ्गिराः** ॥ देवता—**राज्याभिषेकः, आपः (मन्त्रोक्ता राजादयः)** ॥
छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

'व्याघ्र, सिंह, द्विपी'

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः॥ ७॥

१. **एनाः**-गतमन्त्र में वर्णित '**दिव्याः पयस्वती आपः**'-दिव्य पयस्वान् जल **व्याघ्रम्** व्याघ्रवत् पराक्रमयुक्त **सिंहम्** सहनशील व सिंह तुल्य पराक्रमवाले राजा को **परिषस्वजानाः** परितः आलिङ्गन करते हुए **हिन्वन्ति** वीर्यप्रदान से प्रीणित करते हैं। ये जल **महते सौभगाय**-महान् सौभाग्य के लिए होते हैं, **समुद्रं न** जिस प्रकार नदीरूप जल समुद्र को प्रीणित करते हैं, इसीप्रकार अभिषेक के साधनभूत जल राजा को प्रीणित करते हैं। २. **अप्सु अन्तः तस्थिवांसम्**-प्रजाओं में स्थित होनेवाले इस **द्वीपिनम्** शार्दूल की भाँति अप्रधृष्ट राजा को **सुभुवः**-उत्तम स्थिति में होनेवाले सब प्रजाजन **मर्मृज्यन्ते**=अभिषेक द्वारा शुद्ध करनेवाले होते हैं। अभिषेक करते हुए वे राजा को यही प्रेरणा देते हैं कि जैसे जल बाह्य मलों का विध्वंस कर रहे हैं, इसीप्रकार तेरे अन्तःमलों का भी विध्वंस हो जाए।

भावार्थ—राजा को अभिषेक द्वारा यही प्रेरणा लेनी है कि वह अन्दर से भी उसी प्रकार पवित्र बने, जैसे ये जल उसे बाहर से पवित्र कर रहे हैं। राजा व्याघ्र, सिंह व द्वीपी के समान शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला हो।

विशेष—राजा से रक्षित राष्ट्र में प्रजा अभ्युदय व निःश्रेयस को सिद्ध करने के लिए यत्नशील होती है, प्रभु का पूजन करती हुई तपोमय जीवन बिताती है। अगले सूक्त का ऋषि यह तपस्वी 'भृगु' ही है (भ्रस्ज पाके)। यह परमेश्वर को सम्पूर्ण संसार को गति देनेवाले के रूप में देखता है। यह 'आञ्जन' गति देनेवाला प्रभु ही इस सूक्त का देवता है।

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—त्रैककुदाञ्जनम् ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

जीवनाय परिधिः

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम्। विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥ १ ॥

१. हे प्रभो! आप **त्रायमाणं जीवम्**=वासनाओं व रोगों के आक्रमण से अपनी रक्षा करनेवाले जीव को **एहि**=प्राप्त होओ। आप **पर्वतस्य**=अपना पूरण करनेवाले—अपनी न्यूनताओं को दूर करनेवाले पुरुष की **अक्ष्यम् असि**=उत्तम चक्षु हैं। हृदयस्थरूपेण आप ही उसे मार्ग दर्शन कराते हैं। २. आप **विश्वेभिः देवैः दत्तम्**=सब दिव्य गुणों के द्वारा दिये गये **जीवनाय**=जीवन के लिए **परिधिः**=प्राकार हैं—मृत्यु को हम तक न पहुँचने देने के लिए आप परिधि होते हैं, इसप्रकार **कम्** हमारे सुख का साधन बनते हैं। मृत्यु से बचाने के लिए प्रभु हमारे प्राकार बनते हैं, परन्तु प्रभु हमें प्राप्त तो तभी होते हैं जब हम दिव्य गुणों को धारण करने के लिए यत्नशील होते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपने रक्षण में प्रवृत्त पुरुष को प्राप्त होते हैं। अपना पूरण करनेवालों के ये मार्गदर्शक हैं। दिव्य गुणों को धारण करने से प्राप्त होते हैं। हमारे जीवन के लिए—मृत्यु को हम तक न आने देने के लिए ये प्राकार होते हैं।

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—त्रैककुदाञ्जनम् ॥ छन्दः—ककुम्मत्यनुष्टुप् ॥

'परिपाण' प्रभु

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि। अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥ २ ॥

१. हे प्रभो! आप **पुरुषाणाम्**=पुरुषों के **परिपाणम्**=रक्षा करनेवाले हैं। **गवाम्**=अर्थों की गमक ज्ञानेन्द्रियों के **परिपाणम् असि**=रक्षक हैं। २. तथा **अर्वताम्**=शत्रुओं के संहारक **अश्वानाम्**=सतत कर्मों में व्याप्त (अश् व्याप्तौ) कर्मेन्द्रियों के **परिपाणाय**=रक्षण के लिए **तस्थिषे**=हमारे हृदयों में स्थित होते हैं।

भावार्थ—हृदयस्थ प्रभु हमारा सर्वतः रक्षण करते हैं। प्रभु हमारी ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को सुरक्षित करते हैं। वस्तुतः इनके रक्षण द्वारा ही वे हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—त्रैककुदाञ्जनम् ॥ छन्दः—पथ्यापङ्क्तिः ॥

यातुजम्भनम्

उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ॥ ३ ॥

१. हे **आञ्जन**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले प्रभो! आप **परिपाणम् असि** सर्वतः रक्षा करनेवाले हैं, **उत**=और **यातुजम्भनम्**=यातनाओं (पीड़ाओं) के नष्ट करनेवाले हैं। २. **उत**=और **त्वम्**=आप ही **अमृतस्य**=अमृत का **वेत्थ**=ज्ञान रखते हैं। आपसे ही उपासक को अमृत (नीरोगता-प्राप्ति के साधनों) का ज्ञान होता है। इसप्रकार **अथो**=(अपि च) आप ही **जीवभोजनम्**=सब प्राणियों का पालन करनेवाले हैं। **अथो**=और आप ही **हरितभेषजम्**=पाण्डु आदि रोगों से जनित श्यामलत्व के निवर्तक हैं। प्रभु का स्मरण हमें नीरोग बनाकर दीप्ति प्राप्त कराता है।

भावार्थ—प्रभु रक्षिता हैं, पीड़ाओं के निवर्तक हैं, अमृत का ज्ञान देनेवाले हैं। वे हमारा पालन करते हैं और रोगों को दूर करते हैं।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**त्रैककुदाञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**।

प्रभु की भावना व नीरोगता

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः। ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव॥ ४॥

१. हे **आञ्जन**-सारे ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले प्रभो! **यस्य**-जिसके **अंगम् अंगम्**-एक-एक अंग में तथा **परुः परुः**-प्रत्येक पर्व में आप **प्रसर्पसि**-गतिवाले होते हो, अर्थात् जिसकी रग-रग में आप समा जाते हो **ततः**-उस पुरुष के शरीर से **यक्ष्मम्**-रोग को **विबाध से**-विशेषरूप से पीड़ित करते हो—उससे रोग को दूर कर देते हो। २. आप उस पुरुष के रोगों को पीड़ित करके इसप्रकार दूर कर देते हो **इव**-जैसेकि **उग्रः**-तेजस्वी, उद्‌गूर्ण बलवाला **मध्यमशीः**-राजमण्डल के मध्य में होनेवाला राजा पर्यन्तवर्ती शत्रुओं का निग्रह करता है। हृदयस्थप्रभु भी हमारे शरीर के सभी रोगों को विनष्ट करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—जब हम प्रभु की भावना से ओत-प्रोत हो जाते हैं तब प्रभु हमारे सब रोगों को विनष्ट कर देते हैं।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**त्रैककुदाञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**।

दुष्टता से दूर

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन॥ ५॥

१. हे **आञ्जन**-ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले प्रभो! **यः**-जो भी उपासक **त्वा बिभर्ति**-आपको धारण करता है—हृदय में आपका ध्यान करता है, **एनम्**=इसे **शपथः न प्राप्नोति**-परकृत शपथ प्राप्त नहीं होती, अर्थात् यह दूसरों से दी गई गालियों से मानस-सन्तुलन नहीं खो बैठता, **न कृत्या**-न ही इसे परकृत हिंसक कर्म (छेदन-भेदन) प्राप्त होता है, **न अभिशोचनम्**-और न ही इसे शोक प्राप्त होता है। २. **एनम्**=इस पुरुष को **विष्कन्धम्**-गति का प्रतिबन्धक कोई विघ्न भी **न अश्नुते**=नहीं व्यापता। यह उपासक अपनी जीवन-यात्रा में निर्विघ्नरूप से आगे और-आगे बढ़ता जाता है। आनेवाले विघ्नों को यह प्रभु-शक्ति से पार कर जाता है।

भावार्थ—प्रभु का हृदय में धारण हमें क्रोध, हिंसन, शोक व विघ्नों का शिकार नहीं होने देता।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**त्रैककुदाञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**।

दुष्टता से दूर

असन्मन्त्राद्दुष्वप्न्याद्दुष्कृताच्छमलादुत।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात्तस्मान्नः पाह्याञ्जन॥ ६॥

१. हे **आञ्जन**-ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले प्रभो! आप **असत् मन्त्रात्**-असत्य मन्त्रणा से—कुविचारों से **नः पाहि**=हमें बचाइए। हम कभी कुविचारों में न पड़ जाएँ। **दुष्वप्न्यात्**-अशुभ स्वप्नों के कारणभूत असन्मन्त्रों से हम सदा दूर रहें, अशुभ विचारों के कारण हमें बुरे स्वप्न ही न आते रहें। **उत**-और **शम् अलात्**-शान्ति का निवारण करनेवाले—सतत अशान्ति के कारणभूत **दुष्कृतात्**-दुष्कर्मों से हमें बचाइए। ३. **दुर्हार्दः**-दौर्मनस्य से तथा **घोरात् चक्षुसा**-क्रोधभरी आँख से **तस्मात्**=अनुक्रम से उन सबसे आप हमें बचाइए। हम कभी दौर्मनस्य से युक्त न हों। हमारी आँख कभी क्रोध को न उगल रही हो।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें बुरे स्वप्नों के कारणभूत दुर्विचारों से बचाती है। यह उपासना ही हमें शान्ति के ध्वंसक दुष्कर्मों से दूर रखती है तथा इसी उपासना से हम दुष्ट हृदयता

व क्रोध-वर्षिणी आँखों से बचे रहते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**त्रैककुदाञ्जनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**।

अश्व, गौ, आत्मा

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्। सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष॥ ७॥

१. हे **आञ्जन**=सम्पूर्ण संसार को व्यक्त करने व गति देनेवाले प्रभो! **विद्वान्**=आपकी महिमा को समझता हुआ मैं **इदं सत्यम्**=इस सत्य को ही **वक्ष्यामि**=बोलूँगा, **अनृतं न**=मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा। २. सदा सत्य बोलता हुआ मैं आपके अनुग्रह से **अश्वम्**=कर्मों में व्याप्तिवाली कर्मेन्द्रियों को **सनेयम्**=प्राप्त करूँ। **अहम्**=मैं **गाम्**=अर्थों की गमक ज्ञानेन्द्रियों को प्राप्त करूँ तथा **तव**=आपका ही होता हुआ मैं हे **पूरुष**=ब्रह्माण्डरूप पुरी में शयन करनेवाले प्रभो! **आत्मानम्**=अपने को—आत्मस्वरूप को प्राप्त करूँ।

भावार्थ—प्रभु की महिमा को जानते हुए हम सदा सत्य ही बोलें और उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को प्राप्त करके आत्मस्वरूप को पहचानें।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**त्रैककुदाञ्जनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**।

पर्वतानाम् वर्षिष्ठः

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता॥ ८॥

१. **आञ्जनस्य**=ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले प्रभु के ये **त्रयः**=तीनों **दासाः** (दस्यन्ते) दास हैं—क्षीण करने योग्य हैं, अर्थात् प्रभु-भक्त को ये तीन पीड़ित करनेवाले नहीं होते—(क) **तक्मा**=कष्टमय जीवन का कारण बननेवाला ज्वर (तकि कृच्छ्रजीवने), (ख) **बलासः**=(शरीरं बलम् अस्यति क्षिपतीति) शरीर के बल को नष्ट करनेवाला सन्निपात आदि रोग **आत्**=और (ग) **अहिः**=सर्पजन्य विष का विकार। प्रभु उपासना करने पर इन तीनों का भय नहीं रहता। २. **पर्वतानाम्**=अपना पूरण करनेवालों में **वर्षिष्ठः**=सर्वश्रेष्ठ **त्रिककुत्**=ज्ञान, बल व ऐश्वर्य तीनों ही दृष्टिकोणों से शिखर पर स्थित—सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् व सर्वैश्वर्यसम्पन्न—इस **नाम**=नामवाले वे प्रभु हे उपासक! **ते पिता**=तेरे रक्षक हैं। प्रभु से रक्षित इस उपासक को भय कहाँ?

भावार्थ—प्रभु का उपासक ज्वर, सन्निपात रोग व सर्पदंश का शिकार नहीं होता। सब न्यूनताओं से रहित ज्ञान, बल व ऐश्वर्य के शिखर पर स्थित वे प्रभु इस उपासक के रक्षक हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**त्रैककुदाञ्जनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सब पीड़ाओं का अन्त

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः॥ ९॥

१. **त्रैककुदम्**=ज्ञान, बल व ऐश्वर्यरूप तीन शिखरोंवाला—इन तीनों के दृष्टिकोण से शिखर पर स्थित **आञ्जनम्**=ब्रह्माण्ड को गति देनेवाला वह प्रभु **यत्**=जब **हिमवतः परि**=हिमवान् के उपरि भाग में **जातम्**=प्रादुर्भूत होते हैं **च**=तो **सर्वान् यातून्** सब पीड़ाओं को **जम्भयत्**=नष्ट करता हुआ होता है **च**=और **सर्वाः**=सब **यातुधान्यः**=पीड़ाओं को आहित करनेवाली बीमारियों को वे प्रभु नष्ट करते हैं। २. शरीर में मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) ही मेरुपर्वत कहलाता है। इसके शिखर पर हिम के समान एक श्वेत पदार्थ है, अतः इसे हिमवान् कहा जाता है। प्राणसाधना करता हुआ पुरुष इस हिमवान् मेरुपर्वत में स्थित आठ चक्रों में से ऊपर-और-ऊपर इन प्राणों

का संयम करता है। मूलाधारचक्र से आरम्भ करके सहस्त्रारचक्र तक पहुँचता है। इस समय **'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'** ऋतम्भरा (सत्य का भरण करनेवाली) प्रज्ञा का विकास होता है और यह साधक प्रभु के प्रकाश को देखता है। प्रभु का प्रकाश होने पर सब पीड़ाएँ समाप्त हो जाती हैं।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा मेरुदण्ड के शिखर पर सहस्त्रारचक्र में प्राणनिरोध होने पर ऋतम्भरा प्रज्ञा का विकास होता है। इस समय प्रभु दर्शन होकर सब पीड़ाओं का अन्त हो जाता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**त्रैककुदाञ्जनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

त्रैककुदं+यामुनम्

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन॥ १०॥

१. हे प्रभो! आप **यदि वा**-या तो **त्रैककुदम् असि**='ज्ञान, शक्ति व धन' तीनों के दृष्टिकोण से शिखर पर पहुँचे हुए हैं, अतः 'त्रैककुदम्' नामवाले हैं। **यदि**-अथवा **यामुनम्** (यमुनायाः अपत्यम्) संयमवृत्ति से प्रादुर्भूत होनेवाले हैं। संयमी पुरुष के हृदय में आपका प्रादुर्भाव होता है, अतः 'यामुनम्' इस नाम से **उच्यसे**=कहे जाते हैं। २. **ते** आपके ये **उभे**=दोनों **नाम्नी**-नाम (त्रैककुद और यामुन)**भद्रे** कल्याणकर हैं। हे **आञ्जन**-हमारे जीवनों में सब गुणों का प्रकाश करनेवाले प्रभो! **ताभ्याम्**-उन दोनों नामों के द्वारा **नःपाहि**=आप हमारा रक्षण कीजिए। हम भी त्रैककुद बनने का प्रयत्न करें—ज्ञान, शक्ति व ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न करें तथा यामुन बनें—यथाशक्तिसंयमी जीवनवाले हों।

भावार्थ—प्रभु को 'त्रैककुद व यामुन' नामों से स्मरण करते हुए हम जहाँ ज्ञान, शक्ति व ऐश्वर्य की प्राप्ति में आगे बढ़ें, वहाँ संयमी जीवनवाले हों।

विशेष—यह संयमी जीवनवाला पुरुष 'अथर्वा' (न डाँवाडोल) बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है। यह प्रभु को 'शंख' नाम से स्मरण करता है 'शम् ख' इन्द्रियों को शान्ति देनेवाला। यह कहता है कि—

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**शङ्खमणिः, कृशनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अंहसः पातु

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः॥ १॥

१. वह 'शंख' इन्द्रियों को शान्ति देनेवाला प्रभु **वातात् जातः** वायु से प्रादुर्भूत होते हैं—निरन्तर गतिवाली इस वायु में प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होती है। **अन्तरिक्षात्**-इस अन्तरिक्ष से वे प्रभु प्रकट होते हैं। लोक लोकान्तरों से खचित यह अन्तरिक्ष प्रभु की महिमा को प्रकट करता है। **विद्युतः**-विद्युत् से प्रभु की महिमा का प्रकाश होता है और **ज्योतिषः परि**-इस देदीप्यमान सूर्यरूप ज्योति से प्रभु की महिमा का प्रकाश हो रहा है। २. **सः**-वे सर्वत्र प्रादुर्भाव महिमावाले प्रभु **नः**-हमारे लिए **हिरण्यजाः**-(हिरण्यं वै ज्योतिः) ज्योति को प्रादुर्भूत करनेवाले हैं, **शंखः** ज्ञान के द्वारा इन्द्रियों के लिए शान्ति देनेवाले हैं, **कृशनः**-काम क्रोध आदि शत्रुओं के तनूकर्त्ता 'क्षीण करनेवाले' हैं। ये प्रभु हमें **अंहसः पातु**-पाप से बचाएँ।

भावार्थ—वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत् व सूर्यादि ज्योतियों में प्रभु की महिमा का प्रकाश हो

रहा है। ये प्रभु हमारे लिए ज्ञान का प्रादुर्भाव करते हैं, इन्द्रियों को शान्त करते हैं, काम क्रोध आदि शत्रुओं को क्षीण करते हैं और हमें पापों से बचाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शङ्खमणिः, कृशनः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रक्षो हनन व अत्रि-पराभव

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे। शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे॥ २॥

१. **यः**-जो प्रभु **रोचनानाम् अग्रतः**-देदीप्यमान पदार्थों में सर्वाग्रणी हैं, वे प्रभु **समुद्रात् अधि जज्ञिषे**=(समुद्र) प्रसन्नता युक्त मन से प्रादुर्भूत होते हैं। मनःप्रसाद होने पर हृदय में प्रभु का प्रकाश होता है। प्रभु के प्रकाश से ही सब पिण्ड चमक रहे हैं—'**तस्य भासा सर्वमिदं विभाति**' २. हृदय में प्रादुर्भूत हुए हुए इस **शंखेन**=इन्द्रियों को शान्ति देनेवाले प्रभु से **रक्षांसि**-सब राक्षसी भावों को **हत्वा**=विनष्ट करके **अत्रिणः**=हमें खा जानेवाले रोगकृमियों को भी **विषहामहे**=विशेषेण अभिभूत करते हैं। रक्षोहनन द्वारा मानस स्वास्थ्य सिद्ध होता है और अत्रि विध्वंस द्वारा शरीर नीरोग बनता है।

भावार्थ—प्रसन्न हृदय में उस ज्योतिर्मय प्रकाश को देखते हुए हम राक्षसी वृत्तियों का विध्वंस करके स्वस्थ मन बनें और रोगकृमियों का पराभव करते हुए हमारे शरीर स्वस्थ हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शङ्खमणिः, कृशनः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु 'विश्वभेषज' हैं

शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः॥ ३॥

१. **शङ्खेन**-इन्द्रियों की शान्ति देनेवाले प्रभु के द्वारा हम **अमीवाम्**-सब रोगों को अभिभूत करते हैं। अजितेन्द्रियता में ही खान-पान का संयम न रहने से रोग पनपते हैं। इस शङ्ख के द्वारा ही **अमतिम्**-सब अनर्थों के मूल अज्ञान को दूर करते हैं **उत**=और **शङ्खेन**=इन्द्रियों की शान्ति देनेवाले प्रभु की उपासना से ही **सदान्वाः**-(सदा नोनूयमानाः) सदा पीड़ित करनेवाली (रुलानेवाली) अलक्ष्मियों को दूर करते हैं। २. यह **शङ्ख**=इन्द्रियों को शान्ति देनेवाले प्रभु **नः**=हमारे लिए **विश्वभेषजः**-सब रोगों के औषध हैं, **कृशनः**-सब क्लेशों को क्षीण करनेवाले हैं। ये प्रभु हमें **अंहसः पातु**=पाप से रक्षित करें।

भावार्थ—प्रभु की उपासना हमें रोगों से बचाती है, हमारे अज्ञान को दूर करती है, अलक्ष्मी का विनाश करती है। प्रभु की उपासना सब रोगों का औषध है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शङ्खमणिः, कृशनः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आयुष्प्रतरणो मणिः

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः॥ ४॥

१. **दिवि जातः**-ये प्रभु द्युलोक में प्रादुर्भूत होते हैं—द्युलोक में प्रभु की महिमा का प्रकाश होता है, **समुद्रजः**=वे प्रभु इन समुद्रों में प्रादुर्भूत होते हैं—इनमें प्रभु की महिमा का प्रकाश होता है, वे प्रभु **सिन्धुतः परि आभृतः**-नदियों से चारों ओर धारण किये जाते हैं। पूर्व से पश्चिम में, उत्तर से दक्षिण में—इसीप्रकार भिन्न-भिन्न दिशाओं में बहती हुई नदियाँ उस प्रभु की महिमा का गायन करती हैं। २. **सः**=वे प्रभु **नः**=हमारे लिए **हिरण्यजाः**=हितरमणीय ज्ञान-ज्योति को प्रादुर्भूत करनेवाले हैं, **शङ्खः**=ज्ञान-ज्योति के द्वारा इन्द्रियों की शान्ति देनेवाले हैं, शान्त इन्द्रियों

के द्वारा **आयुष्प्रतरणः** आयुष्य का वर्धन करनेवाले हैं, **मणिः**=(मण-to sound) ये प्रभु ही हृदयस्थरूपेण कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान देनेवाले हैं, सदा हृदय-गुहा में धर्म की प्रेरणा देनेवाली वाणी का उच्चारण करनेवाले हैं।

भावार्थ—द्युलोक, समुद्र, नदियों में सर्वत्र प्रभु की महिमा का प्रकाश है। ये प्रभु ज्ञान देकर हमें शान्त इन्द्रियोंवाला बनाते हैं और इसप्रकार दीर्घजीवन देकर हृदयस्थरूपेण सदा धर्म की प्रेरणा देते रहते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शङ्खमणिः, कृशनः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वृत्रात् जातः दिवाकरः

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः। सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः॥ ५॥

१. **समुद्रात्**-अन्तरिक्ष से (समुद्रम् अन्तरिक्षम्—निरु०) **जातः**-प्रादुर्भूत हुआ-हुआ (अन्तरिक्ष में सर्वत्र प्रभु की महिमा का प्रकाश होता ही है) अथवा (स+मुद्) प्रसादमय हृदयान्तरिक्ष में प्रकट हुआ-हुआ **मणिः** धर्म की प्रेरणा देनेवाले प्रभु इसप्रकार देदीप्यमान होते हैं, जैसेकि **वृत्रात्**-आवरक मेघ से **जातः**-प्रादुर्भूत हुआ-हुआ **दिवाकरः**-सूर्य। मेघ के आवरण के हटने पर जैसे सूर्य चमक उठता है, उसी प्रकार वासना के आवरण के हटने पर हृदय में प्रभु का प्रकाश चमक उठता है। २. **सः**-वह प्रभु **अस्मान्**=हमें **सर्वतः पातु**-सब ओर से रक्षित करें। **हेत्या** हनन की प्रवृत्तियों से वे प्रभु हमें बचाएँ। हम हिंसक वृत्तिवाले न बन जाएँ। **देवासुरेभ्यः**-(देवान् अस्यन्ति) दिव्यभावों को दूर फेंकनेवाले आसुरीभावों से भी वे प्रभु हमें बचाएँ। प्रभु से दूर होने पर जीवन में घात पात की प्रवृत्तियाँ प्रबल हो उठती हैं।

भावार्थ—प्रभु सूर्य के समान चमकते हैं। जब हृदय से वासना के मेघ का विलय हो जाता है तब प्रभु हमें पापों, हिंसाओं व आसुरी प्रवृत्तियों से बचाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शङ्खमणिः, कृशनः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

हिरण्यानाम् एकः

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात्त्वमधि जज्ञिषे।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ ६॥

१. हे प्रभो! आप **हिरण्यनाम्**-ज्योतिर्मय पदार्थों में **एकः असि**-अद्वितीय हैं। वस्तुतः सब ज्योतिर्मय पदार्थों को ज्योति आप ही प्राप्त कराते हैं। **सोमात्**-शरीर में सुरक्षित सोम से **त्वम्**-आप **अधिजज्ञिषे**-प्रादुर्भूत होते हैं—शरीर में सुरक्षित सोम ही आपके दर्शन का कारण बनता है। **रथे**-इस शरीर-रथ में **त्वम्**=आप **दर्शतः असि**-दर्शनीय हैं। प्रभु का दर्शन बाहर न होकर यहाँ अन्दर ही होता है। वह प्रभु **नः**=हमारे **आयूंषि**-आयुष्य को **प्रतारिषत्**=बढ़ाए—हमें दीर्घजीवी बनाए।

भावार्थ—उस सर्वतो दीप्तिमान प्रभु का प्रकाश वही देखता है जो शरीर में सोम का रक्षण करता है। वे प्रभु इस शरीर में ही दर्शनीय हैं। प्रेरणा को सुननेवालों में प्रदीप्त होते हैं, उसके अनुग्रह से हम दीर्घजीवी बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शङ्खमणिः, कृशनः**॥ छन्दः—**पञ्चपदापरानुष्टुप्छक्वरी**॥

आत्मन्वत्

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व१न्तः। तत्ते बध्नाम्यायुषे
वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु॥ ७॥

१. **कृशनम्**=सब क्लेशों को क्षीण करनेवाला वह प्रभु **देवानाम्**-सब देवों के **अस्थि**=(अस्यति) मलों को दूर करनेवाला **बभूव**-है। वस्तुतः उसी ने इन्हें निर्मल बनाकर देवत्व प्राप्त कराया है। **तत्**=वह कृशन **आत्मन्वत्**=सब आत्माओंवाला है—सब आत्माओं का निवास उस प्रभु में ही है। वह **अप्सु अन्तः**=सब प्रजाओं के अन्दर **चरति**-विचरण करता है। वह सर्वभूतात्मा है। २. **तत्**=उस प्रभु को **ते बध्नामि**=मैं तेरे हृदय में बाँधता हूँ—तुझे सदा प्रभु का स्मरण रहे। यही मार्ग है **आयुषे**=दीर्घायुष्य की प्राप्ति के लिए, **वर्चसे**-रोगनिवारक शक्ति की प्राप्ति के लिए, **बलाय**-मानस बल प्राप्ति के लिए तथा **शतशारदाय दीर्घायुत्वाय**-सौ वर्ष के दीर्घजीवन के लिए। **कार्शनः**=वासनाओं को अतिशयेन क्षीण करनेवाला वह प्रभु **त्वा अभिरक्षतु**=तेरा रक्षण करे। प्रभु से रक्षित होकर ही हम पवित्र व दीर्घजीवन प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमारे जीवनों को निर्मल बनाकर हमें देवत्व प्राप्त कराते हैं। प्रभु हम सबकी आत्मा हैं। वे हम सबके अन्दर विचरण करते हैं। प्रभु ही हमें पवित्र व सबल दीर्घजीवन देते हैं।

विशेष—प्रभु के अनुग्रह से तपस्वी जीवनवाला 'भृगु' अगले सूक्त का ऋषि है। सबल शरीरवाला, अङ्ग-अङ्ग में रसवाला यह 'अङ्गिराः' है। यह प्रभु को संसार-शकट को वहन करनेवाले अनड्वान् के रूप में देखता है।

११. [एकादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः**॥ छन्दः—**जगती**॥

सर्वाधार, सर्वव्यापक

अनड्वान्दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान्दाधारोर्व१न्तरिक्षम्।
अनड्वान्दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान्विश्वं भुवनमा विवेश॥ १॥

१. **अनड्वान्**=संसार शकट का वहन करनेवाले प्रभु **पृथिवीम्**=पृथिवीलोक को **उत**-और **द्याम्**=द्युलोक को **दाधार**=धारण कर रहे हैं। ये **अनड्वान्**-संसार-शकट के वाहक प्रभु ही **उरु अन्तरिक्षम्**=इस विशाल अन्तरिक्ष को **दाधार**=धारण करते हैं। २. **अनड्वान्**-ये प्रभु **प्रदिशः**=प्राची आदि प्रकृष्ट दिशाओं को **दाधार**=धारण करते हैं। **षट् उर्वीः**=प्रभु ही 'द्यौश्च पृथिवी च, अहश्च रात्रिश्च, आपश्चौषधयश्च' (आ० श्रौ० १.२.१) द्युलोक, पृथिवीलोक, दिन, रात, जल व ओषधियाँ—इन छह उर्वियों का धारण करते हैं। ये **अनड्वान्**-प्रभु ही **विश्वं भुवनम्**=सम्पूर्ण भुवन में **आविवेश**=व्यापक हो रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु सारे संसार का धारण कर रहे हैं और सारे भुवनों में व्यापक हो रहे हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः**॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

सर्वद्रष्टा, विधाता

अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयां छक्रो वि मिमीते अध्वनः।
भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि॥ २॥

१. **अनड्वान्**=यह संसार-शकट का वहन करनेवाला प्रभु **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली है। **सः**=वह **पशुभ्यः विचष्टे**=सब प्राणियों का ध्यान करता है (looks after)। वह **शक्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **त्रयान् अध्वनः**-तीन मार्गों को **विमिमीते**-निर्मित करता है। 'देवयान, पितृयान व जायस्व-म्रियस्व' नामक तीन ही मार्ग हैं, जिनसे यह संसार चलता है। निष्काम कर्मवाले देवयान मार्ग से जाते हैं, सकाम कर्मवाले पितृयान से तथा शास्त्रविरुद्ध कर्म करनेवाले व्यक्ति 'जायस्व-

म्रियस्व मार्गवाले होते हैं। २. यह अनड्वान् प्रभु' **भूतम्** भूतकाल में **भविष्यत्**-भविष्यकाल में तथा **भुवना**-वर्त्तमान में होनेवाले सब पदार्थों का **दुहानः** प्रपूरण करता हुआ **देवानाम्**-देवों के **सर्वा व्रतानि** सब व्रतों को **चरति**-पूरा करता है। सूर्यादि सब देवों के व्रतों का पालन वे प्रभु ही कर रहे हैं। उसी के शासन में ब्रह्माण्ड के सब पदार्थ गति कर रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु सभी प्राणियों का ध्यान करते हैं। प्रभु ने कर्मानुसार जीवों के तीन भाग किये हैं—(क) देवयान से जानेवाले, (ख) पितृयान से जानेवाले, (ग) 'जायस्व म्रियस्व' की गतिवाले। सब लोकों का पूरण प्रभु ही करते हैं। सूर्यादि सब देव प्रभु के शासन में चल रहे हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-ज्ञान, अनासक्ति व मोक्ष

इन्द्रो॑ जा॒तो म॑नुष्ये॒ष्व॒न्तर्घ॒र्मस्त॒प्तश्च॑रति॒ शोशु॑चानः।
सु॒प्र॒जाः सन्त्स उ॒दा॒रे न स॑र्ष॒द्यो ना॒श्नी॒याद॑न॒डुहो॑ वि॒जा॒नन्॥ ३॥

१. **इन्द्रः**-यह परमैश्वर्यशाली प्रभु **मनुष्येषु अन्तः जातः**-विचारशील मनुष्यों के हृदयों में प्रादुर्भूत होता है। **तप्तः घर्मः शोशुचानः**-(तप दीप्तौ) दीप्त सूर्य के समान चमकता हुआ यह प्रभु **चरति**-सब प्रजाओं में विचरण करता है। हृदय पर वासना के आवरण के कारण ही हम प्रभु को नहीं देख पाते। २. **यः** जो **अनडुहः विजानन्** संसार शकट के सञ्चालक प्रभु को जानता हुआ **न अश्नीयात्**-प्रकृति के भोगों को भोगने में नहीं फँस जाता, **सः**-वह **सुप्रजाः सन्**-इस जीवन में उत्तम प्रजाओं—(सन्तानों व विकासों) वाला होता हुआ **उदारे** (उत् आरे) शरीर से आत्मा के बाहर होने पर **न सर्षत्** फिर भटकता नहीं, अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदय-गगन में देदीप्यमान सूर्य की भाँति चमक रहे हैं। प्रभु को जानता हुआ जो भी मनृष्य प्रकृति के भोगों में नहीं फँसता वह इस जन्म में उत्तम शक्तियों के विकास व सन्तानोंवाला होता हुआ शरीर छूटने पर सुदीर्घकाल तक दुबारा शरीर नहीं लेता—मुक्त हो जाता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

पुरस्तात् (आगे और आगे)

अ॒न॒ड्वान्दु॑हे सु॒कृ॒तस्य॑ लो॒क ऐनं॑ प्याययति॒ पव॑मानः पु॒रस्ता॑त्।
प॒र्जन्यो॒ धारा॑ म॒रुत॒ ऊधो॑ अस्य य॒ज्ञः पयो॒ दक्षि॑णा॒ दोहो॑ अस्य॥ ४॥

१. **अनड्वान्**-संसार शकट का वहन करनेवाला वह प्रभु **एनम्**-इस उपासक को **सुकृतस्य लोके** पुण्य के लोक में **दुहे**-प्रपूरित करता है। वह **पवमानः**-पवित्र करनेवाला प्रभु इसे **पुरस्तात् आप्यायति** आगे और आगे बढ़ाता है। २. **पर्जन्यः**-परातृप्ति को पैदा करनेवाला मेघ ही **अस्य** इस प्रभु की **धाराः** धारण शक्तियाँ हैं। पर्जन्य से अन्न का सम्भव होकर सब प्रजाओं का धारण होता है। इस प्रभु के **मरुतः**-४९ भागों में विभक्त होकर कार्य करनेवाले प्राणप्रद वायु **ऊधः**-वहन सामर्थ्य के रूप में हैं। इन मरुतों के द्वारा प्रभु सम्पूर्ण संसार की प्रजाओं का वहन करते हैं। **अस्य यज्ञः** इस प्रभु का पूजन व संगतिकरण **पयः**-दूध है—दूध के समान हमारा आप्यायन करनेवाला है और **दक्षिणा**-दान **दोहाः**-हमारा प्रपूरण करनेवाला है। प्रभु प्रदत्त सब वस्तुएँ व शक्तियाँ हमारा पूरण करती हैं।

भावार्थ—प्रभु हमें पुण्यलोक में प्राप्त कराते हैं, अर्थात् प्रकृति का उपासन अवनति का कारण है तो प्रभु का उपासन उन्नति का। हमें पवित्र करते हुए प्रभु आगे और आगे ले-चलते हैं। प्रभु पर्जन्य द्वारा प्रजाओं का धारण करते हैं, वायु द्वारा जीवनशक्ति का वहन करते हैं। प्रभु की पूजा हमारा आप्यायन करती है। प्रभु-प्रदत्त सब वस्तुएँ हमारा कल्याण करती हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ईशिता न कि ईशितव्य

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता।
यो विश्वजिद्विश्वभृद्विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात्॥ ५॥

१. प्रभु वे हैं **यस्य**-जिनका **यज्ञपतिः**-यज्ञों का करनेवाला व्यक्ति **न ईशे**-ईश नहीं बन पाता। यज्ञपति तो क्या **यज्ञः न**-साक्षात् यज्ञ भी प्रभु का ईश नहीं होता। **न अस्य** न तो इसका **दाता ईशे**-दान देनेवाला ईश होता है, **न प्रतिग्रहीता**-न प्रतिग्रह करनेवाला (लेनेवाला) इसका ईश बनता है, अर्थात् सब यज्ञों व दानादि कर्मों के प्रभु ही ईश हैं, कोई भी प्रभु का ईश नहीं है। २. **यः**-जो **विश्वजित्**-सब धनों का विजय करनेवाले हैं, **विश्वभृत्**-सबका भरण करनेवाले हैं, **विश्वकर्मा**-सम्पूर्ण जगत् जिनका कर्म (रचना) है, वह **चतुष्पात्**=चारों दिशाओं में (सर्वत्र) गतिवाले **यतमः**-यज्जातीय—जिस स्वरूपवाले प्रभु हैं, उन **घर्मम्**=आदित्य के समान देदीप्यमान प्रभु को **नः ब्रूत**=हमें बताओ। विद्वान् योगी लोग उस प्रभु का हमारे लिए उपदेश करें।

भावार्थ—बड़े-से-बड़ा, पवित्र, धर्मात्मा पुरुष भी जिससे ईशितव्य होता है, उस 'विश्वजित्, विश्वभृत्, विश्वकर्मा, व्यापक' प्रभु का ज्ञानी लोग हमारे लिए उपदेश करें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता **अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

घर्मस्य व्रतेन+तपसा

येन देवाः स्व१रारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः॥ ६॥

१. **येन**=जिस **घर्मस्य व्रतेन**=देदीप्यमान सूर्य के व्रत से (स्वस्तिपन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव)—सूर्य के समान नियमित जीवन से तथा **तपसा**=तप के द्वारा **यशस्यवः**-यश की कामनावाले—यशस्वी जीवनवाले **देवाः**=देवपुरुष **स्वः आरुरुहः**-स्वर्ग का आरोहण करते हैं—प्रकाशमयलोक को प्राप्त करते हैं, २. हम भी **तेन**-उस व्रत व तप के द्वारा **शरीरं हित्वा**=इस शरीर को छोड़कर **अमृतस्य नाभिम्**-अमृत के केन्द्र उस प्रभु को **गेष्म**-जाएँ, **सुकृतस्य लोकम्**=पुण्य के लोक को प्राप्त करें।

भावार्थ—सूर्य के समान नियमित जीवन व तप के द्वारा यशस्वी जीवनवाले बनते हुए हम शरीर-त्याग के पश्चात् अमृत के केन्द्र प्रभु को प्राप्त करें—पुण्यलोक-भागी हों।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**षट्पदाऽनुष्टुबार्भोपरिष्टाज्जगती-निचृच्छक्वरी** ॥

जीवन्मुक्त

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट्।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत। सो१ऽदृंहयत सो१ऽधारयत॥ ७॥

१. गतमन्त्र के अनुसार प्रभु को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति **रूपेण इन्द्रः**-रूप से इन्द्र के समान होता है—ब्रह्म की उपासना करता हुआ वह ब्रह्म-सा (ब्रह्म इव) हो जाता है। अग्नि में पड़कर

जैसे लोह-शलाका अग्नि सी हो जाती है, इसीप्रकार यह ब्रह्म में स्थित होकर ब्रह्म-सा बन जाता है। यह **वहेन**=सब लोगों का वहन करने के द्वारा **अग्निः**-(अग्रणी) आगे ले-चलनेवाला होता है। ज्ञान व प्रेरणा देता हुआ सबकी उन्नति का साधक होता है, **प्रजापतिः**-सब प्रजाओं का रक्षक होता है। यही मानव जीवन की चरम उन्नति है, अतः यह **परमेष्ठी** परम स्थान में स्थित है और **विराट्**-विशेष रूप से चमकता है। २. यह **विश्वानरे अक्रमत** सब मनुष्यों में विचरता है—छोटे-से-छोटे से लेकर बड़े-से-बड़े तक सब पुरुषों के सम्पर्क में आता है। जो जिस स्थिति में है उसके प्रति वह उसी के अनुसार गतिवाला होकर उसे उन्हीं शब्दों में उपदेश करता है, जिन्हें कि वह समझ सके। इसी से उस व्यक्ति को 'तथा-गत' कहने लगते हैं। ३. सब मनुष्यों में विचरण करता हुआ यह **वैश्वानरे अक्रमत**=विश्व नर-हितकारी कर्मों में प्रवृत्त होता है। इस वृत्ति को बनाये रखने के लिए **अनडुहि अक्रमत** यह संसार-शकट के वाहक प्रभु में विचरता है। प्रभु में स्थित होने से यह काम-क्रोध के आक्रमण से बचा रहता है। **सः**-वे प्रभु ही इसे **अदृंहयत**-दृढ़ बनाते हैं, फिसलने नहीं देते। **सः अधारयत** वस्तुतः प्रभु ही इसका धारण करते हैं और इसके द्वारा औरों का धारण करते हैं, इसे सदा लोकसंग्रहात्मक कर्मों में प्रवृत्त रखते हैं।

भावार्थ—प्रभु का उपासक प्रभु-जैसा ही हो जाता है। सब लोगों का धारण करता हुआ यह उन्हें आगे ले-चलता है। यह सबका नेतृत्त्व करता है, सबके भले के कार्यों को करता है, परमात्मा में विचरता है। प्रभु इसे दृढ़ बनाते हैं व इसके द्वारा सभी का धारण कराते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रभु के एक देश में

मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः। एतावदस्य प्राचीनं यावान्प्रत्यङ् समाहितः ॥ ८ ॥

१. इस संसार शकट का वहन करनेवाले वे प्रभु 'अनड्वान्' हैं। उस अनड्वान् पर ही इस सारे ब्रह्माण्ड का बोझ रखा है, परन्तु यह सब उसके एक देश में ही है। पुरुषसूक्त में कहा है—'**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि**'। यहाँ कहते हैं कि **एतत्**-यह **अनडुहः**-इस अनड्वान् प्रभु का **मध्यम्**-मध्य भाग है, **यत्र**-जहाँ कि **एषः**-यह **वहः**-सारे संसार का बोझ **आहितः**-स्थापित है। प्रभु ने अपने एक देश में सारे ब्रह्माण्ड को धारण किया हुआ है। २. **एतावत्**-इतना ही **अस्य**=इस अनड्वान् का **प्राचीनम्**-प्राग्भाग है **यावान्**-जितना कि **प्रत्यङ्**=प्रत्यग्भाग **समाहितः**-सम्यक् निवर्तित हुआ है—बना है। इधर उस अनड्वान् का पूर्वभाग है, उधर प्राग्भाग है, मध्य में यह सारा ब्रह्माण्ड रक्खा हुआ है।

भावार्थ—प्रभु अनन्त व्याप्तिवाले हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एक देश में है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सप्त दोह

यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥ ९ ॥

१. प्रभु ने गायत्री आदि सात छन्दों में यह वेदज्ञान दिया है, अतः ये सात ज्ञान के दोह कहलाते हैं। वेद धेनु है, उसके ये सात ज्ञान दुग्धप्रपूरण हैं। **यः**-जो **अनडुहः**=संसार-शकट के सञ्चालक प्रभु के **सप्त**=सात **अनुपदस्वतः**-कभी क्षीण न होनेवाले **दोहान्** ज्ञानप्रपूर्तियों को **वेद**-जानता है, वह **प्रजां च**-उत्तम सन्तान को व **लोकं च** उत्तम लोक को **आप्नोति**-प्राप्त

करता है। वेद के साथ ज्ञान प्रवाहों के अनुसार जीवन-यात्रा में चलता हुआ व्यक्ति उत्तम गति को प्राप्त करता है। २. सृष्टि के प्रारम्भ में होनेवाले **सप्तऋषयः**=विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ व कश्यप **तथा**=ठीक उस रूप में इन सात ज्ञानदोहों को **विदुः**=जानते हैं। 'अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिरा' से इन ज्ञानों को प्राप्त करके ये अगलों को वेद-ज्ञान दिया करते हैं। प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में ये सात दोह प्रादुर्भूत होते हैं। सृष्टि की समाप्ति पर ये परमात्मज्ञान में रहते हैं। इनका प्रादुर्भाव व तिरोभाव होता रहता है, परन्तु ये कभी नष्ट नहीं होते।

भावार्थ—प्रभु सात छन्दों में सात ज्ञान-प्रवाहों को प्राप्त कराते हैं। इन्हें प्राप्त करनेवाला व्यक्ति उत्तम सन्तान व उत्तम लोक को प्राप्त करता है। सृष्टि के आरम्भ में इन्हें ऋषि अग्नि आदि से प्राप्त करते हैं। वे इस ज्ञान को आगे और आगे प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अनड्वान् कीनाशः च

पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन्।
श्रमेणानड्वान्कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः॥ १०॥

१. एक किसान बैलों द्वारा हल चलाता हुआ भूमि जोतता है, उस समय **पद्भिः**=अपने चारों पाँवों से **सेदिम्**-अवसान-(विनाश)-कारी अलक्ष्मी को **अवक्रामन्**=पाँवों तले रोंदता हुआ **इराम्**=भूमि को **जङ्घाभिः**-जाँघों से कर्षण द्वारा **उत्खिदत्**=उद्भिन्न करता हुआ यह **अनड्वान्**-बैल **कीनाशः च**=और किसान **श्रमेण**=श्रम के द्वारा **कीलालम्**=अन्न को **अभिगच्छतः**=प्राप्त होते हैं। प्रभु श्रम करने पर ही अन्न प्राप्त कराते हैं। जैसे बैल के द्वारा श्रम होने पर ही किसान अन्न पाता है, इसीप्रकार 'प्रभु बिना श्रम के हमें खिलाते रहेंगे' ऐसी बात नहीं है।

भावार्थ—श्रम करनेवाले के योगक्षेम को प्रभु अवश्य चलाते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**अनड्वान् इन्द्ररूपः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

बारह रात्रियाँ

द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद्वा अनडुहो व्रतम्॥ ११॥

१. वैदिक साहित्य में 'रात्रि' अन्धकार का प्रतीक है, 'दिन' प्रकाश का। दिन का करनेवाला सूर्य 'ज्ञानसूर्य' का प्रतीक है। बृहस्पति को 'द्वादशार्चि' अथवा 'द्वादशांशु' कहते हैं, अर्थात् जिसकी 'दसों इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' ये बारह-के-बारह प्रकाशमय हो गये हैं। जब तक मनुष्य के ये बारह-के-बारह प्रकाशमय न हो जाएँ जब तक व्रतमय जीवन बिताते हुए इन्हें उज्ज्वल करने का प्रयत्न करना है। मन्त्र में कहते हैं कि **एताः**=इन **द्वादश**=बारह **रात्रीः**=रात्रियों को **वा**=निश्चय से **प्रजापतेः व्रत्याः**=प्रजापति के व्रतवाला **आहुः**=कहते हैं। प्रजापति ही ब्रह्मा हैं। 'इनके व्रतवाला' का भाव यह है कि ब्रह्मा की भाँति चारों वेदों का विद्वान् बनना—मन, बुद्धि व इन्द्रियों को एकमात्र ज्ञान-प्राप्ति के व्रत में लगाना। २. **तत्र**=वहाँ-उन बारह रात्रियों में **यः**=जो **ब्रह्म**=ज्ञान को **उपवेद**-आचार्य के समीप रहकर प्राप्त करता है **तत्**=वह **वा**=निश्चय से **अनुडुहः व्रतम्**=उस संसार-सञ्चालक प्रभु का (प्रभु-सम्बद्ध) व्रत हो जाता है।

भावार्थ—हमें 'प्रभु के व्रत' का पालन करते हुए 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि को प्रकाशमय बनाना चाहिए।

ऋषिः—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—अनड्वान् इन्द्ररूपः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

प्रातः, सायं व मध्यन्दिन में दोहन

दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यन्दिनं परि।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान्विद्मानुपदस्वतः॥ १२॥

१. प्रभु ने जो वेदधेनु दी है मैं उसका **सायं दुहे**-सायं दोहन करता हूँ, **प्रातः दुहे**-प्रातः उसका दोहन करता हूँ, **मध्यन्दिनं परिदुहे**-मध्याह्न में उसका दोहन करता हूँ। प्रातः, सायं व मध्याह्न में जब भी समय मिले इस वेदधेनु का दोहन आवश्यक है। २. **अस्य**-इस संसार-सञ्चालक प्रभु के **ये** जो **दोहाः** ज्ञानदुग्ध के प्रपूरण **संयन्ति** हमें सम्यक् प्राप्त होते हैं, **तान्**-उन **अनुपदस्वतः**-न क्षय होने देनेवाले दोहों को हम **विद्म** जानते हैं। ये ज्ञानदुग्ध के दोह हमें विनाश से बचाते हैं।

भावार्थ—हम प्रातः, सायं व मध्याह्न में समय मिलने पर सदा वेदधेनु का दोहन करें। इसके द्वारा प्राप्त ज्ञानदुग्ध हमें विनष्ट न होने देगा।

विशेष—अगले सूक्त में इस वेदज्ञान से खूब दीप्त होनेवाले 'ऋभु' (उरु भाति) का उल्लेख है। यह इस ज्ञान द्वारा ज्ञात रोहणी ओषधि के प्रयोग से छिन्न अस्थि आदि को ठीक करके शरीर रथ को जीवन यात्रा के लिए उपयुक्त बनाता है—

१२. [द्वादशं सूक्तम्]

ऋषिः—ऋभुः ॥ देवता—रोहणी वनस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिपदागायत्री ॥

रोहणी

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी। रोहयेदमरुन्धति॥ १॥

१. **रोहणी असि** हे ओषधे! तू रोहणी है—घाव को भर देनेवाली है। **छिन्नस्य अस्थ्नः** टूटी हुई हड्डी को भी **रोहणी**-पूर्ण कर देनेवाली है। २. हे **अरुन्धति** दूसरों से अभिभूत न होनेवाली अथवा आरोधनशील—घाव भरने की प्रगति को ठीक से चालू रखनेवाली रोहणि! तू **इदं रोहय**-इस भग्न व स्रुत रक्त अङ्ग को प्ररूढ़ कर दे—फिर से ठीक ठीक कर दे, इसे अव्रण बना दे।

भावार्थ—हम रोहणी ओषधि के प्रयोग से भग्न अस्थि को भी फिर से ठीक करके शरीर अस्थि को ठीक करनेवाले हों।

ऋषिः—ऋभुः ॥ देवता—रोहणी वनस्पतिः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

रिष्टं, द्युत्तं, पेष्ट्रम्

यत्ते रिष्टं यत्ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि।
धाता तद्भद्रया पुनः सं दधत्परुषा परुः॥ २॥

१. हे शस्त्र आदि से अभिहत पुरुष! **यत्**-जो **ते**-तेरा अङ्ग **रिष्टम्**-हिंसित है, **यत्** जो **ते**-तेरा अङ्ग **द्युत्तम्**-(द्योतितम्) शस्त्र प्रहार से प्रज्वलित सा **अस्ति** है और **पेष्ट्रम्**-मुद्गर आदि के प्रहार से **ते**-तेरे **आत्मनि**-शरीर में जो छित-सा गया है, **धाता**-जगत् का विधाता देव **तत्**-उन सब अङ्गों को **भद्रया**-इस कल्याणकारक ओषधि से **पुनः सन्दधत्**-फिर जोड़ दे। २. इस ओषधि के प्रयोग से **परुषा परुः** जोड़-से-जोड़ को संयुक्त कर दे। अस्थिभ्रंश आदि को इस ओषधि के प्रयोग से ठीक किया जा सकता है।

भावार्थ—रोहणी ओषधि के प्रयोग से घावों, प्रज्वलित वेदनाओं तथा पिस जाने आदि विकारों को दूर करके जोड़ों को ठीक से संयुक्त किया जा सकता है।

ऋषिः—**ऋभुः** ॥ देवता—**रोहणी वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विस्रस्त मांस का फिर से ठीक हो जाना

सं ते॑ म॒ज्जा म॒ज्ज्ञा भ॑वतु॒ समु॑ ते॒ परु॑षा॒ परु॑:।
सं ते॑ मां॒सस्य॒ विस्र॑स्तं॒ सम॒स्थ्यपि॑ रोहतु॥ ३॥

१. हे प्रहृत (घायल) व्यक्ति! **ते मज्जा**-तेरे शरीर में स्थित यह मज्जा नामक धातु **मज्ज्ञा संभवतु**=मज्जा के साथ संयुक्त हो जाए **उ**=और **परुषा**-तेरे पर्व (जोड़) के साथ **परुः**=पर्व **सम्**=जुड़ जाए। २. **ते**=तेरे **मांसस्य**=मांस का जो **विस्रस्तम्**=भ्रंश है, वह भी पुनः **रोहतु**=उत्पन्न हो जाए। भ्रष्ट हुआ-हुआ मांस फिर से ठीक हो जाए। **अस्थि अपि**-हड्डी भी **सम्**-सम्यक् प्ररूढ़ व संहित हो जाए।

भावार्थ—रोहणी के प्रयोग से सब व्रण व घाव ठीक हो जाएँ जोकि अस्त्र आदि के आघात से मज्जा, परु, मांस, अस्थि में उत्पन्न हो गया है।

ऋषिः—**ऋभुः** ॥ देवता—**रोहणी वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मज्जा व चर्म आदि का सन्धान

म॒ज्जा म॒ज्ज्ञा सं धी॑यतां॒ चर्म॑णा॒ चर्म॑ रोहतु।
असृ॑क्ते॒ अस्थि॑ रोहतु मां॒सं मां॒सेन॑ रोहतु॥ ४॥

१. तेरी **मज्जा**=मज्जा नामक षष्ठ धातु (रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य) **मज्ज्ञा**=मज्जा (Marrow) नामक धातु से **सन्धीयताम्**-संहित हो जाए—मज्जा मज्जा के साथ जुड़ जाए। **चर्मणा** चमड़े के साथ **चर्म**-चमड़ा **रोहतु**-प्ररूढ़ हो जाए, अर्थात् जुड़ जाए। २. रुधिर **असृक्**=रुधिर से मेलवाला हो जाए। इसीप्रकार **ते अस्थि**=तेरी हड्डी **रोहतु**=हड्डी से जुड़ जाए और **मांस मांसेन रोहतु**-मांस बढ़कर मांस से मिल जाए।

भावार्थ—रोहणी के प्रयोग से मज्जा मज्जा के साथ, चर्म चर्म के साथ, रुधिर रुधिर के साथ, हड्डी हड्डी के साथ तथा मांस मांस के साथ संयुक्त हो जाए।

ऋषिः—**ऋभुः** ॥ देवता—**रोहणी वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

छिन्न अंगों का सन्धान

लोम॒ लोम्ना॒ सं क॑ल्पया त्व॒चा सं क॑ल्पया॒ त्वच॑म्।
असृ॑क्ते॒ अस्थि॑ रोहतु॒ च्छि॒न्नं सं धे॑ह्योषधे॥ ५॥

१. हे **ओषधे**-ओषधे! तू शरीरस्थ **लोम**-बाल को जोकि प्रहार से विश्लिष्ट (पृथक्) हो गया है **लोम्ना**=अन्य बालों से **संकल्पय**=संक्लृप्त, अर्थात् पुनः स्थानगत कर दे। उसी प्रकार **त्वचम्**=त्वचा को **त्वचा**=पृथक् हुई त्वचा से **संकल्पय**=संक्लृप्त व मिला हुआ कर दे। २. **ते**-तेरा **असृक्**-रुधिर जोकि अस्थियों के समीप से पृथक् हो गया है वह फिर से **अस्थि रोहतु**=तेरी अस्थियों को प्राप्त हो जाए। इसीप्रकार और भी **छिन्नम्**-जो-जो अङ्ग छिन्न हुआ है, उन सबको **सन्धेहि**=संश्लिष्ट व कार्यक्षम कर दे।

भावार्थ—रोहणी के प्रयोग से आघात से उत्पन्न हुए-हुए लोमों व त्वचा के विकार दूर हो जाएँ तथा सब छिन्न अङ्ग फिर से ठीक होकर कार्यक्षम हो जाएँ।

ऋषिः—ऋभुः ॥ देवता—रोहणी वनस्पतिः ॥ छन्दः—त्रिपदायवमध्याभुरिग्गायत्री ॥

'सुचक्र, सुपवि, सुनाभि' रथ

स उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः। प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥ ६ ॥

१. हे घायल पुरुष! **सः**-वह तू ओषधि प्रयोग से संहितगात्र हुआ-हुआ **उत्तिष्ठ** उठ खड़ा हो, **प्रेहि**-प्रकर्षेण इधर उधर जानेवाला हो **प्रद्रव**-वेग से जानेवाला हो। २. तेरा यह **रथः**-शरीर रथ अब **सुचक्रः**-उत्तम हाथ-पाँव आदि अङ्गोंवाला हो गया है, **सुपविः** उत्तम नेमि व चक्रधारावाला यह शरीर रथ है, **सुनाभिः**-उत्तम नाभिवाला है। इसप्रकार अब तू सुदृढ़ अङ्गोंवाला हुआ-हुआ **ऊर्ध्वः** उत्थित हुआ हुआ **प्रतितिष्ठ**=अपने कार्यों के लिए प्रतिष्ठित हो।

भावार्थ—रोहणी के प्रयोग से स्वस्थ व सुदृढ़ अङ्गोंवाला हुआ हुआ यह पुरुष अपने कार्यों में व्यापृत हो जाए।

ऋषिः—ऋभुः ॥ देवता—रोहणी वनस्पतिः ॥ छन्दः—बृहती ॥

सब रथाङ्गों का ठीक होना

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत्परुषा परुः ॥ ७ ॥

१. **यदि कर्तम्** यदि किसी छेदक आयुध ने **पतित्वा**-गिरकर **संशश्रे** हिंसित किया है, **यदि वा** अथवा किसी के द्वारा **अश्मा**-पाषाण (पत्थर) **प्रहृतः**-फेंका हुआ **जघान**-पुरुष को हिंसित करता है तो इस रोहणी औषध का सामर्थ्य **परुः** पर्व को **परुषा**-दूसरे पर्व से **सन्दधत्**-संहित कर दे—फिर से घाव को ठीक करके सब पर्वों को ठीक से संश्लिष्ट कर दे। २. यह ओषधि सब अङ्गों को इसप्रकार संश्लिष्ट कर दे **इव**=जैसेकि **ऋभुः** ज्ञानी शिल्पी **रथस्य अंगानि** रथ के अंगों को संश्लिष्ट कर देता है। संश्लिष्ट (जुड़ा) हुआ रथ ठीक गतिवाला होता है, इसीप्रकार यह आहत पुरुष भी अब संश्लिष्ट अङ्ग होकर कार्यों में शीघ्रता से गतिवाला हो।

भावार्थ—यदि किसी आयुध या पत्थर से घाव हो गया है तो यह रोहणी ओषधि उसे ठीक कर दे। इसके प्रयोग से ठीक हुआ-हुआ शरीर-रथ अपने कार्यों में व्याप्त हो।

विशेष—नीरोग हुआ-हुआ यह पुरुष सब अङ्गों में शान्तिवाला हुआ-हुआ 'शन्ताति' कहलाता है। यह नीरोगता के लिए ही प्रार्थना करता हुआ कहता है—

१३. [त्रयोदशं सूक्तम्]

ऋषिः—शन्तातिः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—अनुष्टुप् ॥

'स्वस्थ व निष्पाप' जीवन

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥ १ ॥

१. हे **देवाः**-आधि व्याधियों पर विजय पाने की कामनावाले **देवाः**-विद्वान् पुरुषो! आप **अवहितम् उत** रोगादि से नीचे पड़े हुए भी इस पुरुष को पुनः **उन्नयथ** फिर से उन्नत कर देते हो। आप इसे फिर से उठा देते हो। २. **उत** और हे **देवाः**-ज्ञान की ज्योतिवाले **देवाः**-ज्ञानी पुरुषो! आप **आगः चक्रुषम्**-पाप कर चुके हुए भी इस पुरुष की पापवृत्ति को दूर करके **पुनः**-फिर से **जीवयथ**=नवजीवन प्रदान करते हो।

भावार्थ—देवपुरुष हमारे रोगों व पापों को दूर करके हमें नया, स्वस्थ और निष्पाप जीवन प्रदान करें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**विश्वेदेवाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्राण+अपान

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः। दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद्रपः॥ २॥

१. **इमौ**=ये **द्वौ वातौ**=प्राण और अपानरूप दो वायुएँ **वातः**=शरीर में सञ्चरण करती हैं। इनमें से एक प्राण तो **आसिन्धोः**=स्यन्दनशील स्वेद के अयनोंपर्यन्त गतिवाला होता है तथा दूसरा अपान **आपरावतः**-शरीर से बाहर बारह अंगुल परिमित स्थान तक संचारवाला होता है। २. इनमें **अन्यः**=एक प्राण **ते**=तेरे लिए **दक्षम् आवातु**-बल प्राप्त कराए और **अन्यः**=दूसरा अपान तेरा **यत् रपः**-जो पाप व दोष है, उसे **विवातु**=तुझसे दूर करे।

भावार्थ—शरीर में ठीक गति करता हुआ 'प्राण' बल का सञ्चार करे और 'अपान' शरीरस्थ दोषों को दूर करे।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**विश्वेदेवाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दोष-निवारण

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः। त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे॥ ३॥

१. हे **वात**-प्राणवायो! तू **भेषजम्**-सर्वव्याधिनिवर्तक औषध को **आवाहि**-प्राप्त करा। हे **वात**-अपान वायो! **यत् रपः**=जो पाप व दोष व्याधि का निदान (कारण) है, उसे **विवाहि**=दूर कर। २. हे वायो! **त्वं हि**=तू ही **विश्वभेषज**=सब व्याधियों का निवर्तक है। तू **देवानाम्**=सब इन्द्रियों का **दूतः**=दूत की भाँति समीपवर्ती होता हुआ उनके पोषण के लिए **ईयसे**-सारे शरीर को व्याप्त करके गतिवाला होता है, अतः हे विश्वभेषज वात! तू इन इन्द्रियों को निर्दोष बना।

भावार्थ—हम प्राणापान की साधना करते हुए सब इन्द्रियों को निर्दोष, नीरोग व सबल बनाएँ।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**विश्वेदेवाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देव+मरुद्गण—विश्वा भूतानि

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्॥ ४॥

१. **देवाः**=वाणी आदि इन्द्रियों के अधिष्ठातृभूत अग्नि आदि देव उस-उस इन्द्रिय की कार्य-क्षमता देते हुए **इमम् त्रायन्ताम्**=इस पुरुष को रक्षित करें तथा **मरुतां गणाः**=देह में अवस्थित प्राण-अपान-व्यान आदि के गण इसे **त्रायन्ताम्**=रक्षित करें २. **विश्वा भूतानि**-शरीर का निर्माण करनेवाले पृथिवी आदि पाँचों भूत **त्रायन्ताम्**-इसका रक्षण करें, **यथा**=जिससे **अयम्**=यह पुरुष **अरपाः**=निष्पाप व निर्दोष शरीरवाला **असत्**=हो जाए।

भावार्थ—शरीर में अग्नि आदि देव तथा प्राण, अपान, व्यान आदि के गण ठीक से कार्य करते हुए हमारा रक्षण करें। पृथिवी आदि पाँचों भूत ठीक स्थिति में होते हुए हमारे शरीर को निर्दोष बनाएँ।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**विश्वेदेवाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'शन्तातिः अरिष्टताति' भेषज

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥ ५॥

१. वैद्य रोगी से कहता है कि मैं **त्वा**=तेरे समीप **शन्तातिभिः**-शान्ति का विस्तार करनेवाली (शं कर) **अथो** और **अरिष्टतातिभिः** हिंसा न करनेवाली ओषधियों के साथ **आ अगमम्**=प्राप्त हुआ हूँ। २. मैं **ते** तेरे लिए इनके ठीक विनियोग से **उग्रम्** उद्गूर्ण—प्रबल **दक्षम्**-समृद्धिकर बल को **आभारिषम्** लाया हूँ। बस, मैं शीघ्र ही **यक्ष्मम्** रोग को **ते**-तुझसे **परा सुवामि**=दूर करता हूँ।

भावार्थ—वैद्य रोगी को रोगों को शान्त करनेवाली तथा हानिरहित औषधों का सेवन कराके सबल व नीरोग बनाता है।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**विश्वेदेवाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शिवाभिमर्शन हस्त

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः। अयं मे विश्वभेषजोऽ यं शिवाभिमर्शनः ॥ ६ ॥

१. वैद्य रोगी से कहता है कि **अयं मे हस्तः**-यह मेरा बायाँ हाथ **भगवान्**-बड़ा भाग्यवाला है, **अयम्**-यह **मे** मेरा दायाँ हाथ **भगवत्तरः**-अतिशयित भाग्ययुक्त है। २. **अयम्**-यह **मे** मेरा बायाँ हाथ **विश्वभेषजः**-सब ओषधियों को लिये हुए है तथा **अयम्**-यह दायाँ तो **शिवाभिमर्शनः** सुखकर स्पर्शवाला है—छूते ही कल्याण करनेवाला है।

भावार्थ—वैद्य रोगी को आश्वस्त व विश्वस्त करता हुआ कहता है कि मेरे हाथ बड़े भाग्यवाले हैं। ये तुझे ओषधि देते ही व छूते ही ठीक किये देते हैं।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**विश्वेदेवाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अनामयित्नु हाथ

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि॥ ७॥

१. वैद्य जब रोगी की चिकित्सा करता है तब हाथों का प्रयोग तो करता ही है, परन्तु जिह्वा वाक् की पुरोगवी होती है, जिह्वा शब्दों के उच्चारण के लिए पहले व्यापृत होती है। हाथ से यदि वह उसे औषध देता है, तो वाणी से उसे उत्साह प्राप्त कराता है। **दशशाखाभ्यां हस्ताभ्याम्**-दश शाखाओंवाले हाथों के साथ **जिह्वा**-वागिन्द्रिय की अधिष्ठातृभूत रसना **वाचः**-शब्द को **पुरोगवी**-आगे ले चलनेवाली होती है। शब्द के उच्चारण के लिए यह रसना व्यापृत होती है। २. वैद्य कहता है कि **अनामयित्नुभ्याम्**-आरोग्य के हेतुभूत **ताभ्यां हस्ताभ्याम्**=उन हाथों से **त्वा**-तुझे **अभिमृशामसि**-अभितः संस्पृष्ट करते हैं। यह हाथों का स्पर्श तुझे नीरोग बना देगा।

भावार्थ—वैद्य हाथों से रोगी की चिकित्सा करता हुआ वाणी से उसे उत्साहित करनेवाला हो, उसे यही कहे कि मेरे हाथ तुझे अभी स्वस्थ किये देते हैं। ये हाथ अनामयित्नु हैं।

विशेष—नीरोग बनकर यह व्यक्ति तपस्वी बनता है 'भृगु' (भ्रस्ज पाके)। भृगु बनकर ऊपर उठता हुआ यह ब्रह्म को प्राप्त करता है

१४. [चतुर्दशं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, आज्यम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

जनितृ-दर्शन

अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे।
तेन देवा देवतामग्र आयन्तेन रोहान्रुरुहुर्मेध्यासः॥ १॥

१. **अग्नेः**-उस अग्रणी प्रभु के **शोकात्**-दीपन से (शुच to illuminate), प्रकाश से **हि**=ही **अजः अजनिष्टः**=जीवात्मा गति के द्वारा सब बुराइयों को परे फेंकनेवाला बनता है (अज् गतिक्षेपणयोः)। **सः**=यह बुराइयों को परे फेंकनेवाला जीव **जानितारम्**=उस उत्पादक प्रभु को **अग्रे**-सामने **अपश्यत्**-देखता है। २. यह परमात्मा को इस रूप में देखता है कि **तेन**=उस प्रभु से ही **देवाः**=सब देव **अग्रे**-सर्वप्रथम **देवताम्**-देवत्व को **आयन्**=प्राप्त होते हैं। सूर्यादि देवों को प्रभु ही दीप्ति प्राप्त कराते हैं। इसीप्रकार **मेध्यासः**-पवित्र जीवनवाले पुरुष **तेन**-उस प्रभु के द्वारा ही **रोहान् रुरुहुः** उन्नति-शिखरों पर आरोहण करते है। बुद्धिमान् पुरुष प्रभु से ही बुद्धि प्राप्त करते हैं, बलवानों को वे प्रभु ही बल देते हैं।

भावार्थ—प्रभु के दीपन से जीव सब बुराइयों को दूर कर पाता है। अब यह प्रभु-दर्शन करता है और देखता है कि प्रभु से ही सूर्यादि सब देव देवत्व को प्राप्त होते हैं तथा सब पवित्र जीव प्रभु से ही उन्नति-शिखरों पर आरोहण कर पाते हैं।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, आज्यम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यज्ञ व स्वर्ग

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान्हस्तेषु बिभ्रतः।
दिवस्पृष्ठं स्व1र्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम्॥ २॥

१. **उख्यान्**=उखा (स्थाली, हाँडी) में पकाये जानेवाले अन्नों को **हस्तेषु बिभ्रतः**=हाथों में धारण करते हुए—अन्नदान करते हुए अथवा यज्ञों में इनका विनियोग करते हुए तुम **अग्निना**=उस अग्रणी प्रभु की सहायता से **नाकं क्रमध्वम्**=स्वर्ग की ओर गतिवाले होओ—यज्ञों के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करो। २. **दिवः पृष्ठम्**-द्युलोक के पृष्ठ पर **स्वः गत्वा**-स्वर्गलोक को प्राप्त करके **देवेभिः मिश्राः**-देवो के सम्पर्क में आये हुए तुम **आध्वम्**=आसीन होओ।

भावार्थ—अन्नदान व अग्निहोत्र स्वर्ग-प्राप्ति के साधन हैं। ज्ञानियों के सम्पर्क में आसीन होना ही स्वर्ग है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, आज्यम्** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

स्वर्ज्योति की प्राप्ति

पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्व1र्ज्योतिरगामहम्॥ ३॥

१. **पृथिव्याः पृष्ठात्**=पृथिवी के पृष्ठ से **अहम्**=मैं **अन्तरिक्षम् आरुहम्**=अन्तरिक्षलोक में आरोहण करूँ। जब मनुष्य भोगों से ऊपर उठकर रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है, तब वह अगला जन्म मर्त्यलोक में न लेकर अन्तरिक्षलोक—चन्द्रलोक में ही लेता है। चन्द्रलोकवासी व्यक्ति 'पितृ' संज्ञावाले होते हैं। २. **अन्तरिक्षात्**=अन्तरिक्ष से भी ऊपर उठकर मैं **दिवम् आरुहम्**-द्युलोक का आरोहण करूँ। ज्ञान प्रधान जीवन बिताने पर देवयान से चलते हुए हम द्युलोक—सूर्यलोक में जन्म लेते हैं। यहाँ हमारा नाम देव हो जाता है। ३. यही स्वर्गलोक है। यहाँ दुःख नहीं, अतः इसे 'नाकम्' (न अकम् अस्मिन्) कहते हैं। इस **नाकस्य पृष्ठात्**=स्वर्ग के पृष्ठरूप **दिवः**-द्युलोक से भी ऊपर उठकर **अहम्**=मैं **स्वः ज्योतिः**=स्वयं देदीप्यमान ज्योति ब्रह्म को **अगाम**=प्राप्त होऊँ।

भावार्थ—'पृथिवी से अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष से द्युलोक में, स्वर्गपृष्ठ द्युलोक से ब्रह्मलोक में'—यह है हमारा यात्रा-क्रम। इसे पूर्ण करते हुए हम ब्रह्म को प्राप्त हों।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, आज्यम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विश्वतोधार यज्ञ

स्व१र्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे॥ ४॥

१. **स्वः यन्तः**=स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु की ओर जाते हुए **ये सुविद्वांसः**-जो उत्तम ज्ञानी पुरुष हैं, वे **न अपेक्षन्ते**-ऐहिक सुखों की—प्रजा, पशु, अन्न आदि भौतिक काम्य वस्तुओं की अपेक्षा नहीं करते। इन वस्तुओं की कामना से वे ऊपर उठ जाते हैं। वे तो गतमन्त्र में वर्णित क्रम से **द्याम्**-अन्तरिक्ष का व **रोदसी**-द्यावापृथिवी का **आरोहन्ति**=आरोहण करते हैं। २. इस आरोहण के लिए ही ये **विश्वतोधारम्** सबका धारण करनेवाले **यज्ञं वितेनिरे** यज्ञ का विस्तार करते हैं। यह विश्वतोधार यज्ञ ही प्रभु प्राप्ति का उपाय बनता है।

भावार्थ—हम ज्ञानी बनकर लौकिक वस्तुओं की कामना से ऊपर उठें और सबका धारण करनेवाले यज्ञों को करते हुए प्रभु को प्राप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, आज्यम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'भृगुभिः सजोषाः' यजमानाः

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम्।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्व१र्यन्तु यजमानाः स्वस्ति॥ ५॥

१. हे **अग्ने**-परमात्मन्! **प्रेहि**-आप हमें प्राप्त होओ—हम आपको प्राप्त कर सकें। आप ही **देवतानां प्रथमः**-सब देवों में प्रथम (मुख्य) हैं। आपसे ही तो सब देव देवत्व को प्राप्त करते हैं। आप **देवानां चक्षुः**=सूर्यादि सब ज्योतिर्मय पिण्डों के प्रकाशक हैं, **उत** और **मानुषाणाम्**-विचारशील पुरुषों के लिए भी बुद्धिप्रदान द्वारा प्रकाश प्राप्त करानेवाले हैं—**'बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि'**। २. **इयक्षमाणाः**=यज्ञों की कामनावाले, **भृगुभिः सजोषाः**-ज्ञानपरिपक्व लोगों के साथ समानरूप से प्रीतिवाले **यजमानाः**-यज्ञशील पुरुष **स्वस्ति**-कल्याणपूर्वक **स्वः यन्तु**=उस स्वयं देदीप्यमान ज्योतिस्वरूप प्रभु को प्राप्त करें।

भावार्थ—प्रभु ही सब देवों के अग्रणी और सूर्यादि के प्रकाशक हैं, वे ही बुद्धिमानों की बुद्धि हैं। यज्ञ की कामनावाले, ज्ञानियों के सम्पर्क में रहनेवाले यज्ञशील पुरुष कल्याणपूर्वक प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, आज्यम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पयसा घृतेन

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्व१रारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम्॥ ६॥

१. **पयसा** शक्तियों के आप्यायन के द्वारा तथा **घृतेन**-ज्ञानदीप्ति के द्वारा **अजम्** गति के द्वारा सब बुराइयों को परे फेंकनेवाले प्रभु को **अनज्मि** मैं प्राप्त होता हूँ। उस प्रभु को जो **दिव्यम्** सदा ज्ञान के प्रकाश में निवासवाले हैं, **सुपर्णम्** उत्तमता से हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं, **पयसम्**-आप्यान—वर्धन के कारण हैं, **बृहन्तम्**-स्वयं सदा बढ़े हुए हैं। २. **तेन**-उस प्रभु के द्वारा-प्रभु की उपासना द्वारा **सुकृतस्य लोकम्**=पुण्य के लोक को **गेष्म** जाएँ। **स्वः आरोहन्तः**-उस स्वयं देदीप्यमान ज्योति की ओर आरोहण करते हुए हम **उत्तमं नाकम्**-दुःख-संस्पर्शशून्य उत्तम लोक की **अभि**=ओर जानेवाले हों। इसी नाकलोक से ऊपर उठकर हम प्रभु

को प्राप्त करेंगे।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति का मार्ग यही है कि हम इन्द्रियों की शक्ति का वर्धन करें और ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, आज्यम्** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

पञ्चौदन

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम्।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम्॥ ७॥

१. जैसे ओदन [भात] अंगुलियों व दर्वी (कड़छी) से निकाला जाता है, उसी प्रकार ज्ञान का ओदन (भोजन) भी अंगुलियों से (अगि गतौ), अर्थात् गतिशीलता से तथा दर्वी से अर्थात् (दॄ विदारणे) वासनाओं के विदारण से उद्धृत हुआ करता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होनेवाला यह ओदन 'पञ्चौदन' कहलाता है। प्रभु जीव से कहते हैं कि तू **पञ्चभिः अंगुलिभिः**=पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की सम्यग् गतियों के द्वारा तथा **दर्व्या**-वासना-विदारण के द्वारा **पञ्चधा**-पाँच भागों में बँटे हुए—'शब्द-स्पर्श-रूप-रस गन्ध' भेद से पाँच प्रकार के **एतं ओदनम्**=इस ज्ञान को जोकि 'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी' रूप पाँचों भूतों का ज्ञान होने से **पञ्चौदनम्**=पञ्चौदन कहलता है, उस ज्ञान को **उद्धर**=कुएँ से पानी प्राप्त करने की भाँति आचार्यों से प्राप्त कर। २. ज्ञान को प्राप्त करता हुआ तू **अजस्य**-(अज गतिक्षेपणयोः) गति के द्वारा सब बुराइयों को परे फेंकनेवाले उस आत्मा के **शिरः**-शरीरस्थ सिर (मस्तिष्क) को **प्राच्यां दिशि धेहि**-प्राची दिशा में स्थापित कर। यह ज्ञान-प्राप्ति के कार्य में निरन्तर प्रगतिशील (प्र अञ्च) हो। मस्तिष्क का प्राची में स्थापन यही है कि यह ज्ञान-प्राप्ति में निरन्तर आगे और आगे बढ़ता चले। २. इस अज के **दक्षिणं पार्श्वम्**=दाहिने पासे को **दक्षिणायां दिशि**=दक्षिण दिशा में **धेहि**-स्थापित कर। इस अज के शरीर का यह दक्षिण हस्त कार्यों को दाक्षिण्य से करनेवाला हो। ज्ञानी पुरुष को कर्मों को कुशलता से करना ही शोभा देता है।

भावार्थ—पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की ठीक गतियों व वासना-विनाश के द्वारा हम आचार्यों से पञ्चभूतात्मक संसार का ज्ञान प्राप्त करें। मस्तिष्क को ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग में निरन्तर गतिवाला बनाएँ तथा हमारा दक्षिण हस्त दाक्षिण्य से कर्म करनेवाला हो।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, आज्यम्** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिशक्वरी** ॥

'अज' का जीवन

प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम्।
ऊर्ध्वायां दिश्य१जस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्य१मन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य॥ ८॥

१. **अस्य**=इस अज के **भसदम्**=कटिप्रदेश (उपस्थ) को **प्रतीच्यां दिशि**=प्रतीची दिशा में **धेहि**-स्थापित कर, अर्थात् इसे भोगवृत्ति से (प्रति अञ्च्) प्रत्याहृत कर। **उत्तरं पार्श्वम्**-उत्तर पार्श्व को **उत्तरस्यां दिशि**=उत्तर दिशा में **धेहि**=स्थापित कर। शरीर में 'वामपार्श्व' को ही उत्तर पार्श्व कहा जाता है। यह 'वामपार्श्व' वाम, अर्थात् सुन्दर व उत्कृष्ट कार्यो को ही करनेवाला हो। २. **अजस्य**=गतिशीलता द्वारा वासनाओं को परे फेंकनेवाले इस अज की **अनूकम्**-पृष्ठवंश की अस्थि को (Spine, Backbone) **ऊर्ध्वायां दिशि धेहि**-ऊर्ध्व दिशा में स्थापित कर, अर्थात् इसे कभी झुकने न दे। पृष्ठवंश के सीधे रहने पर ही दीर्घजीवन निर्भर है। तू **पाजस्यम्**-बल

के लिए हितकर उदर को **ध्रुवायां दिशि** ध्रुव दिशा में **धेहि**-स्थापित कर, अर्थात् उदर-सम्बद्ध भोजन की मर्यादा का कभी भी उल्लंघन मत कर और अन्त में **अस्य**-इस अज के **मध्यम्**-मध्यभाग को **अन्तरिक्षे मध्यतः** अन्तरिक्ष में मध्य के दृष्टिकोण से स्थापित कर। हृदयान्तरिक्ष में कभी भी निर्मर्याद भावनाएँ न उठें। हृदय सदा स्वर्णीय मध्य को अपनाने की वृत्तिवाला हो।

भावार्थ—'अज' वह है जोकि उपस्थ का संयम करता है, वामहस्त से वाम (सुन्दर) कार्यों को ही करता है, पृष्ठवंश को सीधा रखता है, भोजन की मर्यादा को कभी तोड़ता नहीं और हृदय में स्वर्णीय मध्म में चलने की वृत्तिवाला होता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः आज्यम्** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'शृत अज'

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम्।
स उत्तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु॥ ९॥

१. गतमन्त्रों में वर्णित साधना के अनुसार **शृतम्**-जिसका ठीक परिपाक हुआ है, उस **अजम्** गतिशीलता के द्वारा बुराइयों को परे फेंकनेवाले व्यक्ति को **शृतया**=त्वचा से **प्रोर्णूहि**-आच्छादित कर, अर्थात् तपस्या के द्वारा हम त्वचा को कठोर बनाएँ। इसप्रकार शरीर बीमारियों का शिकार नहीं होगा। इस 'अज' में **सर्वैः अङ्गैः**-पूर्ण स्वस्थ (सर्व-Whole) अङ्गों से **विश्वरूपं संभृतम्**-सम्पूर्ण शरीर का सौंदर्य संभृत हुआ है। २.हे अज ! **सः**=वह तू **इतः**-यहाँ से—इस पार्थिवलोक में निवास से **नाकम्-अभि**-मोक्ष की ओर **उत्तिष्ठ**-उठ खड़ा हो। तू **दिक्षु**-सब दिशाओं में, अर्थात् सर्वत्र **चतुर्भिः पद्भिः**-'धमार्थ-काममोक्ष' रूप चारों पगों के द्वारा **प्रतितिष्ठ** जीवन-यात्रा में प्रस्थित हो। अथवा 'स्वाध्याय, यज्ञ, तप व दान' रूप चारों धर्मों का पालन करता हुआ तू मोक्ष की ओर बढ़।

भावार्थ—हम तपस्या की अग्नि में अपना ठीक परिपाक करें। हमारी त्वचा तपः परिपक्व हो, शरीर स्वस्थ अङ्गों के सौन्दर्य से परिपूर्ण हो तथा 'स्वाध्याय, यज्ञ, तप व दान' रूप चार धर्मों के पालन के द्वारा हम मोक्ष की ओर बढ़ें।

विशेष—इसप्रकार जीवन का ठीक परिपाक करनेवाला अज 'अथर्वा' बनता है—स्थिर वृत्ति का। यही अगले सूक्त का ऋषि है।

१५. [पञ्चदशं सूक्तं]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**दिशः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥

गर्जते हुए बादलों का वर्षण

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु॥ १॥

१. **प्रदिशः**-ये विस्तृत प्राची आदि दिशाएँ **नभस्वतीः** (नभस्वता वायुना युक्ताः सा०) वायु से युक्त हुई-हुई **समुत्पतन्तु**=मेघयुक्त होकर उद्गत हों। **अभ्राणि**=उदकपूर्ण मेघ **वातजूतानि**-वायु से प्रेरित हुए हुए **संयन्तु** संगत हों। २. **महऋषभस्य**=महान् ऋषभ के आकारवाले **नदतः**-गर्जन करते हुए **नभस्वतः**-वायु-प्रेरित मेघ से **आपः** जल **वाश्राः**-शब्दायमान होते हुए **पृथिवीम्**-इस भूमि को **तर्पयन्तु**-तृप्त, अर्थात् ओषधि-प्ररोहण-समर्थ करें।

भावार्थ—दिशाएँ बादलों से घिर जाएँ। वायु-प्रेरित बादल आकाश को आवृत कर लें। इन गर्जते हुए मेघों के जल भूमि को तृप्त करके इसे ओषधि-प्ररोहण समर्थ करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वीरुधः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

ओषधियों की उत्पत्ति

समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग्जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः॥ २॥

१. **तविषाः**=महान् **सुदानवः**=उत्तम दानवाले मरुत् (मेघ-प्रेरक वायुएँ) **समीक्षयन्तु**=वृष्टि का दर्शन कराएँ। **अपां रसाः**=वृष्टि-जलों के रस **ओषधिभिः**=पृथिवी में बोये गये चावल-जौ आदि के बीजों के साथ **सचन्ताम्**=संगत हों। २. **वर्षस्य सर्गाः**=वृष्टि की धाराएँ **भूमिम्**=पृथिवी को **महयन्तु**=महिमायुक्त (समृद्ध) करें और वृष्टिधाराओं से अलंकृत भूप्रदेश से **विश्वरूपाः**=नानाविध **ओषधयः**=व्रीहि-यव आदि ओषधियाँ **पृथक्**=अलग-अलग, विविध स्थानों में **जायन्ताम्**=उत्पन्न हों।

भावार्थ—प्रभूत वृष्टि होकर पृथिवी में उप्त (बोये हुए) बीज जलों से सङ्गत हों। वृष्टि-जलों से पृथिवी के तृप्त होने पर ओषधियाँ खूब उत्पन्न हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वीरुधः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वीरुत् विकास

समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद्विजन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग्जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः॥ ३॥

१. हे प्रभो! **गायतः**=स्तुति करनेवाले हम लोगों को **नभांसि**=अभ्रों को—वृष्टिजलयुक्त मेघों को **समीक्षयस्व**=दिखलाइए। **अपां वेगासः**=जलों के वेग **पृथक्**=विविध स्थलों पर **अद्विजन्ताम्**=उच्चलित हो उठें। २. **वर्षस्य सर्गाः**=वृष्टि की धाराएँ **भूमिम्**=भूमि को **महयन्तु**=पूजित—समृद्ध करें। **विश्वरूपाः**=नानाविध रूपोंवाली **वीरुधः**=फैलनेवाली बेलें **पृथक्**=अलग-अलग स्थानों में **जायन्ताम्**=उत्पन्न हों।

भावार्थ—हम स्तुति करनेवालों को प्रभु ठीक वृष्टि प्राप्त कराके विविध लताओं को प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मारुत्पर्जन्यौ**॥ छन्दः—**विराड्पुरस्ताद्बृहती**॥

मेघगर्जना में प्रभु-महिमा का गायन

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्यघोषिणः पृथक्।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु॥ ४॥

१. हे प्रभो! **पर्जन्यघोषिणः**=बादलों की गर्जनवाले **मरुताः गणाः**=वृष्टि लानेवाले वायुओं के गण **त्वा उपगायन्तु**=आपका ही गायन करें। हम इन मरुतों के शब्दों में—इन बादलों की गर्जना में आपकी ही महिमा के गायन का अनुभव करें। २. **वर्षतः** पृथिवी को सींचते हुए **वर्षस्य**=वृष्टि करनेवाले मेघ की **सर्गाः**=जल धाराएँ **पृथक्**=विविध स्थानों में **पृथिवीम्**=पृथिवी को **अनुवर्षन्तु**=अनुकूलता से सींचनेवाली हों।

भावार्थ—हम मेघ-गर्जना में, वायु की ध्वनियों में प्रभु की महिमा का गायन सुनें। वृष्टिजल की धाराएँ पृथिवी को अनुकूलता से सींचनेवाली हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥

समुद्रजल का वाष्पीभवन व मेघ-निर्माण

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु॥ ५॥

१. हे **मरुतः**-वायुओ! **समुद्रतः**-समुद्र से वृष्टिजल को **उदीरयत**=ऊपर प्रेरित करो। **त्वेषः अर्कः** यह दीप्तिवाला सूर्य है हे मरुतो! इस सूर्य से सहायता प्राप्त करके **नभः**-जलयुक्त मेघोंको **उत्पातयाथ** ऊपर आकाश में प्राप्त कराओ। २. **महऋषभस्य**-महान् ऋषभ के समान **नदतः**-गर्जना करते हुए **नभस्वतः**-वायुप्रेरित मेघ के **वाश्राः** शब्दायमान **आपः**-जल **पृथिवीम् तर्पयन्तु**-पृथिवी को तृप्त करें—उसे ओषधियों के प्ररोहण में समर्थ करें।

भावार्थ—सूर्य का प्रचण्ड ताप तथा वायुएँ मिलकर आकाश में मेघों को प्राप्त कराएँ। 'पृथिवी का समुद्र' 'आकाश का समुद्र' बन जाए। तब वृष्टि होकर पृथिवी नाना ओषधियों को जन्म देनेवाली हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मूसलधार वृष्टि

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम्॥ ६॥

१. हे **पर्जन्य**=मेघ! तू **अभिक्रन्द**=चारों ओर से गर्जना करनेवाला हो। **स्तनय** विद्युत् की कड़क को उत्पन्न कर, **उदधिं अर्दय**-(अर्द याचने) समुद्र से जल की याचना कर। तू समुद्र से जल प्राप्त करनेवाला हो और **भूमिम्**-इस पृथिवी को **पयसः**-जल से **समंग्धि**=समक्त—संसिक्त कर। २. **त्वया सृष्टम्**-तुझसे उत्पन्न की हुई **बहुलं वर्षम्**-खूब वर्षा **आ एतु**=यहाँ भूमि पर समन्तात् प्राप्त हो। **कृशगुः**-वृष्टि के अभाव में घास के न होने से कृश गौओंवाला यह किसान **आशार एषी** धारा सम्पात को चाहनेवाला, खूब वृष्टि होने पर प्रसन्न मन से **अस्तम् एतु** घर को आये। मूसलधार वर्षा में बाहर खड़ा होना सम्भव ही न हो।

भावार्थ—मूसलधार वृष्टि होकर भूमि तृणसंकुल हो जाए। गौ आदि पशु पर्याप्त चारे को प्राप्त करके कृश न रहें, आप्यायित शरीरोंवाले हो जाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मेघों से उत्पन्न जल-प्रवाह

सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु॥ ७॥

१. हे **सुदानवः**=शोभन दान करनेवाले मनुष्यो! ये **उत्साः** जलों के प्रवाह **उत अजगराः** जोकि अजगरों के समान स्थूल आकारवाले प्रतीत हो रहे हैं (उत वितर्के), वे **वः**-तुम्हें **समवन्तु**-सम्यक् रक्षित करें। २. **मरुद्भिः**-वायुओं से **प्रच्युताः**=प्रेरित हुए हुए **मेघाः**-बादल **पृथिवीं अनु वर्षन्तु**-पृथिवी पर अनुकूलता से वर्षा करें।

भावार्थ—हम अग्निहोत्र में सम्यक् आहुति देनेवाले हों—सुदानु बनें, तब मेघों से वृष्टि होकर स्थूल जल-प्रवाह हमारा कल्याण करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सर्वत्र वृष्टि की अनुकूलता

आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु॥ ८॥

१. **आशाम् आशम्**=प्रत्येक दिशा में **विद्योतताम्**=विद्युत् की दीप्तियाँ चमकें। **दिशोदिशः**=प्रत्येक दिशा को प्राप्त करके **वाताः वान्तु**=मेघों को लानेवाले वायु बहें। २. **मरुद्भिः**=वायुओं से **प्रच्युताः मेघाः**=प्रेरित मेघ वृष्टि द्वारा **पृथिवीम् अनुसंयन्तु**=पृथिवी को अनुकूलता से प्राप्त रहें।

भावार्थ—गतमन्त्र के अनुसार प्रजा के अग्निहोत्र आदि करने पर सर्वत्र वृष्टि की अनुकूलता हो। बादलों में विद्युत् की दीप्ति चमके और वृष्टि को लानेवाले वायु सर्वत्र बहें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

वृष्टि का वातावरण

आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु॥ ९॥

१. हे **सुदानवः**=उत्तम दानशील पुरुषो! **आपः**=मेघस्थ जल, **विद्युत्**=बिजली, **अभ्रम्**=उदकपूर्ण मेघ **वर्षम्**=वृष्टि **उत अजगराः**=अजगरों के समान प्रतीत होनेवाले **उत्साः**=जल-प्रवाह—ये सब **वः**=तुम्हें **सम् अवन्तु**=सम्यक् रक्षित करें। २. **मरुद्भिः**=वायुओं से **प्रच्युताः मेघाः**=प्रेरित मेघ वृष्टि द्वारा **पृथिवीम् अनुसंयन्तु**=पृथिवी की अनुकूलता से रक्षा करें।

भावार्थ—अग्निहोत्र में उत्तम आहुतियाँ देनेवाले पुरुषों के लिए वायु-प्रेरित मेघ आदि सम्यक् वृष्टि करनेवाले और उनका रक्षण करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

'अमृत व प्राणस्वरूप' वृष्टिजल

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि॥ १०॥

१. **अपां तनूभिः संविदानः**=मेघस्थ जलों के शरीरों से ऐक्य को प्राप्त हुआ-हुआ—एक हुआ-हुआ **यः अग्निः**=जो विद्युद्रूप अग्नि है, वह **ओषधीनाम्**=ओषधियों का **अधिपाः बभूव**=अधिपति होता है। २. **सः**=वह **जातवेदाः**=प्रत्येक उत्पन्न मेघ में विद्यमान विद्युद्रूप अग्नि **दिवः परि**=आकाश से **अमृतं वर्षम्**=अमृततुल्य वृष्टिजल जो **प्रजाभ्यः प्राणम्**=प्रजाओं के लिए प्राणरूप है, उसे **नः**=हमारे लिए **वनुताम्**=प्राप्त कराए।

भावार्थ—विद्युत् मेघ जलों में संचरित होता हुआ उन मेघ-जलों को अमृत बना देता है। ये मेघजल प्रजाओं के लिए प्राण ही होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**प्रजापतिः, स्तनयित्नुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रजापति का जल-प्रेरण

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि॥ ११॥

१. **प्रजापतिः**=प्रजाओं का पालक वृष्टिप्रद सूर्य **सलिलात्**=जलमय **समुद्रात्**=समुद्र से

आपः जलों को **आ ईरयन्**-समन्तात् प्रेरित करता हुआ **उदधिम्** समुद्र को **अर्दयाति** हलचलवाला करता है। २. **वृष्णः**-वृष्टि करनेवाले **अश्वस्य**-आकाश में व्याप्त होनेवाले (अश् व्याप्तौ) मेघ का **रेतः**-वृष्टि का उपादानभूत वीर्य **प्र प्यायताम्**=बढ़े—मेघ की शक्ति बढ़े और खूब वर्षा हो। हे वृष्टे! तू **एतेन**-इस **स्तनयित्नुना** गर्जन करनेवाले मेघ के साथ **अर्वङ् एहि**-यहाँ—हमारे अभिमुख प्राप्त हो।

भावार्थ—सूर्य समुद्र से जलों को आकाश में प्रेरित करे। मेघ की शक्ति बढ़े और गर्जना के साथ वृष्टि होकर यहाँ पृथिवी पर वृष्टिजल प्राप्त हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽनुष्टुबगर्भाभूरिक्त्रिष्टुप्** ॥

गर्गर ध्वनियुक्त वृष्टिजल प्रवाह

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु॥ १२ ॥

१. **असुरः**-(असु क्षेपणे) मेघों को अन्तरिक्ष में क्षेपण करनेवाला अथवा (असून् राति) वृष्टि जल के द्वारा प्राणों को देनेवाला **नः पिता**-हमारा रक्षक सूर्य **अपः निषिञ्चन्**-जलों को इस पृथिवी पर सींचनेवाला हो और तब **अपाम्**=जलों के **गर्गराः**-गर्गर ध्वनियुक्त प्रवाह **श्वसन्तु**-उच्छ्वसित हों। हे **वरुण**-वृष्टि द्वारा हमारे क्लेशों का निवारण करनेवाले प्रभो! आप **अव नीचीः अपः** (अवनिम् अञ्चन्ति) भूमि पर प्राप्त होनेवाले इन जलों को **सृज**-उत्पन्न कीजिए। २. अब वृष्टि के खूब होने पर **पृश्निबाहवः** चित्रित व छोटी-छोटी (पृश्निरल्पतनौ) भुजाओंवाले **मण्डूकाः**-मेंढक **इरिण अनु** निस्तृण भू प्रदेशों को प्राप्त करके, वृष्टिजल से लब्ध प्राण हुए-हुए **वदन्तु**=शब्दों को करें।

भावार्थ—सूर्य अन्तरिक्ष में बादलों को उमड़ाकर वृष्टिजल प्रवाहों को उत्पन्न करे। वृष्टि से प्राणों को प्राप्त करके मेंढक शुष्कप्रदेशों में बैठे हुए शब्द करें, अर्थात् पर्याप्त वृष्टि होकर सब प्राणियों को जीवनशक्ति उपलब्ध हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मण्डूकाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

व्रतचारी ब्राह्मणों के समान

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः। वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १३ ॥

१. **मण्डूकाः**-मेंढक **पर्जन्यजिन्विताम्**=मेघ (बादल) से प्रेरित **वाचम्**-वाणी को **प्र अवादिषुः**-इसप्रकार खूब ही उच्चरित करते हैं, जैसेकि **संवत्सरम्**-वर्षभर **शशयानाः** एक स्थान पर निवास करनेवाले **व्रतचारिणः** मौनव्रत का पालन करेनवाले **ब्राह्मणाः**-ब्राह्मण व्रत समाप्ति पर वाणी को उच्चरित करते हैं।

भावार्थ—वर्षा होने पर मेंढकों की आवाज़ ऐसी प्रतीत होती है, जैसे वार्षिक मौनव्रत की समाप्ति पर ज्ञानी ब्राह्मणों की वाणी ही उच्चरित हुई हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मण्डूकाः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः

उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि। मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥ १४ ॥

१. हे **मण्डूकि** मेंढकी! तू हर्ष को **उप**-(उपेत्य) प्राप्त होकर **प्रवद**-प्रकृष्ट घोष करनेवाली हो। **तादुरि**-छोटी मेंढकी! तू **वर्षम् आवद** वृष्टि को पुकार—वृष्टि को आने के लिए पुकार जैसेकि कोई बालिका माता को पुकारती है। तू ऐसा शब्द कर कि वृष्टि हो जाए। २. वृष्टिजलों

से ह्रदों (सरोवरों) के पूर्ण हो जाने पर तू उस **ह्रदस्य मध्ये**-तालाब के बीच में **चतुरः पदः**=अपने चारों पाँवों को **विगृह्य**=तैरने के लिए अनुकूलता पूर्वक फैलाकर **प्लवस्व**=तैर। तैरती हुई तू उस तालाब में आनन्दपूर्वक विहार कर।

भावार्थ—वृष्टि होने पर मेंढक हर्षपूर्वक ध्वनि करते हुए वृष्टि को ही मानो पुकारते हैं। वे वृष्टि-जलपूर्ण तालाबों में आनन्दपूर्वक तैरते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मण्डूकाः पितरश्च**॥ छन्दः—**शंकुमत्यनुष्टुप्**॥

मेंढकों की ध्वनि व वृष्टि की सूचना

खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्यै तदुरि। वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत॥ १५॥

१. हे **खण्वखे**-बिल में रहनेवाली **खैमखे**=शान्त रहनेवाली **तदुरि**=छोटी मेंढकी! तू **मध्ये**=तालाब के बीच में होती हुई अपने घोष से **वर्षम् वनुध्वम्**-वृष्टि देनेवाली हो। २. हे **पितरः** राष्ट्र-रक्षण कार्य में तत्पर पुरुषो! आप **मरुताम्**-वृष्टि लानेवाले वायुओं के **मनः**=ज्ञान को **इच्छत**-चाहो। वायुओं के सम्यक् ज्ञान से वृष्टि के ठीक उपस्थापित करने से ये पितर राष्ट्र का सम्यक् रक्षण करनेवाले होंगे।

भावार्थ—राष्ट्ररक्षक पुरुष वृष्टि लानेवाले वायुओं का ज्ञान प्राप्त करके राष्ट्र में सम्यक् वृष्टि करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वातः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यज्ञाद् भवति पर्जन्यः

महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु॥ १६॥

१. हे प्रभो! आप सूर्यकिरणों द्वारा **महान्तं कोशम्**-जल के महान् कोशभूत मेघ को **उदच**-समुद्र से उदकपूर्ण करके ऊपर अन्तरिक्ष में प्राप्त कराइए। **अभिषिञ्च**=उस मेघ से वृष्टिजल के द्वारा सम्पूर्ण भूमि को सिक्त कीजिए। अन्तरिक्ष **सविद्युतम् भवतु**=विद्युत्सहित हो जाए। **वातः**=वृष्ट्यनुकूल वायु **वातु**=बहे। २. **यज्ञं तन्वताम्**-इस पृथिवी पर यज्ञ विस्तृत हो। घर घर में लोग यज्ञ करनेवाले हों। यज्ञों से वृष्टि होने पर अब **बहुधा**=बहुत प्रकार से **विसृष्टाः**-विविध रूपों में उत्पन्न हुई हुई **ओषधयः**=ओषधियाँ—व्रीह यव आदि ग्राम्य तथा तरु, गुल्म आदि अरण्य ओषधियाँ **आनन्दिनीः भवन्तु**=प्राणिमात्र को आनन्दित करनेवाली हों।

भावार्थ—प्रभु के अनुग्रह से सारा वातावरण वृष्टि के लिए अनुकूल हो। सब घरों में यज्ञों का विस्तार हो। उत्पन्न हुई-हुई विविध ओषधियाँ प्राणियों के लिए आनन्द देनेवाली हों।

विशेष—यज्ञों को उत्तमता से सम्पादित करनेवला 'ब्रह्मा' अगले सूक्त का ऋषि है। यह सत्य व अनृत के समीक्षक वरुण का स्मरण करता है और जीवन में सत्य (यज्ञ) को अपनाने का निश्चय करता है-

१६. [षोडशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वह महान् अधिष्ठाता

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति।
य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः॥ १॥

१. **बृहन्**-वह महान् वरुण **एषाम्**-इन सब लोकों व प्राणियों का **अधिष्ठाता** नियन्ता होता हुआ इन सब प्राणियों से किये जाते हुए कर्मों को **अन्तिकात् इव**-बहुत समीपता से ही **पश्यति**-देख रहा है। प्रभु से किसी का कार्य छिपा हुआ नहीं है। २. **यः** वे प्रभु **तायत्**=सातत्येन वर्त्तमान स्थित वस्तु को तथा **चरन्**=चरणशील नश्वर वस्तु को **मन्यते**-जानते हैं—स्थावर जंगमरूप यह सम्पूर्ण जगत् प्रभु के ज्ञान का विषय हो रहा है। जो **इदं सर्वम्**-इस सारी बात को कि 'प्रभु सब-कुछ देख रहे हैं, प्रभु के ज्ञान से कुछ भी परे नहीं' **विदुः** जानते हैं, वे **देवाः**-देव बनते हैं। प्रभु की सर्वज्ञता व सर्वद्रष्टृत्व को समझते हुए ये पापवृत्ति से दूर रहते हैं और परिणामतः देववृत्ति के बनते हैं—इनके जीवन में असुरभाव नहीं पनप पाते।

भावार्थ—वे महान् अधिष्ठाता प्रभु सबको समीपता से देख रहे हैं। स्थावर जंगम सम्पूर्ण जगत् प्रभु के ज्ञान का विषय बन रहा है। इस बात को समझनेवाले लोग देववृत्ति के बनते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सर्वज्ञ वरुण

यस्तिष्ठ॑ति॒ चर॑ति॒ यश्च॒ वञ्च॑ति॒ यो नि॒लाय॒ं चर॑ति॒ यः प्र॒तङ्क॑म्।
द्वौ सं॑नि॒षद्य॒ यन्म॒न्त्रये॑ते॒ राजा॒ तद्वे॑द॒ वरु॑णस्तृ॒तीयः॑॥ २॥

१. **यः तिष्ठति** जो खड़ा है अथवा **चरति**=चल रहा है **च**-और **यः वञ्चतिः**-जो कुटिलगति में व्यापृत है—किसी को ठग रहा है, **यः**=जो **निलायं चरति** छिपकर कोई कार्य कर रहा है अथवा **यः प्रतंकम् (चरति)**-औरों के जीवन को कष्टमय बनाता हुआ गति करता है (तकि कृच्छ्रजीवने) **तत्**-उस सबको **राजा वरुणः** वह शासक, पाप निवारक प्रभु **वेद** जानते हैं। प्रभु से कुछ भी छिपा नहीं है। **द्वौ** दो पुरुष (व्यक्ति) **संनिषद्य**-एकान्त में सम्यक् आसीन होकर **यत्**-जो **मन्त्रयेते**-मन्त्रणा करते हैं, वह राजा वरुण **तृतीयः**-उन दो के साथ तीसरे के रूप में होकर उस सब मन्त्रणा को जान रहा होता है। उनकी वह गुप्त मन्त्रणा प्रभु से गुप्त नहीं होती।

भावार्थ—प्रभु हमारे सब कर्मों को देख रहे हैं। हमारी कोई भी मन्त्रणा उससे छुपी नहीं होती।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सर्वव्यापक प्रभु

उ॒तेयं भूमि॒र्वरु॑णस्य॒ राज्ञ॑ उ॒तासौ द्यौर्बृ॑ह॒ती दू॒रेअ॑न्ता।
उ॒तो स॑मु॒द्रौ वरु॑णस्य कु॒क्षी उ॒तास्मिन्नल्प॑ उद॒के निली॑नः॥ ३॥

१. **इयम्**-सबका अधिष्ठान बनी हुई यह **भूमिः**-पृथिवी **उत**-भी (अपि—सा०) **राज्ञः**-उस शासक **वरुणस्य** पाप-निवारक प्रभु के वश में हैं। **उत**-(अपि च) और वह दूर स्थित **बृहती**-विशाल **दूरे अन्ता**-दूर से दूर व समीप से-समीप वर्त्तमान **द्यौः** द्युलोक (आकाश) भी उस वरुण के वश में है। २. **उत उ**=और निश्चय से **समुद्रौ** ये पूर्व और पश्चिम के समुद्र **वरुणस्य**-उस प्रभु के **कुक्षी** दक्षिण व उत्तर पार्श्व ही हैं। ये विराट् प्रभु की कुक्षियों के समान हैं, **उत**-और **अस्मिन्** इस **अल्पे उदके**-तटाक, ह्रद (तालाब) आदिगत अल्प जलों में भी वे प्रभु **निलीनः**=अन्तर्हित होकर रह रहे हैं।

भावार्थ—यह पृथिवी व द्युलोक दोनों ही प्रभु के वश में हैं। पूर्व व पश्चिम समुद्र प्रभु

की कुक्षियों के तुल्य हैं। छोटे छोटे तालाबों के जलों में भी प्रभु अन्तर्हितरूपेण रह रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु के सहस्राक्ष स्पश

उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्॥ ४॥

१. **उत**=और **यः**=जो **द्यां परस्तात् अति सर्पात्**=सम्पूर्ण द्युलोक को भी लाँघकर परे चला जाए **सः** वह भी **राज्ञः वरुणस्य** उस शासक पाप-निवारक प्रभु के पाश से **न मुच्यातै**=छूट नहीं पाता। २. **अस्य दिवः**=इस दिव्य (प्रकाशमय) देव (प्रभु) के **स्पशः**=गुप्तचर **इदं प्रचरन्ति**=इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र गति करते हैं। **सहस्राक्षाः**=हज़ारों की संख्यावाले दर्शनोपायों से युक्त ये गुप्तचर **भूमिम् अति पश्यन्ति**=भूलोक के सम्पूर्ण वृत्तान्त को अतिशयेन साक्षात् कर रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु की आँखों से कोई बचकर भाग नहीं सकता। प्रभु के सहस्राक्ष गुप्तचर सभी कुछ देख रहे हैं। प्रभु मानो राजा हैं और सूर्य-चन्द्र आदि प्रभु के चर हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

प्रभु के लिए परोक्ष नहीं

सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि॥ ५॥

१. **राजा वरुणः**=वह शासक व पाप-निवारक प्रभु **तत् सर्वं विचष्टे**=उस सबको देखता है **यत्**=जो **रोदसी अन्तरा**=द्यावापृथिवी के बीच में है और **यत् परस्तात्**=जो इन लोकों के परे है। २. **जनानाम्**=लोगों की **निमिषः**=पलकों की झपकों को भी **अस्य संख्याताः**=इसने गिना हुआ है। यह **तानि**=उन पलकों की झपकों को भी इसप्रकार **निमिनोति**=नाप लेता है **इव** जैसेकि **श्वघ्नी**=जुवारी **अक्षान्**=पाशों को नापता है।

भावार्थ—प्रभु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अन्दर-बाहर देख रहे हैं। मनुष्यों की पलकों की झपकों को भी वे ठीक प्रकार माप रहे हैं, अर्थात् छोटी-से-छोटी क्रिया को भी प्रभु जान रहे हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सप्त सप्त त्रेधा स्थित पाश

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु॥ ६॥

१. हे **वरुण**=पाप-निवारक प्रभो! **ये**=जो **ते**=आपके **पाशाः**=पापियों के बन्धनकारक जाल **सप्तसप्त**='शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, ज्ञानेन्द्रिय व प्राणों' में समवेत **त्रेधा**=उत्तम, मध्यम व अधम भेद से तीन प्रकारों में बँटे हुए, शरीर की सात धातुओं में व्याप्त होनेवाले 'वात, पित्त व कफ़' के त्रिविध विकारों से उत्पन्न हुए-हुए ये रोगरूप पाश **तिष्ठन्ति**=स्थित हैं। ये सब पाश **विषिताः**=विशेषरूप से बद्ध हैं। इनका सरलता से टूट जाना सम्भव नहीं। **रुशान्तः**=ये पाश अतिशयेन पीड़ित करनेवाले हैं। २. ये **सर्वे**=सब पाश **अनृतं वदन्तम्**=असत्य बोलनेवाले को **छिनन्तु**=छिन्न करनेवाले हों। **यः सत्यवाद्यति**=जो सत्य बोलनेवाला है **तम्**=उसे **अतिसृजन्तु**=ये अतिसृष्ट करें—छोड़ दें—सत्यवादी के लिए ये बन्धनकारक न हों।

भावार्थ—वरुण के पश अनृतवादी को छिन्न करते हैं, सत्यवादी के लिए ये बन्धनकारक

नहीं होते।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**जगती**॥

अनृतवादी का बन्धन

शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोशइवाबन्धः परिकृत्यमानः॥ ७॥

१. हे **वरुण**-पाप निवारक प्रभो! **एनम्**=उस अनृतवादी को **शतेन पाशैः**-सैकड़ों पाशों से **अभिधेहि**-बाँधिए। हे **नृचक्षः**-मनुष्यों के कर्मों के द्रष्टा प्रभो! **अनृतवाक्**=यह असत्य बोलनेवाला मनुष्य **ते**-आपसे **मा मोचि**-न छोड़ा जाए। २. यह **जाल्मः**=असमीक्ष्यकारी दुष्टपुरुष **उदरं स्रंसयित्वा**-जलोदररोग से अपने उदर को स्रस्त करके **अबन्धः कोशः इव**-चारों ओर से बन्ध से रहित कोश की भाँति (फूल की कली की भाँति) **परिकृत्यमानः**-चारों ओर से छिन्न होता हुआ **आस्ताम्**=बन्धन में पड़ा रहे।

भावार्थ—अनृतवाक् पुरुष बन्धन में डाला जाए। यह जलोदर आदि रोगों से पीड़ित होकर बन्धन से मुक्त न हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**त्रिपान्महाबृहती**॥

विविध वरुण पाश

यः समाम्यो३ वरुणो यो व्याम्यो३ यः सन्देश्यो३ वरुणो यो विदेश्य: ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः॥ ८॥

१. **यः**-जो **समाम्यः**-(समानम् आमयति व्याधितो भवति पुरुषोऽनेन) समानरूप से रोगी कर देनेवाला—सब अंगों में व्याप्त होनेवाला, **वरुणः**=(लुप्ततद्धितोऽयं निर्देशः—वारुणः) वारुण पाश है, इसीप्रकार **यः**=जो **व्याम्यः**-पुरुष को विविधरूपों में पीड़ित करनेवाला—भिन्न-भिन्न अङ्गों में होनेवाला वारुण पाश है, **यः**-जो **सन्देश्यः**-समान देश में होनेवाला वारुण पाश है और **यः** जो **विदेश्यः** विविध देशों में होनेवाला वारुण पाश है—संदेश्य का भाव समानरूप से सब देश में फैल जानेवाला तथा विदेश्य का भाव देश-विदेश में फैलनेवाला रोग भी है। २. इसीप्रकार **यः** जो **दैवः**-सूर्य चन्द्र आदि देवों (प्राकृतिक पदार्थों) से होनेवाला **वरुणः** वारुण पाश है **च** और **यः** जो **मानुषः** मनुष्य द्वारा हो जानेवाला वारुण पाश है—आधिदैविक कष्ट 'दैवपाश' हैं तो आधिभौतिक कष्ट ही 'मानुष' पाश है।

भावार्थ—वरुण के पाश 'समाम्य-व्याम्य, सन्देश्य विदेश्य तथा दैव मानुष' इन तीन द्वन्द्वों में विभक्त किये जा सकते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम्**॥ छन्दः—**विराण्नामत्रिपाद्गायत्री**॥

शत्रुता व वारुण पाशबन्धन

तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र।
तानु ते सर्वाननुसन्दिशामि॥ ९॥

१. गतमन्त्र में वर्णित सब पाश शत्रुओं को ही बाँधनेवाले हों। न हम शत्रुता करें और न इनसे बद्ध हों। **असौ**-वह **अमुष्यायण**-अमुक गोत्र में उत्पन्न! **अमुष्याः पुत्र**-अमुक माता की सन्तान! **त्वा**-तुझे **तैः**-गतमन्त्र में वर्णित **सर्वैः**-सब वारुण **पाशैः** पाशों से **अभिष्यामि**-बाँधता हूँ। २. **उ**-निश्चय से **तान् सर्वान्**=उन सब पाशों को **ते अनु**-तेरा लक्ष्य करके **सन्दिशामि**-सन्दिष्ट करता हूँ। शत्रुता करनेवाला तू ही इन वारुण पाशों से बद्ध हो, अर्थात् तुझ शत्रुता करनेवाले

को प्रभु ही उचित दण्ड देंगे।

भावार्थ—हम किसी से शत्रुता न करें। 'शत्रुता करनेवाला प्रभु के पाशों के बद्ध होगा' इस तथ्य में विश्वास रक्खें।

टिप्पणी—प्रस्तुत मन्त्र में 'अमुष्यायण' सम्बोधन यह संकेत करता है कि पिता से आनुवंशिक रोग प्राप्त हो सकता है और 'अमुष्याः पुत्र' से माता से प्राप्त होनेवाले रोग का निर्देश हो रहा है।

विशेष—प्रभु को 'सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा' जाननेवाला व्यक्ति पवित्र जीवनवाला बनता है। यह वारुण-पाशों का भय मानता हुआ पाप से बचता है। पवित्र जीवनवाला यह व्यक्ति 'शुक्रः' (शुच्) बनता है। यही अगले तीन सूक्तों का ऋषि है। 'अपामार्ग' ओषधि के प्रयोग से यह सब दोषों को अपमार्जन करता हुआ प्रार्थना करता है-

१७. [सप्तदशं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

भेषजों की ईशान

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे। चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥ १ ॥

१. **भेषजानाम्**=ओषधियों की **ईशानाम्**=ईशान-(ईश्वर)-भूत हे अपमार्ग! **त्वाम्**=तुझे **उज्जेषे**=रोगों को पराजित करने के लिए **आरभामहे**=संस्पृष्ट करते हैं। तेरे उचित प्रयोग से हम सब रोगों को दूर करते हैं। २. हे **ओषधे**=दोषों को दग्ध करनेवाली! **त्वा**=तुझे **सर्वस्मै**=सब दोषों की निवृत्ति के लिए प्रभु ने **सहस्रवीर्यम् चक्रे** अपरिमित सामर्थ्ययुक्त बनाया है—तुझमें सब दोषों को दग्ध करने की शक्ति रक्खी है।

भावार्थ—अपामार्ग ओषधि अपरिमित सामर्थ्ययुक्त है। यह सब रोगों को दूर करने में समर्थ है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'शपथयावनी' ओषधि

सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम्।
सर्वाः समह्व्योषधीरितो नः पारयादिति ॥ २ ॥

१. **सत्यजितम्**=सचमुच रोगों को जीतनेवाली **शपथयावनीम्**=पीड़ाजनित आक्रोशों को दूर करनेवाली, **सहमानाम्**=रोगों को अभिभूत करनेवाली **पुनः सराम्**=अनेक व्याधियों की निवृत्ति के लिए फिर-फिर मलों का निःसारण करनेवाली इस अपामार्ग ओषधि को **सम् अह्वि**=मैं पुकारता हूँ। २. इसीप्रकार मैं अन्य भी **सर्वाः ओषधीः**=सब ओषधियों को पुकारता हूँ **इति**=जिससे यह ओषधि **इतः**=इस रोग से **नः**=हमें **पारयात्**=पार करे।

भावार्थ—मैं रोग-निवारक ओषधियों का आह्वान करता हूँ और इनके ठीक प्रयोग से नीरोग बनता हूँ।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

रोगवृद्धि की समाप्ति

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ॥ ३ ॥

१. **या** जो रोग **शपनेन** आक्रोशों के द्वारा **शशाप** आक्रोशयुक्त करता है, अर्थात् जिस बीमारी में रोगी ऊटपटांग बोलने लगता है, **या**-जो बीमारी **मूरम्** (मुर्छा मोहे) मूर्च्छा उत्पन्न करनेवाले **अघम्**-कष्ट को **आदधे**-धारण करती है अथवा **या**-जो रोग **रसस्य हरणाय**-शरीरगत रुधिर आदि रसों के हरण के लिए **जातम् आरेभे**-उत्पन्न सन्तान का आलिङ्गन करता है—बच्चे को चिपट जाता है **सा** वह अपामार्ग नामक ओषधि **तोकम् अत्तु** इस रोग की वृद्धि को खा जाए—ओषध-प्रयोग से यह रोग जाता रहे।

भावार्थ—कई रोगों में रोगी ऊटपटाँग बोलने लगता है, उसे चित्तभ्रम सा (delirium) हो जाता है, कइयों में मूर्च्छा की स्थिति हो जाती है, कइयों में खून सूखने लगता है। अपामार्ग ओषधि इन सब रोगों को रोकती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कृत्याकृत् हनन

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि॥ ४॥

१. यह शरीर 'चमस् या पात्र' कहा गया है, कई रोग बाल्यकाल में, जबकि यह शरीर परिपक्क नहीं हुआ होता, होने लगते हैं, उन्हीं के लिए कहते हैं कि **याम्** जिस **कृत्याम्** छेदन (हिंसन) क्रिया को **ते** तेरे **आमे पात्रे** कच्चे (अपरिपक्क) शरीर-पात्र में **चक्रुः**-ये रोगकृमि उत्पन्न करते हैं और **याम्** जिस कृत्या को **आमे मांसे** कच्चे मांस में **चक्रुः** उत्पन्न करते हैं, **तया** उस अपामार्ग ओषधि से इन सब **कृत्याकृतः** हिंसन को उत्पन्न करनेवाले रोगकृमियों को **जहि** नष्ट कर दे।

भावार्थ—रोगकृमि बालक के अपरिपक्क शरीर में रोगों को उत्पन्न कर देते हैं। ये रुधिर में या मांस में प्रविष्ट होकर विकार का कारण बनते हैं। अपमार्ग इन रोगकृमियों को नष्ट करता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'शुभ-लक्ष्मी-सम्पन्न' जीवन

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्व मराय्य ः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि॥ ५॥

१. **दौष्वप्न्यम्**-बुरे स्वप्नों का आते रहना, **दौर्जीवित्यम्** कष्टमय जीवन का होना **अभ्वं रक्षः** (अभ्वं महत्) महान् भय के कारणभूत रोगकृमि, **अराय्यः** असमृद्धि की कारणभूत अलक्ष्मियाँ, **दुर्णाम्नीः** दुष्ट नामवाले बवासीर आदि रोग तथा **सर्वा दुर्वाचः**-सब अशुभ वाणियाँ—**ताः** उन सबको **अस्मत्** अपने से **नाशयामसि**-हम नष्ट करते हैं।

भावार्थ—अपामार्ग के प्रयोग से हम पूर्ण स्वस्थ बनते हैं। बुरे स्वप्न नहीं आते, जीवन रोगशून्य होकर कष्टमय नहीं रहता, भयजनक रोगकृमियों का विनाश होता है, शरीर अलक्ष्मीक नहीं रहता, बवासीर आदि अशुभ रोग दूर हो जाते हैं, रोग से आक्रान्त होकर हम ऊटपाँग नहीं बोलते।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अनपत्यता निवारण

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे॥ ६॥

१. **क्षुधामारम्**=भूख की पीड़ा से मनुष्य को मार डालनेवाले (भस्मक रोग) अथवा जिसमें भूख मारी जाती है, उस रोग को **तृष्णामारम्**=जो प्यास के अतिशय से मनुष्य को मार डालता है, अथवा जिसमें प्यास ही नष्ट हो जाती है, **अगोताम्**=इन्द्रियों के शैथिल्य को उत्पन्न करनेवाले रोग को तथा **अनपत्यताम्**=सन्तानहीनता (नपुंसकता) के रोग को हे **अपामार्ग**=अपामार्ग! **त्वया**=तेरे द्वारा **वयम्** हम **तत् सर्वम्** उस सबको **अपमृज्महे** विनष्ट कर डालते हैं।

भावार्थ—हम 'भूख-प्यास' के अभावजनक रोग को, इन्द्रिय-शैथिल्य व नपुंसकता को अपामार्ग के प्रयोग से विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'अक्षपराजय' दूरीकरण

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे॥ ७॥

१. **तृष्णामारम्**=प्यास को मार देनेवाले अथवा प्यास से मार देनेवाले रोग को, **क्षुधामारम्**=भूख को मार देनेवाले अथवा भूख से मार देनेवाले रोग को **अथ उ**=और निश्चय से **अक्षपराजयम्**=इन्द्रियों के पराजय-(शैथिल्य)-रूप रोग को हे अपामार्ग! **त्वया**=तेरे प्रयोग से **वयम्**=हम **तत् सर्वम्**=उस सबको **अपमृज्महे**=दूर करते हैं।

भावार्थ—अपामार्ग के प्रयोग से भूख व प्यास ठीक लगने लगती है और इन्द्रियों का शैथिल्य नष्ट होता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अगदता

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर॥ ८॥

१. हे **अपामार्ग**=अपामार्ग! तू **सर्वासाम्**=सब **ओषधीनाम्**=ओषधियों का **एकः इत्**=अकेला ही **वशी**=वश में करनेवाला है। तू ओषधियों का सम्राट् है। २. हे रुग्ण पुरुष! **तेन**=उस अपामार्ग के प्रयोग से **ते** तेरे **आस्थितम्**=शरीर में समन्तात् स्थित रोग को **मृज्मः**=साफ़ कर डालते हैं। **अथ**=अब **त्वम्**=तू **अगदः**=नीरोग होकर **चर**=विचारनेवाला हो।

भावार्थ—अपामार्ग सब ओषधियों के गुणों से सम्पन्न है। इसके प्रयोग से शरीर में कहीं भी स्थित रोग को हम दूर करते हैं। यह रुग्ण पुरुष नीरोग होकर विचरण करे।

अपामार्ग का ही विषय अगले सूक्त में भी है।

१८. [अष्टादशं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सत्यपालन व अहिंसा

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः॥ १॥

१. **सूर्येण**=सूर्य के साथ **ज्योतिः**=उसका प्रभामण्डल **समम्**=समान ही होता है। यह प्रभामण्डल सूर्य से कभी पृथक् नहीं होता और **रात्री**=रात **अह्ना**=दिन के साथ **समावती**=समान आयामवाली होती है। वस्तुतः रात्रि दिन के साथ जुड़ी हुई है। जहाँ दिन है, रात्रि उसके साथ

है ही, जैसे ज्योति सूर्य से कभी अलग नहीं होती, जैसे रात्रि दिन के साथ जुड़ी हुई है, इसीप्रकार मैं अपने साथ **सत्यं कृणोमि**-सत्य को जोड़ता हूँ। यह सत्य **ऊतये** मेरे रक्षण के लिए होता है। मेरे जीवन के साथ सत्य का इसप्रकार सम्बन्ध होने पर **कृत्वरीः**-कर्तनशील कृत्याएँ—सब हिंसाएँ **अरसाःसन्तु**-रसशून्य, शुष्क व व्यर्थ हो जाएँ। सत्यशील होने पर मुझे किसी प्रकार से भी हिंसित नहीं होना पड़ता।

भावार्थ—मैं जीवन में सत्य का इसप्रकार सम्बन्ध स्थापित करता हूँ, जैसा ज्योति का सूर्य के साथ सम्बन्ध है और रात्रि का दिन के। यह सत्य का सम्बन्ध मुझे हिंसित नहीं होने देता।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

हिंसा द्वारा हिंसक का हिंसन

यो दे॑वाः कृ॒त्यां कृ॒त्वा हरा॒दवि॑दुषो गृ॒हम्।
व॒त्सो धा॒रुरि॑व मा॒तरं॒ तं प्र॒त्यगुप॑ पद्यताम्॥ २॥

१. हे **देवाः** देवो! **यः** जो **कृत्यां कृत्वा** हिंसा का प्रयोग करके **अ-विदुषः** छल कपट की सम्भावना को न समझते हुए (विद् जानना) अजान पुरुष के **गृहं हरात्** घर का अपहरण करता है—उसे हानि पहुँचता है। यह हिंसा-कर्म **तम् प्रत्यक्**-उसकी ओर लौटकर उसे उसी प्रकार **उपपद्यताम्** प्राप्त हो **इव** जैसेकि **धारुः** (धेट पाने) स्तनपान करनेवाला **वत्सः**-बछड़ा **मातरम्**-माता के प्रति ही जाता है। २. जो छल कपटपूर्वक दूसरों का हिंसन करने का प्रयत्न करता है, वह अन्ततः उस हिंसा का स्वयं ही शिकार हो जाता है।

भावार्थ—प्रभु की सब प्राकृतिक शक्तियाँ ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती हैं कि हिंसा करनेवाला उस हिंसा-प्रयोग का स्वंय ही शिकार हो जाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

गूढ़ शत्रु

अ॒मा कृ॒त्वा पा॒प्मानं॒ यस्तेना॒न्यं जिघां॑सति॥
अश्मा॑न॒स्तस्यां॑ द॒ग्धायां॑ बहु॒लाः फट्क॑रिक्रति॥ ३॥

१. **यः**-जो छिपा शत्रु (गूढ़ शत्रु) **अमा**-अनुकूल की भाँति साथ रहता हुआ **पाप्मानं कृत्वा** हिंसा का षड्यन्त्ररूप पाप करके **तेन** उस पाप से **अन्यं जिघांसति** दूसरे को मारने की इच्छा करता है तो **तस्यां दग्धायाम्**-उस हिंसा प्रयोग के प्रज्वलित होने पर **बहुलाः अश्मानः**-बहुत से (कितने ही) पत्थर **फट् करिक्रति** उस शत्रु का ही पुनः पुनः हिंसन करते हैं। जिस बारूद का प्रयोग यह मूढ़ दूसरे के हिंसन के लिए करता है, उससे यह स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—मित्र के रूप में वर्तनेवाला गूढ़ शत्रु जिस हिंसा का प्रयोग दूसरे के लिए करता है, उस हिंसा के प्रयोग से वह स्वंय हिंसित हो जाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रियां प्रियावते (हर)

सह॑स्रधाम॒न्विशि॑खा॒न्विग्री॑वां छाय॒या त्वम्।
प्रति॑ स्म च॒क्रुषे॑ कृ॒त्यां प्रि॒यां प्रि॒याव॑ते हर॥ ४॥

१. हे **सहस्रधामन्**-अनन्त तेजोंवाले प्रभो! **त्वम्**-आप हमारे इन कृत्या (हिंसा) करनेवाले शत्रुओं को **विशिखान्** विच्छिन्न केशोंवाला व **विग्रीवान्**-छिन्न ग्रीवा व शिरोंवाला करके **शामय**

भूमि पर सुला दीजिए। २. इस **कृत्याम्**=हिंसा की क्रिया को **चक्रुषे**=इस कृत्या को करनेवाले के **प्रति हरस्म**=हर प्रकार वापस प्राप्त कराइए जैसेकि **प्रियाम्**=प्रिय पत्नी को **प्रियावते**=उस प्रियावाले के लिए—पति के लिए प्राप्त कराया जाता है। खोई हुई पत्नी को जैसे पति के पास पहुँचाते हैं, इसीप्रकार इस हिंसा की क्रिया को प्रभु इसे करनेवाले को ही प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—औरों का हिंसन करनेवाले लोग प्रभु की व्यवस्था से स्वयं हिंसित हों।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कृत्यामात्र का दूषण

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्। यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ५ ॥

१. **अहम्**=मैं **अनया**=इस **ओषध्या**=अपामार्ग नामक ओषधि के द्वारा **सर्वाः कृत्याः**=सब प्रकार के रोगकृमियों से जनित शरीर के हिंसनों को **अदूदुषम्**=दूर करता हूँ। इन सब हिंसन कार्यों को दूषित करता हूँ। २. **याम्**=जिस हिंसन-क्रिया को **क्षेत्रे**=शरीररूप क्षेत्र में **चक्रुः**=करते हैं, **याम्**=जिसे **गोषु**=गौओं में **याम्**=जिसे **वाते**=वायु-सम वेगवाले अश्वों में करते हैं **वा**=और जिसे **पुरुषेषु**=हमारे किन्हीं भी व्यक्तियों में जिस हिंसन-कार्य को करते हैं, उस सब हिंसन-कार्य को दूषित करके मैं दूर करता हूँ। ३. यहाँ 'गोषु' का भाव ज्ञानेन्द्रियों में करे तो 'वाते' का भाव (वा गतौ) कर्मेन्द्रियों में होगा। इनमें उत्पन्न किये गये हिंसन-कार्यों को भी मैं दूर करता हूँ।

भावार्थ—अपामार्ग ओषधि के प्रयोग से शरीर में—ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में या अन्य व्यक्तियों में रोगकृमियों द्वारा जनित हिंसनों को हम दूर करते हैं।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्** ॥

अपने पाँव पर ही कुठाराघात

यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ॥ ६ ॥

१. **यः**=जो शत्रु **चकार**=हिंसन-कार्य करता है, और इस हिंसन-कार्य द्वारा **पादम्**=एक पाँव को अथवा **अंगुरिम्**=एक अंगुलि को **शश्रे**=हिंसित करता है, वह शत्रु **कर्तुं न शशाक**=हिंसन कार्य को करने में समर्थ नहीं होता। २. वस्तुतः **सः**=वह शत्रु इन हिंसन-प्रयोगों से **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **भद्रं चकार**=कल्याण ही करता है, **आत्मने तु**=अपने लिए तो **तपनम्**=दहन को करनेवाला होता है। ये हिंसन के प्रयोग हमें धैर्य धारण का अवसर देते हैं और इनका प्रयोक्ता अपने ही हृदय में विषैली वासनाओं को जन्म देनेवाला होता है।

भावार्थ—जो दूसरों का हिंसन करने का प्रत्यन करता है, वह वस्तुतः अपना ही अमङ्गल करता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

क्षेत्रिय रोग-निराकरण

अपामार्गोऽप माष्टुं क्षेत्रियं शपथश्च यः।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ॥ ७ ॥

१. **अपामार्गः** (अपमृज्यते रोगादिनिराकरणेन पुरुषः शोध्यते अनने) यह अपामार्ग ओषधि **क्षेत्रियम्**=माता-पिता के शरीर से आगत संक्रामक क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि रोगों को **अपमार्ष्टु**=दूर करे **च**=और **यः**=जो **शपथः**=रोगपीड़ा-जनित आक्रोश है, उसे भी दूर करे। २. यह अपामार्ग **अह**=निश्चय से **यातुधानीः**=पीड़ा को आहित करनेवाली व्याधियों को **अप**=दूर करे तथा यह

सर्वाः-सब **अराय्यः** अलक्ष्मियों को—निस्तेजताओं को **अप** दूर करे।

भावार्थ—अपामार्ग ओषधि द्वारा सब आक्रोशजनक व कष्टप्रद क्षेत्रिय रोग भी दूर हो जाते हैं। निस्तेजस्कता दूर होकर शरीर लक्ष्मी (कान्ति)-सम्पन्न हो जाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अलक्ष्मी-वारण

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः। अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ८ ॥

१. हे **अपामार्ग**-अपामार्ग! **वयम्**-हम **त्वया**-तेरे यथायोग के द्वारा **यातुधानान्**-पीड़ाओं को आहित करनेवाले कष्टों (रोगों) को **अपमृज्य**-दूर करके तथा **सर्वाः**-सब **अराय्यः**-अलक्ष्मियों को **अप**-शोधकर **तत् सर्वम्**-उस सब अवाञ्छनीय रोगमात्र को **अपमृज्महे** दूर कर देते हैं।

भावार्थ—अपामार्ग का यथायोग शरीर को रोगरहित व तेजस्वी बनाता है। इसके द्वारा हम रोगों को दूर करते हैं।

अगले सूक्त में भी अपामार्ग का ही विषय है—

१९. [एकोनविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अबन्धुकृत् जामिकृत्

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत्।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम् ॥

१. हे अपामार्ग! तू **उत उ**-निश्चय से ही **अबन्धु-कृत्**-(शत्रूणां कर्तकः) शत्रुभूत रोगों का छेदन करनेवाला **असि**-है और **नु**-अब **उत उ**-निश्चय ही **जामिकृत् असि**-(जामयः सहजाः) जन्म के साथ होनेवाले रोगों का भी छेदन करनेवाला है। सहज व असहज (कृत्रिम्) सभी रोगों का यह अपामार्ग विनाशक है। २. **उत उ**-निश्चय से **कृत्याकृतः** हिंसन को पैदा करनेवाले कृमियों की **प्रजाम्**-सन्तानों को इसप्रकार से **छिन्धि**-नष्ट कर डाल **इव** जैसे **वार्षिकं नडम्** वर्षाऋतु में उत्पन्न हो जानेवाले तृणविशेषों को छिन्न किया जाता है।

भावार्थ—अपामार्ग ओषधि सहज व कृत्रिम सभी दोषों को दूर करती है और रोगकृमियों के वंश को ही समाप्त कर देती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

नार्षद-कण्व-उपदिष्ट

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥ २ ॥

१. हे अपामार्ग! **नार्षदेन** मनुष्यों में आसीन होनेवाले—सब मनुष्यों के भले के लिए उनमें स्थित होनेवाले **कण्वेन**-मेधावी **ब्राह्मणेन** ज्ञानी पुरुष से **पर्युक्ता असि** तू उपदिष्ट हुई है। तेरा ज्ञान नर-हितकारी ज्ञानी पुरुष द्वारा दिया गया है। २. हे **ओषधे**-दोषों का दहन करनेवाली अपामार्ग ओषधे! तू **त्विषीमती**-दीप्तिवाली **सेना इव एषि**-सेना के समान आती है। जैसे सेना शत्रुओं का सफ़ाया कर देती है, उसी प्रकार तू रोगरूपी शत्रुओं का सफाया करती है। **यत्र**-जहाँ **प्राप्नोषि** तू प्राप्त होती है **तत्र**-वहाँ **भयं न अस्ति** रोगों का भय नहीं रहता।

भावार्थ—मनुष्यों का भला चाहनेवाले मेधावी, ज्ञानी पुरुष से उपदिष्ट होकर प्रयुक्त हुई

यह अपामार्ग ओषधि रोग-भय का निवारण कर देती है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पाप-त्राण, रक्षो-हनन

अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥ ३ ॥

१. हे अपामार्ग! तू **ज्योतिषा**-अपने तेज से **अभिदीपयन् इव**-रोगकृमिजनित हिंसा दोषों को दग्ध-सा करता हुआ **ओषधीनाम् अग्रम् एषि**=सब ओषधियों में प्रथम है। २. तू **पाकस्य**=पक्तव्यप्रज्ञ दुर्बल बालक का **त्राता असि**=रक्षक है, **अथ उ**=और निश्चय ही **रक्षसः**=अपने रमण के लिए हमारा क्षय करनेवाले रोगकृमियों का **हन्ता असि**=नष्ट करनेवाला है।

भावार्थ—रोगकृमियों को नष्ट करता हुआ अपामार्ग ओषधियों का सम्राट् है। यह दुर्बल का रक्षण करता है और रोगकृमियों का विनाश करता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अपामार्ग की यथार्थता

यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत। ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ॥ ४ ॥

१. हे ओषधे! **यत्**-चूँकि **अदः**-उस **दूरस्थ अग्रे**-प्राचीनकाल में **त्वया**-तेरे द्वारा **देवाः**=देववृत्ति के पुरुषों ने **असुरान्**-(आसून् प्राणन् रिणोति, to kill) प्राणशक्ति को नष्ट करनेवाले रोगकृमियों को **निरकुर्वत**=दूर किया, **ततः**=इस दूर (अप) सफ़ाया करने के कारण (मृज्) **त्वम्**=तू **अधि**-सब ओषधियों के ऊपर **अजायथाः**-हो गया और **अपामार्गः**-तेरा नाम अपामार्ग हुआ (अपमृज्यन्ते असुराः यया)।

भावार्थ—देववृत्ति के ज्ञानी पुरुष अपामार्ग ओषधि से रोगकृमियों का अपमार्जन करते हैं, अतः यह ओषधि सर्वश्रेष्ठ व अपामार्ग नामवाली हो गई है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अपामार्ग=विभिन्दती

विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन्नाम ते पिता।
प्रत्यग्वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ॥ ५ ॥

१. हे अपामार्ग ओषधे! **शतशाखा**=अपरिमित शाखाओंवाली होती हुई तू **विभिन्दती**=विभेदनशीला है—रोगों का भेदन करनेवाली है, **ते**-तेरा **पिता**-उत्पादक भी तेरे द्वारा रोगों का भेदन करने के कारण **विभिन्दन्**=विभेदक **नाम**-नामवाला है। २. अतः **त्वम्**-तू **तम्**-उस हमारे शत्रुभूत रोग को **प्रत्यग्**=उसकी ओर जाकर (प्रति अञ्च) उसपर आक्रमण करके **भिन्धि** विदीर्ण कर, **यः**=जो रोग **अस्मान्**-हमें **अभिदासति**=उपक्षीण करता है। हमारा क्षय करनेवाले इन रोगों को तुझे ही नष्ट करना है।

भावार्थ—रोगों का भेदन करनेवाला अपामार्ग 'विभिन्दती' है। यह हमारा भेदन करनेवाले रोग का भेदन करता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रत्यक् कर्तारम्

असद्भूम्याः समभवत्तद्यामेति महद् व्यचः। तद्वै ततो विधूपायत्प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु ॥ ६ ॥

१. हे ओषधे! **तत्** वह **महत् व्यचः**-तेरा सर्वत्र व्याप्त महान् तेज **याम्**-जिस (भूमिम्) शरीररूप पृथिवी को **एति**-प्राप्त होता है तो **भूम्याः**=उस शरीररूप पृथिवी का रोगजनित हिंसन **असत् समभवत्**-बाधक करनेवाला नहीं होता—वह रोगकृमियों का हिंसनरूप कर्म उस भूमि (शरीर) को पीड़ित नहीं कर पाता। २. **ततः**-वहाँ से—उस हमारे शरीर से **तत्**-वह हिंसनरूप कर्म **वै**-निश्चय से **विधूपायत्**=विशेषरूप से सन्तापकारी होता हुआ **कर्तारम्**-उन पीड़ाकर कृमियों को ही **प्रत्यक् ऋच्छतु**-लौटकर प्राप्त हो। अपामार्ग के प्रयोग से रोगकृमि हमारे शरीर का हिंसन न करके अपना ही हिंसन करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—अपामार्ग का व्याप्त तेज रोगकृमियों का हिंसन करता है और हमारे शरीर को हिंसन से बचाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'शपथ व वध'-निराकरण

प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम्।
सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम्॥ ७॥

१. हे अपामार्ग! **त्वम्**-तू **हि**-निश्चय से **प्रत्यङ्**=हमारी ओर गतिवाला होता हुआ—हमारे अन्दर प्राप्त होता हुआ **प्रतीचीनफलः** हमारे विरोधियों का—रोगजनक कृमियों का विशरण (ञिफला विशरणे) करनेवाला **संबभूविथ**-होता है। तू हमारे शरीरों में प्रविष्ट होकर सब रोगकृमियों को समाप्त कर देता है। २. तू **मत्**-मुझसे **सर्वान्**-सब **शपथान्**-रोगपीड़ा जनक आक्रोशों का तथा **वधम्** रोगजनित हिंसन को **वरीयः** -(उरुतरम्) खूब ही—बहुत ही **अधियावय**—आभिक्येन पृथक् कर। तेरे प्रयोग से न तो हमें रोगजनित पीड़ाएँ प्राप्त हों और न ही यह रोग हमें नष्ट करनेवाला हो।

भावार्थ—शरीर में पहुँचकर अपामर्ग रोगकृमियों का विनाश कर देता है और हमें रोगजनित पीड़ाओं व बाधाओं से बचाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**अपामार्गो वनस्पतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शतेन-सहस्रेण

शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत्॥ ८॥

१. हे अपामार्ग! तू **शतेन**-सौ वर्षों से पूर्ण जीवन के हेतु से **मा परिपाहि** मुझे इन रोगकृमियों की कृत्याओं से बचा। **स-हस्रेण**-आनन्दमय जीवन के हेतू से तू **मा अभिरक्ष**-मेरा रक्षण कर। २. हे **वीरुधां पते**-लताओं के स्वामिरूप (मुखिया) अपामार्ग! **उग्रः**-तेजस्वी **इन्द्रः**-प्रभु ने—सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले परमात्मा ने **ते**-तुझमें **ओज्मानम्** तेजस्विता को **आदधात्**-स्थापित किया है। तेरा तेज रोगकृमियों व रोगों का संहार करनेवाला होता है।

भावार्थ—अपामार्ग में प्रभु ने उस तेज को स्थापित किया है जो रोग विनाश द्वारा हमें शतवर्ष का आनन्दमय जीवन प्राप्त कराता है।

विशेष—अपामार्ग से व्यक्ति स्वस्थ शरीर व स्वस्थ मनवाला बनकर 'वेदमाता' के दर्शन करता है। यह वेदमाता इसकी अन्तर्दृष्टि को पवित्र करती है—उसे 'सब लोकों, सब पदार्थों व सब मनुष्यों' को समझने की योग्यता प्राप्त कराती है। इस वेदमाता को अपनानेवाला यह व्यक्ति 'मातृनामा' कहलाता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

२०. [विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**ओषधिः** ॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्** ॥

सर्वदर्शन

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति।
दिवमन्तरिक्षमाद्भूमिं सर्वं तद्देवि पश्यति॥ १॥

१. 'स्तुता मया वरदा वेदमाता' इन शब्दों में वेद को माता कहा गया है। यह वेदमाता हम पुत्रों के जीवनों को प्रकाशमय करती है, इसी से इसे 'देवी' कहा गया है। हे **देवी**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाली वेदमातः! आपकी कृपा से आपका पुत्र **आ पश्यति**=चारों ओर सब पदार्थों को देखनेवाला बनता है, **प्रतिपश्यति**=यह प्रत्येक पदार्थ को देख पाता है, **परापश्यति**=इस जगत् से परे अलौकिक वस्तुओं (आत्मतत्त्व) को भी देखनेवाला यह बनता है, इसप्रकार यह **पश्यति**=ठीक से देखता है। २. हे देवि! **दिवम्**=द्युलोक को, **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्षलोक को **आत् भूमिम्**=और इस भूमि को **तत् सर्वम्**=उस सम्पूर्ण जगत् को **पश्यति**=यह आपका पुत्र आपकी कृपा से देखता है। इस वेदमाता से सब लोक-लोकान्तरों का ज्ञान प्राप्त होता है।

भावार्थ—यह वेदमाता देवी है। यह हमारे लिए सब लोक-लोकान्तरों व पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**ओषधिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

तिस्रो दिवः, तिस्रः पृथिवीः

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक्।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे॥ २॥

१. यह वेदमाता दोषों का दहन करने के कारण 'ओषधि' है (उष् दाहे)। हे **ओषधे** दोषों का दहन करनेवाली **देवि**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनानेवाली वेदमातः! **त्वया**=तेरे द्वारा **अहम्**=मैं **सर्वा**=सब **भूतानि**=भूतों को—ब्रह्माण्ड के निर्माण में कारणभूत 'पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश' को **पश्यानि**=देखता हूँ—इनका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करता हूँ। २. **तिस्रः दिवः**=द्युलोक के 'उत्तम, मध्यम, अधम' तीनों क्षेत्रों को तथा तिस्रः **पृथिवीः**=पृथिवी के भी 'उत्तम, मध्यम, अधम' तीनों भागों को **च**=और **इमाः**=इन **षट्**='पूर्व-पश्चिम उत्तर-दक्षिण-ध्रुवा ऊर्ध्वा' नामक छह **प्रदिशः**=प्रकृष्ट दिशाओं को **पृथक्** अलग-अलग करके विविक्तरूप में मैं इस वेदमाता के द्वारा देखनेवाला बनाता हूँ।

भावार्थ—वेदमाता के द्वारा द्युलोक व पृथिवीलोक के तीनों विभागों का तथा व्यापक छह दिशाओं का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त होता है।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**ओषधिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दिव्य सुपर्ण की कनीनिका

दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव॥ ३॥

१. यह वेदमाता **तस्य**=उस **दिव्यस्य**=देववृत्ति को अपनानेवाले **सुपर्णस्य**=उत्तम पालन व पूर्णात्मक कर्मों में लगे हुए मनुष्य की **ह**=निश्चय से **कनीनिका**=आँख की पुतली **असि**=है, अर्थात् यह सुपर्ण इससे ही सब पदार्थों को देखता है। २. **सा**=वह वेदमाता **भूमिम्**

आरुरोहिथ-हमारी इस शरीर-भूमि का इसप्रकार आरोहण करती है, **इव**-जैसेकि **श्रान्ता वधूः** थकी हुई वधू **वह्यम्**-एक सवारी पर आरूढ़ होती है। जब हमारे जीवन में वेदमाता का निवास होता है, उस समय हमारा यह शरीर-रथ ज्ञानदीप्ति से उज्ज्वल हो उठता है। यह वेदमाता इसकी कनीनिका (कन् दीप्तौ)—दीप्त करनेवाली बनती है।

भावार्थ—हम देववृत्ति का बनने का प्रयत्न करें, पालन व पूरणात्मक कर्मों में प्रवृत्त हों तब वेदमाता हमारे जीवन की कनीनिका होगी -इसे दीप्त करनेवाली बनेगी। हमारे शरीर रथ में इसका आरोहण होगा और यह शरीर-रथ चमक उठेगा।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**ओषधिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शूद्र व आर्य का विवेचन

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः॥ ४॥

१. '**सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्**'—इन शब्दों में प्रभु को सहस्राक्ष कहा गया है। इस **सहस्राक्षः देवः**-हजारों आँखोंवाले प्रकाशमय प्रभु ने **ताम्**-उस वेदवाणिरूप माता को **मे** मेरे **दक्षिणे हस्ते** दाहिने हाथ में **आदधत्**-स्थापित किया है, इस वेदमाता को मुझे प्राप्त कराया है। २. **तथा**-उसके द्वारा **अहम्** मैं **सर्वं पश्यामि** समाज के सब व्यक्तियों को ठीकरूप में देख पाता हूँ—**यः च शूद्रः** जो शूद्र है **उत**-और **आर्यः**-श्रेष्ठ है। इस वेदमाता ने 'शूद्र व आर्य' का ठीक ठीक लक्षण कर दिया है। उस लक्षण के अनुसार मैं शूद्रों व आर्यों को पृथक् पृथक् करके जान पाता हूँ।

भावार्थ—प्रभु सहस्राक्ष हैं। वे वेदवाणी द्वारा हमें भी सब शूद्रों व आर्यो को पृथक् पृथक् देखने की शक्ति प्रदान करते हैं

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**ओषधिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रतिपश्याः 'किमीदिनः'

आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः॥ ५॥

१. हे वेदमातः! तू **रूपाणि** संसार के सब रूपवान् पदार्थों को **आविष्कृणुष्व**-हमारे लिए प्रकट कर—हमें इन पदार्थों का ठीक ठीक ज्ञान दे। तू **आत्मानम्**-अपने आपको **मा अप गूहथाः** हमसे मत छिपा। हम तेरा दर्शन करें और तेरे द्वारा संसार के सब रूपों को—रूपवान् पदार्थों को समझें। २. हे **सहस्राक्षो** अनन्त दर्शन-शक्तिवाले प्रभो! **अथ उ**-अब निश्चय से इस वेदमाता के द्वारा **त्वम्**-आप **किमीदिनः** (किम् इदानीं किम् इदानीम् इति गूढं सञ्चरतः राक्षसान्) 'अब क्या भोगूँ, अब क्या भोगूँ' इसप्रकार स्वार्थ-भोग के लिए औरों को पीड़ित करनेवाले राक्षसों को **प्रतिपश्याः**-(प्रतिदर्शय) एक-एक करके हमें दिखलाइए। इन्हें सम्यक् देखकर हम अपने को इनसे बचा सकें। इनसे हम सदा सावधान रह सकें।

भावार्थ—हम वेदवाणी द्वारा सब रूपवान् पदार्थों व प्राणियों को समझें। हम भोगप्रधान जीवनवाले राक्षसीवृत्ति के पुरुषों को समझकर उनसे अपना रक्षण कर सकें।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**ओषधिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'यातुधान व पिशाच' का लक्षण

दर्शय मा यातुधानान्दर्शय यातुधान्यः। पिशाचान्त्सर्वान्दर्शयेति त्वा रभ ओषधे॥ ६॥

१. हे **ओषधे**=दोषों को दहन करनेवाली वेदमातः। मैं **त्वा आरभे**=तेरा आश्रय करता हूँ, तुझे अपनाता हूँ। तू **सर्वान् पिशाचान्**=सब पिशाचों को—औरों का मांस खानेवालों को (पिशितम् अश्नन्ति) **दर्शय इति**=मुझे दिखला, इसलिए मैं तेरा आश्रय लेता हूँ। २. **मा**=मुझे **यातुधानान्**=पीड़ा को आहित करनेवालों को **दर्शय**=दिखा तथा **यातुधान्यः**=इन यातुधानों की पत्नियों को **दर्शय**=दिखा।

भावार्थ—वेद द्वारा हम 'यातुधान, यातुधानी व पिशाचों' के लक्षणों को समझते हुए इनसे बचें।

सूचना—शरीरस्थ कुछ रोगकृमि भी इसप्रकार के हैं, जो शरीर में पीड़ा के कारण बनते हैं। अन्य रोगकृमि मांस को खा जाते हैं और हमें अमांस (दुर्बल, emacited) कर देते हैं। वेद द्वारा इन्हें समझकर हम अपने को इनका शिकार होने से बचाएँ।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**ओषधिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'कश्यप व शुनि' की आँख

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः॥ ७॥

१. हे वेदवाणि! तू **कश्यपस्य**=ज्ञानी पुरुष की **चक्षुः असि**=आँख है। एक ज्ञानी पुरुष तेरे द्वारा ही अपने कर्त्तव्य-कर्मों को देख पाता है **च**-और **चतुः अक्ष्याः**=चार आँखोंवाली, अर्थात् 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष'—रूप चारों पुरुषार्थों को देखनेवाली **शुन्याः**=(शुन गतौ) विषयों के प्रकाशन में गतिवाली बुद्धि (सरमा=देवशुनी) की तू आँख है। यह बुद्धि तेरे द्वारा ही सब धर्मादि को देख पाती है। २. हे वेदवाणि! तू **वीध्रे**=(विविधम् इन्धन्ते दीप्यन्ते अस्मिन् ग्रहनक्षत्रादीनि इति) अन्तरिक्ष में **सर्पन्तं सूर्यम् इव**=गति करते हुए इस सूर्य की भाँति हमारे हृदयान्तरिक्षों में गति करते हुए **पिशाचम्**=मांस को खा जानेवाले राक्षसीभावों को **मा तिरस्करः**=मत छिपानेवाली हो, अर्थात् तेरे द्वारा इन राक्षसी भावों को हम दूर करनेवाले हों।

भावार्थ—वेदमाता ज्ञानी पुरुष की बुद्धि की आँख के समान है। इसके द्वारा हम हृदयान्तरिक्ष में छिपकर गति करनेवाले राक्षसीभावों को दूर कर पाते हैं।

ऋषिः—**मातृनामा**॥ देवता—**ओषधिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'यातुधान किमीदि' का उद्ग्रहण (उखाड़ देना)

उदग्रभं परिपाणाद्यातुधानं किमीदिनम्। तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम्॥ ८॥

१. **परिपाणात्**=रक्षण के हेतु से मैंने **किमीदिनम्**-'अब क्या भोगूँ, अब क्या भोगूँ' इसप्रकार स्वार्थभोग के लिए औरों को पीड़ित करनेवाले **यातुधानम्**=राक्षसीभाव को **उद् अग्रभम्**=हृदयक्षेत्र से उद्ग्रहीत कर लिया है—इन स्वार्थभावों को नष्ट करके ही तो मैं शुद्ध दृष्टिवाला बन पाता हूँ। २. **तेन**-इन राक्षसीभावों के दूरीकरण से शुद्ध दृष्टि होने से **अहम्**-मैं **सर्वं पश्यामि**-सबको ठीकरूप में देखता हूँ **उत शूद्रम् उत आर्यम्**-चाहे वह शूद्र है या आर्य। मैं शूद्र व आर्यों को पृथक्-पृथक् देख पाता हूँ और शूद्रभावों का परित्याग करके आर्यभावों को ग्रहण करनेवाल बनता हूँ।

भावार्थ—भोगप्रधान परपीड़क भावों को दूर करके हम अपना रक्षण करते हैं। इस रक्षण से शुद्ध दृष्टि बनकर हम शूद्र व आर्यभावों को देखते हुए शूद्रभावों का परित्याग करते हैं और आर्यभावों का ग्रहण करते हैं।

ऋषिः—**मातृनामा** ॥ देवता—**ओषधिः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥

'अन्तरिक्ष, द्युलोक व भूमि' पर आधिपत्यवाला पिशाच

यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय॥ ९॥

१. **यः**-जो राक्षसीभाव **अन्तरिक्षेण पतति** हृदयान्तरिक्ष से गतिवाला होता है—जो हृदय में उत्पन्न होता है, **यः च**-और जो **दिवम् अतिसर्पति**-मस्तिष्करूप द्युलोक में अतिशयेन गति करता है, **यः** जो **भूमिम्**-इस शरीररूपी पृथिवीलोक का **नाथम्**-अपने को स्वामी **मन्यते**-मानता है—जो शरीर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है, **तम्**-हमारा मांस ही खा जानेवाले राक्षसीभाव को हे वेदमातः! तू **प्रदर्शय**-दिखला। २. हृदय में उत्पन्न हुआ-हुआ राक्षसीभाव मस्तिष्क में अतिशयेन गतिवाला होता है, मस्तिष्क में वही भाव चक्कर काटने लगता है। इस शरीर पर उसका आतिपत्य-सा स्थापित हो जाता है। हम वेद के द्वारा इन भावों के स्वरूप को समझें और इनसे बचें।

भावार्थ—अशुभवासना हृदय में उत्पन्न होकर मस्तिक में घर कर लेती है और शरीर पर आधिपत्य स्थापित कर लेती है। इसके स्वरूप को समझकर हम इससे बचने के लिए यत्नशील हों।

विशेष—पैशाचिकभावों को दूर करने के लिए आवश्यक है कि हम आहार को सात्त्विक करें। सर्वाधिक सात्त्विक आहार 'गोदुग्ध' है, अतः अगले सूक्त में 'गावः' ही देवता (वर्ण्यविषय) है और गोदुग्ध-सेवन से पवित्र बुद्धिवाला ज्ञानी 'ब्रह्मा' ऋषि है—

अथाष्टमः प्रपाठकः

२१. [एकविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

'प्रजावतीः पुरुरूपाः' गावः

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः॥ १॥

१. **गावः**-गौएँ **आ अग्मन्**-हमारा लक्ष्य करके आएँ **उत**-और **भद्रम् अक्रन्**-हमारा कल्याण करें। **गोष्ठे**-गोशाला में—गौओं के ठहरने के स्थान में **सीदन्तु**-बैठें और ये गौएँ **अस्मे रणयन्तु**-हमें क्षीर आदि के प्रदान से आनन्दित करें। २. **प्रजावतीः**-उत्तम बछड़ी बछड़ोंवाली **पुरुरूपाः** श्वेत, कृष्ण, अरुण आदि अनेक वर्णोंवाली **इह स्युः**-गाएँ हमारे घरों में समृद्ध हों ये गौएँ **पूर्वीः उषसः** बहुत उषाकालों तक **इन्द्राय**-उस प्रभु के लिए 'सन्नाय्य व आशिर' आदि हवियों के लिए **दुहानाः**-दुग्ध का दोहन (प्रपूरण) करनेवाली हों। हम गोदुग्ध से घृत प्राप्त करके यज्ञों में आहुति देकर प्रभु के प्रिय बनें

भावार्थ—हमारे-घरों में गौओं का निवास हो। वे दुग्ध देती हुई हमें आनन्दित करनेवाली हों। गोदुग्ध से यज्ञों को सिद्ध करते हुए हम प्रभु को आराधित करनेवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

यज्वा+गृणन्देवयु का स्वर्णतुल्य गृह

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद्दाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम्॥ २॥

१. **यज्वने**=यज्ञशील पुरुष के लिए **च**=और **गृणते**=स्तवन करनेवाले मनुष्य के लिए **इन्द्रः**-वे प्रभु **शिक्षते**-गौएँ देते हैं। प्रभु **इत्**-निश्चय से **उपददाति**=इस यजनशील स्तोता के लिए इन गौओं को समीपता से प्राप्त कराते हैं, **स्वं न मुषायति** प्रभु इस यजनशील के धन का अपहरण नहीं करते। २. प्रभु **भूयः**=अधिक और अधिक ही **अस्य**-इस यज्वा व स्तोता के **रयिम्**-धन को **इत्**-निश्चय से **वर्धयन्**=बढ़ाते हुए इस **देवयुम्**-दिव्यगुणों को अपनाने की कामनावाले पुरुष को **अभिन्ने**-दुःखों से **असंभिन्ने खिल्ये**-वासनाओं से अहत (अनाक्रान्त) स्वर्गलोक में **निदधाति**=स्थापित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु यज्ञशील पुरुष को खूब ही धन प्राप्त कराते हैं। इन धनों के द्वारा यज्ञ करनेवाले इस देवयु पुरुष को प्रभु दुःखों से रहित व वासनाओं से अनाक्रान्त स्वर्गलोक में स्थापित करते हैं—इसका घर स्वर्ग बन जाता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

देवयज्ञ व दक्षिणा की साधनभूत गौएँ

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥ ३॥

१. **ताः**=प्रभु से दी गई वे गौएँ **न नशन्ति**=नष्ट नहीं होती हैं, **तस्करः**=चोर **न दभाति**=इन्हें हिंसित नहीं करता। **आसाम्**=इन गौओं का **आमित्रः**=(अमित्रजनितः) शत्रुओं से किया हुआ **व्यथिः**=व्यथाजनक आयुध **न आदधर्षति**=धर्षण नहीं करता—शत्रुओं के अस्त्र इन्हें पीड़ित नहीं करते। २. **च**=और **याभिः**-जिन गौओं के द्वारा **देवान् यजते**-क्षीर आदि हवियों को प्राप्त करके दवेयज्ञ करता है **च**=और **ददाति**=जिन गौओं को दक्षिणा के रूप में देता है, **ताभिः सह**-उन गौओं के साथ यह **गोपतिः**-गौओं की रक्षा करनेवाला यज्ञशील पुरुष **ज्योग् इत्**-निश्चय से चिरकाल तक **सचते** समवेत होता है—इन गौओं से कभी पृथक् नहीं होता।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुष का गौओं के साथ सदा सम्बन्ध रहता है। इनके द्वारा ही वह देवयज्ञ कर पाता है और दक्षिणा देता है। ये गौएँ चोरों और शत्रुओं के अस्त्रों से हिंसित नहीं होतीं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

गोरक्षण का सुप्रबन्ध (गोमांस-भक्षण-निषेध)

न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः॥ ४॥

१. **ताः**=उन गौओं को **अर्वा**-हिंसक **रेणुककाटः**=पादाघात से पार्थिव धूलिका उद्भेदक (कटिभेदनकर्मा) व्याघ्र आदि हिंसक पशु **न अश्नुते**-नहीं प्राप्त होता। **ताः**=वे गौएँ **संस्कृतत्रम् अभि**=(संस्कृतत्रश्च पाचकः) भोजन के लिए इनका मांस पकानेवाले का लक्ष्य करके **न उपयन्ति**=नहीं प्राप्त होती हैं। न तो कोई हिंस्र पशु और न ही कोई मांसाहारी इनका विनाश करता है। २. **ताः गावः**=वे गौएँ तो **तस्य यज्वनः**-उस यज्ञशील पुरुष के **उरुगायम्**=विस्तीर्ण गमनवाले—विशाल **अभयम्**-भयरहित देश को **अनु**-लक्ष्य करके **विचरन्ति**=विचरण करती हैं।

भावार्थ—व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं से गौओं के रक्षण की व्यवस्था हो। कोई मांसाहारी इनके मांस को न पका सके। इनके विचरण के लिए विशाल भयरहित गोचरभूमियाँ हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गौएँ ही ऐश्वर्य हैं

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम्॥ ५॥

१. **गावः**-गौएँ ही **भगः**=पुरुष का धन व सौभाग्य हैं, अतः **इन्द्रः**-प्रभु **मे**-मेरे लिए **गावः इच्छात्** गौओं की कामना करें—मुझे गौएँ प्राप्त कराएँ। **गावः** ये गोदुग्ध ही **प्रथमस्य**-मुख्य हवियों में श्रेष्ठ **सोमस्य**-सोम का **भक्षः** भोजन बनता है। अभिषुत (निचोड़े हुए) सोम को गव्य दूध व दही में मिलकार ही आहुत करते हैं। २. हे **जनासः**-लोगो! **इमाः याः गावः** ये जो गौएँ हैं **सः (एव)** वे ही इन्द्र हैं। गौएँ व प्रभु का उपजीव्योपजीवक भाव से तारतम्य-सा है। इन गोदुग्धों ने ही सात्त्विक बुद्धि को जन्म देकर हमें प्रभु दर्शन कराना है। गोदुग्ध के सेवन से **हृदा**-हृदय से **मनसाचित्**-और निश्चयपूर्वक मन से **इन्द्रम्** उस इन्द्र को **इच्छामि** चाहता हूँ। गोदुग्धसेवन सात्त्विकवृत्ति को जन्म देकर हमें प्रभु प्रवण करता है।

भावार्थ—गौएँ ऐश्वर्य हैं। इनके दुग्ध से मिश्रित सोम की यज्ञों में आहुति होती हैं। इन गोदुग्धों के सेवन से मैं प्रभु-प्रवण वृत्तिवाला—प्रभु की ओर झुकाववाला बनता हूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

बृहद् वयः (गोदुग्ध—एक पूर्ण भोजन)

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु॥ ६॥

१. हे **गावः** गौओ! **यूयम्**-तुम **कृशं चित्**-दुर्बल शरीरवाले को भी **मेदयथ**-दूध दही आदि से आप्यायित करके मोटा बना देती हो। **अश्रीरं चित्**-अश्रीक—अशोभन अङ्गोंवाले पुरुष को भी **सुप्रीकम्** शोभन अवयवोंवाला **कृणुथ**-करती हो। २. हे **भद्रवाचः** कल्याणी वाणीवाली गौओ! **गृहं भद्रं कृणुथ**-हमारे घर को कल्याणयुक्त करो। **सभासु**-सभाओं में **वः**-आपका **वयः** दुग्ध दधि लक्षण अन्न **बृहत् उच्यते**-खूब ही प्रशंसित होता है। वस्तुतः यह गोदुग्ध व दधिरूप भोजन एक पूर्ण भोजन है।

भावार्थ—गौएँ दूध दही आदि द्वारा कृश को सबल व अशोभन को शोभन अंगोंवाला बनाती हैं। इनकी वाणी घर को मंगलमय बनाती है। इनका दूध व दही पूर्ण व प्रशस्त भोजन है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**गावः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शुद्ध चारा व शुद्ध जल

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु॥ ७॥

१. हे गौओ! **प्रजावतीः** उत्तम बछड़ी बछड़ोंवाली **सूयवसे** शोभन तृणयुक्त देश में **रुशन्तीः**-चमकती हुई, अर्थात् प्रसन्नता से तृणों को खाती हुई तथा **सुप्रपाणे** शोभन अवतरण मार्ग से युक्त तालाब आदि में **शुद्धाः**-निर्मल **अपः**=जलों को **पिबन्तीः**-पीती हुई इन **वः** तुम गौओं को **स्तेनः**-चोर **मा ईशत**-चुराने में समर्थ न हो। २. **अघशंसः** वधलक्षण पाप की कामनावाला पुरुष भी इन गौओं का ईश न हो। **रुद्रस्य**-ज्वराभिमानी देव का **हेतीः**-आयुध भी **वः** तुम गौओं को **परिवृणक्तु** दूर से ही छोड़नेवाला हो, अर्थात् ये गौएँ किसी रोग से भी आक्रान्त न हो जाएँ।

भावार्थ—गौओं को शुद्ध चारा व शुद्ध जल प्राप्त हो। इन्हें न कोई चुरा सके, न मार सके और न ये रोगाक्रान्त हों।

विशेष—गोदुग्धों का प्रयोग करता हुआ यह 'वसिष्ठ'-अत्यन्त उत्तम निवासवाला व 'अथर्वा' स्थिर वृत्तिवाला (न डाँवाडोल) बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

२२. [द्वाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**वसिष्ठः, अथर्वा वा**॥ देवता—**इन्द्रः, क्षत्रियो राजा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

एकवृष राजा

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम्।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान्रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु॥ १॥

१. राजपुरोहित प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे **इन्द्र**=प्रभो! **मे**=मेरे **इमम्**=इस **क्षत्रियम्**=प्रजाओं का क्षतों से त्राण करनेवाले राजा को **वर्धय**=बढ़ाइए। यह कोश—दण्ड आदि से खूब समृद्ध बने। **त्वम्**=आप **इमम्**=इसे **विशाम्**=सब प्रजाओं में **एकवृषम्**=अद्वितीय शक्तिशाली व प्रजाओं पर सुखों का वर्षक **कृणु**=कीजिए। २. **अस्य**=इस राजा के **सर्वान्**=सब **अमित्रान्**=शत्रुओं को **निः अक्ष्णुहि**=निर्गतव्याप्तिवाला—संकुचित प्रभाववाला **कृणुहि**=कीजिए। **तान्**=उन शत्रुओं को **अहम् उत्तरेषु**='मैं उत्कृष्ट होऊँ, मैं उत्कृष्ट होऊँ' इसप्रकार के भावोंवाले संग्रामों में **अस्मै**=इस राजा के लिए **रन्धय**=वशीभूत कीजिए।

भावार्थ—अद्वितीय शक्तिशाली राजा संग्रामों में सब शत्रुओं को पराजित करके प्रजा पर सुखों का सेचन करनेवाला बने।

ऋषिः—**वसिष्ठः, अथर्वा वा**॥ देवता—**इन्द्रः, क्षत्रियो राजा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

क्षत्रियों में मूर्धन्य

एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै॥ २॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमान् प्रभो! **इमम्**=इस राजा को **ग्रामे**=जनसमूह में **अश्वेषु गोषु**=घोड़ों में और गौओं में **आभज**=समन्तात् भागी कर। **यः**=जो **अस्य**=इस राजा का **अमित्रः**=शत्रु है **तं निर्भज**=उसे 'ग्राम, अश्व व गौओं' से पृथक् कर। २. **अयं राजा**=यह राजा **क्षत्राणाम्**=क्षत से त्राण करनेवाले कार्यों में **वर्ष्म अस्तु**=शरीर के मुख्य अंग सिर के समान हो। हे **राजेन्द्र**=परमात्मन्! आप **अस्मै**=इसके लिए **सर्वं शत्रुम्**=सब शत्रुओं को **रन्धय**=वशीभूत कीजिए।

भावार्थ—हमारा राजा ग्रामों, घोड़ों व गौओं का अधिपति हो। यह क्षत्रियों में मूर्धन्य हो। सब शत्रुओं को वश में करनेवाला हो।

ऋषिः—**वसिष्ठः, अथर्वा वा**॥ देवता—**इन्द्रः, क्षत्रियो राजा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

धनानां धनपतिः+विशां विश्पतिः

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य॥ ३॥

१. **अयम्**=यह **राजा**=शासक **धनानां धनपतिः**=धनों का खूब ही स्वामी **अस्तु**=हो। इसका कोश खूब बढ़ा हुआ हो। **अयम्**=यह **विशाम्**=प्रजाओं का **विश्पतिः अस्तु**=उत्तम प्रजापालक हो। २. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमान् प्रभो। **अस्मिन्**=इस राजा में **महि**=महत्त्वपूर्ण **वर्चांसि**=शक्तियों को

धेहि धारण कीजिए। **अस्य**-इस राजा के **शत्रुम्**-शत्रु को **अवर्चसम् कृणुहि**-नष्ट शक्तिवाला कीजिए।

भावार्थ—राजा का कोश खूब बढ़ा हुआ हो। यह प्रजापालन को मुख्य कार्य जाने। यह शक्तिशाली हो, शत्रुओं को निस्तेज करके यह प्रजा का रक्षण करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः, अथर्वा वा**॥ देवता—**इन्द्रः, क्षत्रियो राजा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सर्वप्रिय राजा

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघेइव धेनू।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात्प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम्॥ ४॥

१. **अस्मै**-इस राजा के लिए **द्यावापृथिवी**-द्युलोक से लेकर पृथिवीलोक तक सारा संसार **भूरि** खूब ही **वामम्**-सुन्दर, वननीय धन का **दुहाथाम्**-प्रपूरण करे। द्युलोक वृष्टिरूप धन दे तो पृथिवी विविध अन्नों व ओषधियों को प्राप्त करानेवाली हो। ये द्यावापृथिवी इसके लिए इसप्रकार हों **इव**-जैसेकि **घर्मदुघे धेनू**-धारोष्ण दूध (घर्म) देनेवाली गौएँ होती हैं। २. इन धनों से यज्ञों को करता हुआ—लोकरक्षणरूप महान् यज्ञ करता हुआ **अयं राजा**-यह राजा **इन्द्रस्य**-परमैश्वर्यशाली प्रभु का **प्रियः**=प्रिय **भूयात्** हो। यज्ञों से वृष्टि करानेवाला यह राजा **गवाम्**-गौ आदि पशुओं का **ओषधीनाम्**-ओषधियों का तथा **पशूनाम्**-सब प्राणियों का **प्रियः**-प्रिय हो।

भावार्थ—राजा धन प्राप्त करके यज्ञशील हो। यही राजा प्रभु का प्रिय होता है। इसके राज्य में वृष्टि आदि के ठीक होने से गौएँ, ओषधियाँ व अन्य प्राणी ठीक स्थिति में होते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः, अथर्वा वा**॥ देवता—**इन्द्रः, क्षत्रियो राजा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु-स्मरण व अपराजय

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम्॥ ५॥

१. हे राजन्! **ते**-तेरे साथ **उत्तरावन्तम्** अतिशयित उत्कर्षवाले **इन्द्रम्** उस प्रभु को **युनज्मि**-जोड़ता हूँ **येन**-जिस इन्द्र से प्रेरित तेरे सैनिक **जयन्ति**-शत्रुसेना को जीतते हैं, **न पराजयन्ते**-और कभी पराजय को प्राप्त नहीं होते। वस्तुतः प्रभु स्मरण के साथ चलनेवाला राजा युद्ध में शत्रुओं से कभी पराजित नहीं होता। २. हे राजन्! **त्वा**-तुझे **यः इन्द्रः**-जो प्रभु हैं वे **जनानाम्**-लोगों में **एकवृषम्** अद्वितीय शक्तिशाली **करत्** बनाते हैं, **राज्ञाम्**-सब राजाओं में भी अनुपम शक्तिशाली करते हैं, **मानवानाम्**-सब मनुष्यों में वे प्रभु तुझे **उत्तमम्**-सर्वोत्कृष्ट स्थिति में स्थापित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्मरण के साथ संग्राम में चलनेवाला राजा कभी पराजित नहीं होता। यह अनुपम शक्तिशाली व उत्तम बनता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः, अथर्वा वा**॥ देवता—**इन्द्रः, क्षत्रियो राजा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

त्वम् उत्तरः अधरे सपत्नाः

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन्प्रतिशत्रवस्ते।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा भरा भोजनानि॥ ६॥

१. हे **राजन्**-अपनी प्रजाओं का रञ्जन करनेवाले शासक! **त्वम् उत्तरः**-तू सर्वोत्कृष्ट हो। **ते** तेरे **सपत्नाः** शत्रु **अधरे**-निकृष्ट हों—हीनतर स्थिति में हों। **ये के च**-और जो कोई भी **ते**

प्रतिशत्रवः-तेरे प्रति शत्रुत्व का आचरण करनेवाले हों, वे सब अधर-स्थिति में हों। २. **एकवृषः**=अद्वितीय शक्तिशाली **इन्द्रसखा**=प्रभु की मित्रतावाला **जिगीवान्**-शत्रुओं को जीतता हुआ तू **शत्रुयताम्**-शत्रु की भाँति आचरण करनेवाले विरोधियों के **भोजनानि**-भोगसाधन धनों का **आभार** हरण करनेवाला हो। शत्रुओं को जीतकर उनके धनों को तू अपहृत कर ले।

भावार्थ—प्रभु के साथ मित्रतावाला यह राजा सदा शत्रुओं को पराजित करनेवाला होता है। उनके भोगसाधन धनों का यह अपहरण कर लेता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः, अथर्वा वा**॥ देवता—**इन्द्रः, क्षत्रियो राजा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सिंहप्रतीकः—व्याघ्रप्रतीकः

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून्।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा खिदा भोजनानि॥ ७॥

१. **सिंहप्रतीकः**-सिंहतुल्य पराक्रमवाला, सिंह शरीर होता हुआ तू आज्ञामात्र से **सर्वाः विशः**-सब प्रजाओं को **अद्धि**-खानेवाला बन, अर्थात् तू उनसे कररूप उचित धन प्राप्त करनेवाला बन। कोई भी व्यक्ति कुछ भी कर न देनेवाला न हो। श्रमिक भी तीस दिन में एक दिन अवैतनिक राजकार्य करे। २. **व्याघ्रप्रतीकः**=व्याघ्र शरीर होता हुआ—व्याघ्र की भाँति आक्रमण करके **शत्रून्**-शत्रुओं को **अवबाधस्व**-राष्ट्र की सीमाओं से दूर ही रख। ३. **एकवृषः**-अद्वितीय शक्तिशाली होता हुआ **इन्द्रसखा**-प्रभुरूप मित्रवाला **जिगीवान्** शत्रुओं को जीतता हुआ **शत्रूयताम्**-शत्रुवत् आचरण करते पुरुषों के भोजननानि भोग-साधन धनों को **आखिद**-छिन्न करनेवाला—अपहृत करनेवाला हो।

भावार्थ—राजा सिंह के समान प्रभावशाली शरीरवाला होता हुआ राष्ट्र में उचित करों को लेनेवाला बने, व्याघ्र के समान आक्रमण करके शत्रुओं को राष्ट्र की सीमा से दूर ही रक्खे।

विशेष—इस सुरक्षित, सुव्यवस्थित राष्ट्र में साधनामय जीवन बिताता हुआ व्यक्ति आत्मान्वेषण करनेवाला (मृग) सब दोषों को दूर करने के लिए गतिशील (अरः, ऋ गतौ) बनता है। यह 'मृगार' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

२३. [त्रयोविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मृगारः**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'प्रथम-प्रचेता-पाञ्चजन्य' प्रभु

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः॥ १॥

१. मैं **अग्नेः**-उस अग्रणी प्रभु का **मन्वे**-मनन व चिन्तन करता हूँ जोकि **प्रथमस्य**-सर्वमुख्य व सर्वव्यापक हैं (प्रथ विस्तारे), **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले—सर्वज्ञ हैं और **पाञ्जन्यस्य**=पञ्चजनों का हित करनेवाले हैं। 'पञ्च यज्ञशील जन' पञ्चजन हैं। ये प्रभु को सदा प्रिय होते हैं। उस प्रभु का मैं मनन करता हूँ **यम्**-जिसे **बहुधा**-अनेक प्रकार से—नानाविध यत्नों से **इन्धते**=साधक लोग अपने हृदयदेश में दीप्त करते हैं। २. **विशः विशः प्रविशिवांसम्**-सब प्रजाओं में प्रविष्ट हुए-हुए उस प्रभु को **ईमहे**=हम प्रार्थित करते हैं। **सः**=वे प्रभु **नः**=हमें **अंहसः**=सब अनर्थों के कारण पाप से **मुञ्चतु**-मुक्त करें—वे प्रभु हमें पापों से छुड़ाएँ।

भावार्थ—हम उस प्रभु का स्मरण करें जोकि 'अग्नि, प्रथम, प्रचेता व पाञ्चजन्य' हैं। हम सबके अन्दर वे प्रभु रह रहे हैं। उन्हीं से हम आराधना करते हैं कि वे हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

हव्य-यज्ञ-सुमति

यथा हुव्यं वहसि जातवेदो यथा युज्ञं कुल्पयसि प्रजानन्।
एवा देवेभ्यः सुमुतिं नु आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥

१. हे **जातवेदः** सर्वज्ञः, सर्वव्यापक प्रभो! (जातं जातं वेत्ति, जाते जाते विद्यते वा) **यथा** जैसे **हव्यं वहसि** आप हमारे लिए हव्य—यज्ञिय पवित्र पदार्थों को प्राप्त कराते हो और **प्रजानन्** प्रकृष्ट ज्ञानवाले होते हुए आप **यथा**-जैसे **यज्ञं कल्पयसि** हमारे जीवनों में यज्ञ को सिद्ध करते हैं **एव** इसीप्रकार **देवेभ्यः** माता पिता व आचार्यरूप देवों से **नः** हमारे लिए **सुमतिम्** कल्याणी मति को **आवह** प्राप्त कराइए। २. इसप्रकार हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हुए—हमारे यज्ञों को सिद्ध करते हुए तथा सुमति को प्राप्त कराते हुए **सः** वे आप **नः** हमें **अंहसः मुञ्चतु** पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु हमें पवित्र यज्ञिय पदार्थों को प्राप्त कराएँ। प्रभु हमारे यज्ञों को सिद्ध करें। प्रभु हमें उत्तम माता पिता व आचार्यों से सुमति प्राप्त कराएँ। इसप्रकार प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पुरस्ताज्ज्योतिष्मतीत्रिष्टुप्** ॥

रक्षोहणं, यज्ञवृधं, घृताहुतम्

यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम्।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

१. **यामन् यामन्** जीवन के प्रत्येक मार्ग में—ज्ञान-भक्ति व कर्मप्रधान सभी मार्गों में **उपयुक्तम्**-उपयुक्त, अर्थात् ज्ञानियों को ज्ञान प्राप्त करानेवाले, भक्तों की वृत्ति को उत्तम बनानेवाले व यज्ञादि कर्मों को सिद्ध करनेवाले उस **वहिष्ठम्** वोढृतम—लक्ष्य-स्थान तक पहुँचानेवाले, **कर्मन् कर्मन्**-प्रत्येक कर्म में **आभगम्** उपासनीय, अर्थात् कर्मों के द्वारा ही जिसकी उपासना होती है, उस **अग्निम्**-अग्रणी प्रभु को **ईडे** मैं उपासित करता हूँ। २. उस प्रभु की उपासना करता हूँ जोकि **रक्षोहणम्** राक्षसी वृत्तियों का संहार करनेवाले हैं, **यज्ञवृधम्** हमारे यज्ञों का वर्धन करनेवाले हैं और **घृताहुतम्** (घृ दीप्तौ) ज्ञान दीप्तियों द्वारा हृदयदेश में आहुत (दीप्त) होते हैं। सब यज्ञ प्रभु द्वारा ही पूर्ण किये जाते हैं तथा ज्ञानाग्नि को दीप्त करने पर ही प्रभु का हृदय में दर्शन होता है। **सः** वे प्रभु **नः** हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतु** मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभुकृपा से ही हमें सर्वत्र सफलता मिलती है, प्रभु ही हमें लक्ष्यस्थान पर पहुँचाते हैं, ये प्रभु ही हमारे कर्मों को पूर्ण करते हैं, राक्षसी वृत्तियों को नष्ट करके प्रभु ही हममें यज्ञों का वर्धन करते हैं। ज्ञान दीप्ति से हृदय में द्योतित ये प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'वैश्वानर विभु, हव्यवाट्' प्रभु

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानुरं विभुम्। हुव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥

१. **सुजातम्** उत्तम प्रादुर्भाववाले—सर्वत्र अपनी महिमा से व्यक्त होनेवाले **जातवेदसम्** सर्वव्यापक, सर्वज्ञ **अग्निम्**-अग्रणी प्रभु को **हवामहे**-हम पुकारते हैं। २. हम उस प्रभु को पुकारते हैं जोकि **वैश्वानरम्** सब नरों का—उन्नति पथ पर चलनेवाले व्यक्तियों का हित करनेवाले हैं, **विभुम्** सर्वव्यापक हैं और **हव्यवाहम्** सब हव्य पदार्थों को प्राप्त करनेवाले हैं। **सः**-वे प्रभु

नः=हमें **अंहसः**=पाप से **मुञ्चतु**=मुक्त करें।

भावार्थ—वह 'सुजात, जातवेदा, वैश्वानर, विभु, हव्यवाट्' अग्नि हमें पापों से मुक्त करे।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः —**त्रिष्टुप्** ॥

बलद्योतन+माया-हनन+पणि-पराजय

येन ऋषयो बलमद्योतयन्युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः॥ ५॥

१. **येन युजा**-जिस मित्र के द्वारा—जिससे युक्त होकर **ऋषयः**-तत्त्वद्रष्टा लोग **बलम् अद्योतयन्**=अपने बल को द्योतित करते हैं और **येन**=जिसके द्वारा **असुराणाम्**-असुर वृत्तियों की **मायाः**-व्यामोहन शक्तियों को **अयुवन्त**=देव लोग अपने से पृथक् करते हैं और **येन अग्निना**=जिस अग्रणी प्रभु के द्वारा **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **पणीन् जिगाय**=वणिक् वृत्तियों को—कृपणता के भावों को जीतता है, **सः**=वे प्रभु **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतु**=मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु मित्रता में बल की वृद्धि होती है, असुरभाव हमें मोहित नहीं कर पाते, हम कार्पण्य से दूर रहते हैं। इसप्रकार प्रभु-मित्रता हमें पापों से बचाती है।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

नीरोगता, माधुर्य, प्रकाश

येन देवा अमृतमन्वविन्दन्येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन्।
येन देवाः स्व१राभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः॥ ६॥

१. **येन**-जिस प्रभु के द्वारा **देवाः**-देववृत्ति के लोग **अमृतम्**-पूर्ण नीरोगता को **अन्वविन्दन्**-क्रमशः प्राप्त करते हैं, **येन**=जिसके द्वारा **ओषधीः**=सब ओषधियों, वनस्पतियों को **मधुमती अकृण्वन्** अत्यन्त माधुर्यवाला कर लेते हैं। प्रभु की उपासना होने पर मनुष्यों की वृत्तियाँ उत्तम बनती हैं तब आधिदैविक कष्ट नहीं होते। वृष्टि आदि के ठीक होने से सब ओषधियाँ मधुर रसयुक्त होती हैं। **येन**-जिसके द्वारा **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **स्वः**-अपने हृदय में प्रकाश को **आभरन्**-भरते हैं, **सः**-वे प्रभु **नः** हमें **अंहसः** पाप से **मुञ्चतु**-मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु की मित्रता में देव नीरोगता प्राप्त करते हैं, ओषधियों को माधुर्ययुक्त कर पाते हैं और अपने हृदयों में प्रकाश पाते हैं। ये प्रभु हमें भी पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्तौमि+जोहवीमि

यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम्।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः॥ ७॥

१. **इदम्**-यह सम्पूर्ण जगत् **यस्य प्रदिशि**-जिस अग्नि के प्रशासन में है, **यत् विरोचते**=जो ये ग्रह-नक्षत्रादि अन्तरिक्ष में चमकते हैं **च**=और **यत्**-जो **जातम्**-इस पृथिवी पर उत्पन्न हुआ है और **जनितव्यम्**-भविष्य में उत्पन्न होनेवाला है, वह **केवलम्**-अनन्य साधारणरूप से जिसके प्रशासन में है, मैं उस **अग्निं स्तौमि**=अग्नि की स्तुति करता हूँ। २. **नाथितः**=(नाथ उपतापे, Harsh, trouble) वासनाओं से उपतप्त हुआ-हुआ मैं उस प्रभु को ही **जोहवीमि**-पुकारता हूँ। **सः** वे प्रभु ही **नः**-हमें **अंहसः मञ्चतु**-पाप से मुक्त करें—मेरी शक्ति तो इन काम-क्रोध आदि को जीत सकने की नहीं है।

भावार्थ—प्रभु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शासक हैं। मैं प्रभु का ही स्तवन करता हूँ। शत्रुओं से

सन्तप्त किया गया मैं प्रभु को ही पुकारता हूँ। वे प्रभु मुझे पापों से मुक्त करें।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'मृगार' ही है—

२४. [चतुर्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—**शक्वरीगर्भापुरःशक्वरी** ॥

दाश्वान् सुकृत्

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः॥ १॥

१. **इन्द्रस्य** परमैश्वर्ययुक्त उस प्रभु का **मन्महे** हम मनन करते हैं—प्रभु की महिमा का स्मरण करते हैं, **शश्वत्** पुनः पुनः **अस्य**-इस प्रभु का **इत्** ही **मन्महे**-ध्यान करते हैं। **वृत्रघ्नः**-ज्ञान की आवरणभूत वासना का विनाश करनेवाले उस इन्द्र के **इमे**-ये **स्तोमाः** स्तोत्र **मा** मुझे **उप आगुः**-समीपता से प्राप्त होते हैं। २. **यः**-जो प्रभु **दाशुषः** यज्ञों में हवि देनेवाले—दानशील **सुकृतः**-पुण्यकर्मा पुरुष की **हवम्**-पुकार को सुनकर **एति**-प्राप्त होते हैं, **सः नो अंहसः मुञ्चतु** वे प्रभु हमें पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—हम सदा वासना के विनाशक प्रभु का स्तवन करते हैं। दानशील पुण्यात्मा की पुकार को प्रभु अवश्य सुनते हैं। वे प्रभु हमें पाप से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

येन जितः सिन्धवः, येन गावः

य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः॥ २॥

१. **यः** जो **उग्रबाहुः** उद्गूर्णहस्त—तेजस्वी भुजाओंवाला प्रभु **उग्रीणाम्** उद्गूर्ण—प्रबल शत्रुसेनाओं का **ययुः**-आक्रान्ता है—शत्रुसेनाओं पर आक्रमण करके उन्हें पराजित करनेवाला है। **यः** जो प्रभु **दानवानाम्**-राक्षसी वृत्तिवालों के **बलम् आरुरोज** सैन्य का भंग करता है—या सामर्थ्य को नष्ट करता है। २. **येन**-जिस प्रभु के द्वारा हमारे लिए **सिन्धवः** नदियों को **जिता** विजय किया जाता है और **येन** जिस प्रभु से **गावः**-भूमि का विजय किया जाता है। अध्यात्म में **सिन्धवः** स्यन्दशील रेतःकण हैं तथा **गावः**-ज्ञान की वाणियाँ हैं। प्रभु ही हमारे लिए इन रेतःकणों के रक्षण के द्वारा बुद्धि को तीव्र करके ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराते हैं। **सः नः अंहसः मुञ्चतु**-वे प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु हमारे प्रबल शत्रुसैन्य पर आक्रमण करते हैं, दानवों के बल का भंग करते हैं। ये प्रभु ही हमारे लिए नदियों और भूमियों का विजय करते हैं। वे प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

चर्षणिप्रः, वृषभः, स्वर्वित्

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद्यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम्।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः॥ ३॥

१. **यः** जो प्रभु **चर्षणिप्रः**-मनुष्यों को अभिमत फलदान से प्रपूरित करनेवाले हैं **वृषभः**-सब सुखों का वर्षण करनेवाले हैं, **स्वर्वित्** प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाले हैं,

ग्रावाण:-(विद्वांसः—शत० ३.९.३.१४) ज्ञानी स्तोता **यस्मै**-जिसकी प्राप्ति के लिए **नृम्णम्**=बल (Strength) को साधन रूप से **प्रवदन्ति**-कहते हैं। २. **यस्य**-जिस प्रभु का **सप्तहोता:**-'कर्णाविमौ' नासिके चक्षणी मुखम् [नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः] इन सात होताओं से चलाया जानेवाला **अध्वर:**=यह जीवन-यज्ञ **मदिष्ठ:**=अतिशयेन आनन्दित करनेवाला है। जीवन को यज्ञ का रूप देते ही वह आनन्दमय बन जाता है। प्रभु ने वस्तुतः यह दिया तो इसीलिए है। **सः**-वे प्रभु **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चतु**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—वे प्रभु हमारे अभिलषितों को पूर्ण करनेवाले, सुखों के वर्षक व प्रकाश को प्राप्त करानेवाले हैं। सबलता ही प्रभु प्राप्ति का साधन है। हम जीवन को यज्ञमय बनाकर प्रभु के प्रिय बनते हैं। वे प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वशासः, ऋषभासः, उक्षणः

यस्य॑ व॒शास॑ ऋष॒भास॑ उ॒क्षणो॒ यस्मै॑ मी॒यन्ते॒ स्वर॑वः स्व॒र्विदे॑।
यस्मै॑ शु॒क्रः पव॑ते॒ ब्रह्म॑शुम्भितः॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ४ ॥

१. **यस्य**-जिस प्रभु के व्यक्ति वे हैं जोकि **वशासः**=(वश् to shine) ज्ञान-दीप्ति से चमकते हैं, **ऋषभासः**=(ऋष् to kill) ज्ञानाग्नि द्वारा शत्रुओं का संहार करते हैं और **उक्षणः**-अपने में शक्ति का सेचन करते हैं। **यस्मै**=जिस **स्वर्विदे**=सुख व प्रकाश प्राप्त करानेवाले प्रभु की प्राप्ति के लिए **स्वरवः**-यज्ञ (a sacrifice) **मीयन्ते**=किये जाते हैं। २. **यस्मै**-जिस प्रभु की प्राप्ति के लिए **ब्रह्मशुम्भितः**=ज्ञान के द्वारा अलंकृत किया हुआ—स्वाध्याय की वृत्ति के द्वारा वासना मल से शून्य किया हुआ **शुक्रः**-वीर्य **पवते**-शरीर में ही गतिवाला होता है, **सः**=वह प्रभु **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चतु**-पाप से पृथक् करे।

भावार्थ—प्रभु को वे प्राप्त होते हैं जो अपने को ज्ञान दीप्त करें, ज्ञानाग्नि में वासनाओं को दग्ध करें, अपने अन्दर शक्ति का सेचन करें व यज्ञशील हों। स्वाध्याय द्वारा वीर्यशक्ति को शरीर में ही सुरक्षित करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनें। प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अर्कः, ओजः

यस्य॒ जुष्टिं॑ सो॒मिनः॑ का॒मय॑न्ते॒ यं हव॑न्त॒ इषु॑मन्तं॒ गवि॑ष्टौ।
यस्मि॑न्न॒र्कः शि॑श्रि॒ये यस्मि॒न्नोज॒: स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ॥ ५ ॥

१. **सोमिनः**-सोम का (वीर्यशक्ति का) अपने अन्दर रक्षण करनेवाले संयमी पुरुष **यस्य** जिस प्रभु की **जुष्टिम्**-प्रीतिपूर्वक उपासना को **कामयन्ते**-चाहते हैं, **यम्**-जिस **इषुमन्तम्**-(इष प्रेरणे) उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाले प्रभु को **गविष्टौ** ज्ञान यज्ञों में **हवन्ते**-पुकारते हैं। प्रभु-प्रेरणा ही वस्तुतः अन्तर्ज्ञान का स्रोत बनती है। २. **यस्मिन्**=जिस प्रभु में **अर्कः**-ज्ञान का सूर्य **शिश्रिये**-आश्रय करता है, **यस्मिन् ओजः**=जिसमें बल आश्रय करता है—प्रभु ही सम्पूर्ण ज्ञान और बल के कोश हैं। **सः**-वे प्रभु **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चतु**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—सोमरक्षण करनेवाला संयमी पुरुष प्रभु का प्रीतिपूर्वक सेवन करता है, ज्ञान-यज्ञों में इस प्रभु को ही पुकारता है। वे ही ज्ञान व बल के कोश हैं। वे प्रभु हमें ज्ञान और बल देकर पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

'सर्वकर्त्ता सर्वशक्तिमान्' प्रभु

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम्।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥

१. **यः** जो **प्रथमः** सर्वप्रमुख व सर्वव्यापक (प्रथ विस्तारे) प्रभु **कर्मकृत्याय** सृष्टि रचनादि कर्मों को करने के लिए **जज्ञे** प्रादुर्भूत हुए हैं। सृष्टि के बनने से पहले विद्यमान होते हुए जो सृष्टि का निर्माण करते हैं। **यस्य प्रथमस्य**-जिस सर्वव्यापक, सर्वाग्रणी प्रभु का **वीर्यम्** पराक्रम **अनुबुद्धम्** प्रत्येक पदार्थ के बोध में जाना गया है। सूर्यादि पिण्डों के अन्दर प्रभु की शक्ति ही तो कार्य कर रही है। २. **येन**-जिस प्रभु से **उद्यतः**=उठाया हुआ **वज्रः** वज्र **अहिम्**-वासनारूप शत्रु के **अभि आयत** प्रति गतिवाला होता है। प्रभु ही उपासक के शत्रुभूत काम का हनन करते हैं, **सः** वे प्रभु **नः** हमें **अंहसः मुञ्चतु**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु सृष्टि से पहले होते हुए सृष्टिरूप कर्म करते हैं। सूर्यादि पिण्डों में प्रभु का पराक्रम ही दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रभु ही उपासक की शत्रुभूत वासना को नष्ट करते हैं। ये प्रभु हमें पाप से मुक्त करें।

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

'संग्राम-नेता, गृहप्रणेता' प्रभु

यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥

१. **यः** जो प्रभु **वशी** सबको वश में करनेवाले हैं और **युधे**-संहार के लिए **संग्रामान् सं नयति**-संग्रामों को सम्यक् प्राप्त कराते हैं। **यः** जो प्रभु **पुष्टानि** शक्ति से खूब समृद्ध **द्वयानि** स्त्री पुंपात्मक मिथुनों को **संसृजति** परस्पर संसृष्ट करते हैं, उन **इन्द्रम्**-सर्वशक्तिमान परमैश्वर्यशाली प्रभु को **स्तौमि**=मैं स्तुत करता हूँ। २. **नाथितः**-वासनाओं से उपतप्त हुआ हुआ उस प्रभु को ही **जेहवीमि** पुकारता हूँ। **सः** वे प्रभु **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चतु**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु ही संग्रामों में हमसे युद्ध कराते हैं। प्रभु ही हमें उत्तम सन्तानों को जन्म देने योग्य बनाते हैं। हम प्रभु का स्मरण करते हैं, प्रभु को ही पुकारते हैं। वे हमें पापमुक्त करें।

अगला सूक्त भी 'मृगार' ऋषि का ही है—

२५. [पञ्चविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—वायुसवितारौ ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

'वायु व सूर्य' का यथोचित सेवन

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद्विशथो यौ च रक्षथः।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

१. **वायोः** (वा गतिगन्धनयोः) गति के द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करनेवाले वायुतत्त्व के तथा **सवितुः**-सबको कार्यों में प्रेरित करनेवाले सविता—सूर्यदेव के **विदथानि**=वेदितव्य श्रुतिविहित कर्मों का **मनामहे** हम मनन करते हैं। श्रुति में वायु व सूर्य के विषय में जो ज्ञान दिया गया है तथा उनके सेवन का जो प्रकार बताया गया है, उसे हम सम्यक् समझने का प्रयत्न करते हैं। **यौ**-जो वायु और सूर्य **आत्मन्वत्**-आत्मावाले स्थावर जंगम जगत् में **विशथः** प्रवेश

करते हैं। वायु प्राणरूप से नासिका में प्रवेश करती है तो सूर्य चक्षु बनकर आँखों में प्रवेश करता है **च** और इसप्रकार शरीर में प्रवेश करके **यौ**-जो वायु और सूर्य **रक्षथः**=सबका रक्षण करते हैं। २. **यौः**-जो दोनों वायु और सूर्य **विश्वस्य**=सम्पूर्ण जगत् के **परिभू**=परिग्रहीता **बभूवथुः**-होते हैं **तौ**-वे दोनों **नः**-हमें **अंहसः**-पापों व कष्टों से **मुञ्चतम्**=मुक्त करें। वायु व सूर्य का सेवन शरीर को नीरोग बनाकर हमें स्वस्थ मनवाला बनाता है। इसप्रकार ये हमें पापों से मुक्त करते हैं।

भावार्थ—वायु व सूर्य का ठीक ज्ञान प्राप्त करके उनके यथोचित सेवन से हम स्वस्थ शरीर व स्वस्थ्य मनवाले बनते हैं और इसप्रकार ये वायु और सूर्य हमें पापवृत्ति से बचाते हैं।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**वायुसवितारौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

रजः युपितम् अन्तरिक्षे

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ २॥

१. **ययोः** जिन वायु और सूर्य के **पार्थिवानि**-पृथिवी पर होनेवाले **वरिमा**-महत्त्वपूर्ण कार्य **संख्याता** लोगों से सम्यक् आख्यात होते हैं—कहे जाते हैं। पृथिवी से उत्पन्न होनेवाले सब वनस्पति वायु व सूर्य की महिमा से ही विकसित होते हैं। **याभ्याम्**-जिन वायु व सूर्य के द्वारा **अन्तरिक्षे**-अन्तरिक्ष में **रजः**-वृष्टि का कारणभूत उदक **युपितम्**-मूर्च्छित हुआ-हुआ धारण किया जाता है २. **ययोः**-जिन वायु और सूर्य के **प्रायम्**-प्रकृष्ट गमन को **कश्चन**-कोई अन्य देव **न अन्वानशे**-अनुगमन करेन के लिए समर्थ नहीं होता **तौ**-वे वायु व सूर्यदेव **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चतम्**=पाप व कष्टों से मुक्त कर दें।

भावार्थ—वायु व सूर्य के महत्त्वपूर्ण कार्य इस पृथिवी पर दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हीं के द्वारा अन्तरिक्ष में जल मेघरूप से धारण किया जाता है। इनकी प्रकृष्ट गति अन्य सब देवों को लाँघ जाती है। ये देव हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**वायुसवितारौ** ॥ छन्दः—**अतिशक्वरी** ॥

सूर्य के व्रत में

तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ३॥

१. हे सवितः! **जनासः**-लोग **तव व्रते**-तेरे साथ सम्बद्ध तेरे परिचरणात्मक कर्म में **निविशन्ते**-नियम से प्रवृत्त होते हैं, अतः हे **चित्रभानो**-अद्भुत दीप्तिवाले सूर्य! **त्वयि उदिते** तेरे उदित होने पर लोग **प्रेरते**=प्रकृष्ट गतिवाले होते हैं। सूर्योदय हुआ और सब प्राणी अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त होते हैं। २. हे **वायो**=वायुदेव! **च**-और **सविता**-सूर्य **युवम्**-तुम दोनों **भुवनानि रक्षथः**-सब भुवनों का—भूतजात का, प्राणिमात्र का रक्षण करते हो। **तौ**-वे वायु व सूर्य दोनों **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चतम्**=पाप से छुड़ाएँ।

भावार्थ—सब प्राणी सूर्य के व्रत में स्थित होते हैं, सूर्योदय होने पर अपने अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। वायु और सूर्य हमारा रक्षण करते हैं। ये हमें पाप से बचाएँ।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**वायुसवितारौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सं ऊर्जया, सं बलेन

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम्।
सं ह्यू३र्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ४॥

१. हे **वायो**-वायुदेव! तू **च**-और **सविता** सूर्यदेव **दुष्कृतम्**-हमारे पाप को **अप इतः**-अपगत करते हो। हे वायो और सूर्य! आप दोनों **रक्षांसि**-रोगकृमियों को व राक्षसीभावों को **च** और **शिमिदाम्**-(कर्म—नि० २.१, दा लवने) कर्म का खण्डन करेनवाली आलस्यवृत्ति को **अपसेधतम्**-दूर करते हो। २. हे वायु और सूर्य! आप हमें **ऊर्जया**-अन्न-रस से जनित पुष्टि के साथ **संसृजथः** संसृष्ट करते हो और **हि** निश्चय से आप हमें **बलेन संसृजथः**-बल से युक्त करते हो। **तौ** वे आप दोनों **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतम्** मुक्त करो।

भावार्थ—वायु और सूर्य दुष्कृतों को, राक्षसीभावों को तथा आलस्य वृत्तियों को दूर करते हैं। ये हमें पुष्टि और बल प्राप्त कराके पाप से बचाते हैं।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**वायुसवितारौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

रयिं महः

रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम्।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ५॥

१. **सविता उत वायुः**-सूर्य और वायुदेव **मे**-मेरे लिए **रयिम्**-स्वास्थ्यरूप धन को तथा **पोषम्** अङ्ग-प्रत्यङ्ग की पुष्टि को **सुवताम्** उत्पन्न करें तथा **तनू**-मेरे शरीर में **सुशेवम्**-उत्तम सुख देनेवाले **दक्षम्**-बल को **आ सुवताम्** समन्तात् प्रेरित करें। २. तथा हे वायु व सवितादेवो! **अयक्ष्मतातिम्** नीरोगता को **महः** तेज को **इह** यहाँ—यज्ञशील पुरुष के शरीर में **धत्तम्**-धारण करो और **तौ**-वे वायु और सूर्य दोनों देव **नः**-हमें **अंहसः**-पाप और कष्ट से **मञ्चतम्**-मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**वायुसवितारौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सुमति व सोम-संरक्षण

प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः।
अर्वाग्वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ६॥

१. हे **सवितः वायो**-सूर्य और वायो! आप दोनों **ऊतये**-रक्षा के लिए **सुमतिम्**-कल्याणी मति (बुद्धि) को **प्र (यच्छतम्)**-दीजिए। हमारे शरीरों में **महस्वन्तम्** दीप्तिवाले **मत्सरम्** हर्ष के जनक सोम (वीर्यशक्ति) को **मादयाथः** पिलाकर आनन्द प्राप्त कराओ। २. इस **वामस्य**-वननीय, सुन्दर व सेवनीय **प्रवतः** प्रकर्ष को प्राप्त करनेवाली सोम सम्पत् को **अर्वाग्**-अस्मदभिमुख—हमारे शरीरों के अन्दर ही **नियच्छतम्**-नियमन करो और इसप्रकार **तौ**-वे वायु और सूर्य **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतम्**-छुड़ा दें।

भावार्थ—वायु और सूर्य के सम्पर्क में रहना हमारी बुद्धि को उत्तम करे तथा सोम (वीर्य) को हमारे शरीरों में ही सुरक्षित करके हमें तेजस्वी व आनन्दयुक्त बनाए। इसप्रकार हमारा जीवन निष्पाप हो।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**वायुसवितारौ** ॥ छन्दः—**पथ्याबृहती** ॥

देवयोः धामन्

उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन्।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ७॥

१. **नः** हमारी **श्रेष्ठः आशिषः** उत्तम आकांक्षाएँ **देवयोः**-वायु व सूर्यदेव के **धामन्**-तेज में **उपास्थिरन्** हमें उपस्थित करें—स्थिर करें। हम सदा सूर्य और वायु के सम्पर्क में जीवन बिताते हुए तेजस्वी बनें और हमारी इच्छाएँ शुभ बनी रहें, अर्थात् हमें इन दोनों देवों के सम्पर्क

में शरीर व मन दोनों का स्वास्थ्य प्राप्त हो। २. मैं **देवम्**-दिव्य गुणों से युक्त **सवितारम्**-सूर्य को **च**-और **वायुम्**-वायु को **स्तौमि**=स्तुत करता हूँ। इनके गुणों का ध्यान करते हुए इनके सम्पर्क में रहने का प्रयत्न करता हूँ। **तौ**=वे दोनों **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करें।

भावार्थ—हमारी सूर्य व वायु के सम्पर्क में निवास की शुभ इच्छा सदा बनी रहे। इसी से हम तेजस्वी व निष्पाप जीवनवाले बन पाएँगे।

अगले सूक्त में भी 'मृगार' ही ऋषि हैं—

२६. [षड्विंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी** ॥ छन्दः—**पुरोऽष्टिर्जगती** ॥

'सुभोजसौ, सचेतसौ' द्यावापृथिवी

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥

१. हे **द्यावापृथिवी**-द्युलोक व पृथिवीलोक! आप दोनों **सुभोजसौ**-उत्तमरूप से हमारा पालन करनेवाले हो। द्युलोक हमारे पिता हैं तो पृथिवी माता। ये हम पुत्रों को सब उत्तम भोग प्राप्त कराते हैं तथा **सचेतसौ**-ये चेतना से युक्त हैं, अर्थात् हमें चेतना प्राप्त करानेवाले हैं। मैं **वाम् मन्वे**-आप दोनों के माहात्म्य का मनन करता हूँ। **ये**-जो आप दोनों **अमिता योजनानि**-अनन्त योजनों तक **अप्रथेताम्**-विस्तृत करते हो। २. **हि**=निश्चय से ये द्यावापृथिवी **वसूनाम्**-निवास के लिए आवश्यक सब तत्त्वों के **प्रतिष्ठे अभवतम्**=आधार हों। **ते**-वे आप दोनों **नः**-हमें **अहंसः**=पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करो।

भावार्थ—द्युलोक व पृथिवीलोक हमारे माता पिता के समान हैं। ये हमारा पालन करते हैं और हमारी चेतना को ठीक रखते हैं। इनमें सब वसुओं की स्थिति है। ये हमें पाप से बचाएँ।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'प्रवृद्धे-सुभगे' द्यावापृथिवी

प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥

हे **द्यावापृथिवी**=द्युलोक व पृथिवीलोक! आप **हि**=निश्चय से **वसूनाम्**=निवास के लिए आवश्यक तत्त्वों के **प्रतिष्ठे अभवतम्**-आधार हो। आप दोनों **प्रवृद्धे**-बड़े विशाल, **सुभगे**=उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त **देवी**-प्रकाश आदि दिव्य गुणों से युक्त **उरूची**=बड़े विस्तारवाले **भवतम्**-हो। आप दोनों **मे**=मेरे लिए **स्योने भवतम्**-सुख देनेवाले होओ और **ते**-आप दोनों **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चतम्**=पाप से मुक्त करो।

भावार्थ—ये द्यावापृथिवी सब वसुओं के आधार हैं। ये प्रकाश व सौभाग्य प्राप्त करानेवाले हैं। ये विशाल द्यावापृथिवी हमें पाप से बचाएँ।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'असन्तापे सुतपसौ' द्यावापृथिवी

असन्तापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

१. **असन्तापे**=सब प्राणियों के सन्ताप को हरनेवाले, सन्ताप से रहित **सुतपसौ**-खूब दीप्त,

तेजस्वी **उर्वी**-विस्तीर्ण **गम्भीरे** गाम्भीर्य से युक्त, अर्थात् 'ये ऐसे हैं' इसप्रकार जिनका पूर्णरूप से ज्ञान होना सम्भव नहीं **कविभिः** क्रान्तदर्शी ज्ञानियों से **नमस्ये** नमस्कार के योग्य इन द्यावापृथिवी को **अहम्**-मैं **हुवे**-रक्षा के लिए प्रार्थित करता हूँ। २. ये **द्यावापृथिवी** द्युलोक व पृथिवीलोक **मे**-मेरे लिए **स्योने**-सुख देनेवाले **भवतम्** हों और **ते** वे दोनों **नः**-हमें **अंहसः** पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करें।

भावार्थ—ये द्यावापृथिवी सन्ताप से रहित, दीप्त, विशाल व रहस्यमय हैं, ये हमारे लिए सुखद हों और हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अमृतं हवींषि

ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्या३न्।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ४ ॥

१. **ये**-जो द्यावापृथिवी **अमृतम्** अमरण हेतुभूत वृष्टिजल (अमृत) का **बिभृथः** धारण करते हैं और **ये हवींषि** जो द्यावापृथिवी त्यागपूर्वक अदन के योग्य सात्त्विक अन्नों को धारण करते हैं **ये** जो द्यावापृथिवी **स्रोत्याः**=स्रोतस्विनी नदियों को **बिभृथः** धारण करते हैं और **ये मनुष्यान्** जो मनुष्यों को धारण करते हैं। २. वे **द्यावापृथिवी**-द्यावापृथिवी **मे** मेरे लिए **स्योने भवतम्**-सुखद हों, **ते**-वे दोनों **नः**=हमें **अंहसः** पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करें।

भावार्थ—द्युलोक अमृत वृष्टिजल को धारण करता है तो पृथिवी पवित्र अन्नों व स्रोतस्विनी नदियों को धारण करती हुई मनुष्यों का धारण करती है। ये दोनों सुख देते हुए हमें पाप से बचाएँ।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उस्त्रियाः+वनस्पतीन् (गोदुग्ध, फल व वानस्पतिक भोजन)

ये उस्त्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन्ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥

१. हे **द्यावापृथिवी**-द्युलोक व पृथिवीलोको! **ये**-जो आप **उस्त्रियाः** गौओं को **बिभृथः**-धारण करते हो, **ये वनस्पतीन्**-जो आप वनस्पतियों को धारण करते हो, **ययोःवाम्** जिन आप दोनों के **अन्तः**-अन्दर **विश्वा भुवनानि** सब प्राणियों की स्थिति है, २. वे द्यावापृथिवी **मे** मेरे लिए **स्योने भवतम्**-सुखद हों और **ते**-वे **नः** हमें **अंहसः मुञ्चतम्**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—माता पिता के स्थानापन्न ये द्यावापृथिवी हमारे खान पान के लिए गोदुग्ध तथा विविध वनस्पतियों को प्राप्त कराते हैं। इसप्रकार ये सब प्राणियों का धारण करते हैं। ये हमारे लिए सुख देनेवाले हों और हमें पाप से बचाएँ।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अन्न व जल

ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

१. हे **द्यावापृथिवी**-द्युलोक व पृथिवीलोको! **ये**-जो आप **कीलालेन** (कीलालम् अन्नम् नि० २.७) अन्न के द्वारा **तर्पयथः** प्राणियों को तृप्त करते हो, **ये** जो आप **घृतेन** मलों के क्षरण

करनेवाले व स्वास्थ्य की दीप्ति को प्राप्त करानेवाले 'जल' से प्राणियों को तृप्त करते हो, **याभ्याम् ऋते** जिन अन्न व जल को प्राप्त करानेवाले द्यावापृथिवी के बिना **किं चन न शक्नुवन्ति**-कुछ भी कार्य नहीं कर पाते, २. वे द्यावापृथिवी **मे**-मेरे लिए **स्योने** सुखद **भवतम्**-हों, **ते** वे **नः** हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करें।

भावार्थ—ये द्यावापृथिवी हमारे पोषण के लिए 'अन्न व जल' प्राप्त कराके हमें सब कार्यों को करने के लिए सशक्त बनाते हैं। ये द्यावापृथिवी हमें सुख दें और पाप-मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**द्यावापृथिवी** ॥ छन्दः—**शाक्वरगर्भामध्येज्योतिस्त्रिष्टुप्** ॥

पौरुषेयात् न दैवात्

यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात्।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः॥ ७॥

१. **यत्**-जो **इदम्**-यह पाप तथा पाप का फल दुःख **मा**=मुझे **अभिशोचति**=सर्वतः शोकसन्तप्त करता है, **येनयेन वा**=अथवा जिस-जिस पाप से **कृतम्**-उत्पन्न हुआ हुआ दुःख मुझे सन्तप्त करता है, यह सब दुःख **पौरुषेयात्**-पुरुष से की गई ग़लती का ही परिणाम है, **न दैवात्**=द्यावापृथिवी आदि देवों से वह कष्ट प्राप्त नहीं होता। द्यावापृथिवी तो हमारे लिए सब उत्तम वस्तुओं को ही प्राप्त कराते हैं। मनुष्य उनका अनुचित प्रयोग करता है और कष्टभोगी होता है। द्यावापृथिवी ने 'गौ' दूध के लिए प्राप्त कराई है न कि उसका मांस खाने के लिए। मनुष्य गोदुग्ध का प्रयोग न करके गोमांस का सेवने करने लगता है और परिणामतः नाना रोगों का शिकार होता है। २. मैं **द्यावापृथिवी स्तौमि**=इन द्यावापृथिवी का स्तवन करता हूँ और **नाथितः**=कष्टों से सन्तप्त होने पर **जोहवीमि**-इन्हें ही पुकारता हूँ। **ते**-वे **द्यावापृथिवी नः**-हमें **अंहसः मुञ्चतम्**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—कष्ट हमें अपने पापों के कारण होते हैं। द्यावापृथिवी आदि हमें कष्ट नहीं पहुँचाते। इनके द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का ठीक प्रयोग करते हुए हम सुखी हों।

अगला सूक्त भी 'मृगार' ऋषि का ही है—

२७. [सप्तविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्राणसाधना से बल का रक्षण व लक्ष्य-प्राप्ति

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १॥

१. **मरुताम् मन्वे**-शरीर में उनचास भागों में विभक्त होकर विविध कार्यों को करते हुए इन मरुतों (प्राणों) का मैं मनन करता हूँ—इनके महत्त्व को समझने के लिए यत्नशील होता हूँ। वे मरुत् **मे**-मेरे लिए **अधिब्रुवन्तु**='हमारा यह अनुगृह्य है'—इसप्रकार कहें, अर्थात् मैं सदा इन प्राणों का अनुकम्पनीय बना रहूँ। ये मरुत् **वाजसाते**-इस जीवन संग्राम में मेरे **इमम्**-इस **वाजम्**=बल को **प्र अवन्तु**-प्रकर्षेण रक्षित करें। २. **सुयमान्**-सम्यक् नियन्त्रित **आशून् इव**-मार्ग का शीघ्रता से व्यापन करनेवाले घोड़ों की भाँति मैं इन प्राणों को अपने **ऊतये**=रक्षण के लिए **अह्वे** पुकारता हूँ। **ते**-वे मरुत् **नः**-हमें **अंहसः**=पाप से **मुञ्चन्तु**-मुक्त करें।

भावार्थ—हम प्राणों के महत्त्व को समझें। ये प्राण ही हमारे बल का रक्षण करते हैं। सुनियन्त्रित अश्वों के समान लक्ष्य-स्थान पर पहुँचाकर ये हमारा कल्याण करते है। ये हमें पाप-

मुक्त करें। प्राणसाधना दोषदहन करती ही है।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अक्षित उत्स के विस्तारक' मरुत्

उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ २॥

१. आधिदैविक जगत् में 'मरुत्' वायुओं का नाम है। **ये** जो मरुत् **सदा** सदा **उत्सम्** वृष्टिधारायुक्त मेघ को **अक्षितम्** क्षयरहित, अर्थात् सदा प्रवृद्ध **व्यचन्ति**-अन्तरिक्ष में विस्तृत करते हैं और इनके द्वारा **ओषधीषु**-ओषधियों वनस्पतियों में **ये**-जो **रसम्**-वृष्टिजलरूप रस को **आसिञ्चन्ति** समन्तात् सिक्त करते हैं। २. उन **पृश्निमातॄन्** अन्तरिक्ष में होनेवाली माध्यमिका वाक् (मेघगर्जना) के बनानेवाले **मरुतः**-इन मरुतों को मैं **पुरः दधे** सबमे प्रथम स्थापित करता हूँ। इनका मेरे जीवन में सर्वप्रथम स्थान है। इन मरुतों के अभाव में वृष्टि न होने पर सब प्राणियों का जीवन समाप्त ही हो जाए। **ते**-वे मरुत् **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चन्तु** छुड़ाएँ। अन्न के खूब होने पर किसी के भूखे न रहने से पापवृत्ति कम हो ही जाती है।

भावार्थ—मरुत् अन्तरिक्ष में मेघों का विस्तार करते हैं। उनके द्वारा ये ओषधियों में रस का सेचन करते हैं। इसप्रकार इन मरुतों का हमारे जीवन में प्रमुख स्थान है। ये हमें खूब अन्न प्राप्त कराके पाप-मुक्त जीवनवाला बनाएँ।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'शग्माः स्योनाः' मरुतः

पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ३॥

१. मरुत् प्राण हैं। इनकी साधना से बुद्धि की तीव्रता व ज्ञान-दीप्ति प्राप्त होती हैं, इसलिए इन्हें यहाँ 'कवयः' कहा गया है। हे **कवयः मरुतः**-क्रान्तदर्शित्व के साधनभूत प्राणो ! **ये**-जो आप **धेनूनां पयः**-गौओं के दूध को तथा **ओषधीनां रसः**-ओषधियों के रस को और परिणामतः **अर्वताम्**-इन्द्रिय अश्वों के **जवम्**-वेग को, स्फूर्ति से कार्य करने की शक्ति को **इन्वथ** अपने सब अंगों में व्याप्त करते हो। २. वे मरुत् **नः**-हमारे लिए **शग्माः** शक्ति देनेवाले तथा **स्योना** सुख प्राप्त करानेवाले **भवन्तु**-हों। इसप्रकार **ते** वे **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चन्तु** मुक्त करें।

भावार्थ—हम प्राणसाधना करते हुए गोदुग्ध व ओषधियों का ही सेवन करें। इससे हमारे इन्द्रियाश्व स्फूर्तियुक्त होंगे। ये प्राण हमें शक्ति व सुख प्राप्त कराएँ। इसप्रकार ये हमें पापमुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'वृष्टिकारक' मरुत्

अपः समुद्राद्दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ४॥

१. **ये मरुतः**-जो वृष्टि जलों को लानेवाले वायु **समुद्रात्** समुद्र से **अपः**-जलों को **दिवम् उद्वहन्ति**-मेघों द्वारा अन्तरिक्ष के प्रति प्राप्त कराते हैं और फिर **ये**-जो मरुत् **दिवः**-अन्तरिक्ष से **पृथिवीम् अभि**-पृथिवी का लक्ष्य करके उन जलों को **सृजन्ति**-विसृष्ट करते हैं। २. **अद्भिः**-इन जलों के द्वारा **ईशानाः** हमारे जीवनों के ईश्वर होते हुए **चरन्ति**-गति करते हैं, **ते**-वे

मरुत् **नः**=हमें **अहंसः**-पाप से **मुञ्चन्तु**-मुक्त करें।

भावार्थ—मरुत् ही समुद्र से जलों को अन्तरिक्ष में ले जाते हैं। ये ही वहाँ से उस जल को पुनः पृथिवी पर विसृष्ट करते हैं। इसप्रकार जलों के साथ विचरते हुए ये मरुत् हमारे जीवन के ईशान होते हैं। ये हमें प्रभूत अन्न आदि प्राप्त कराके कष्टों व पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'अन्न में मेदस्तत्त्व के जनक' मरुत्

ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥

१. **ये**-जो मरुत् **कीलालेन**-अन्न से **तर्पयन्ति**=हमें प्रीणित करते हैं, **ये**=जो **घृतने**-मलों का क्षरण करनेवाले व स्वास्थ्य की दीप्ति देनेवाले जल से हमें प्रीणित करते हैं, **ये वा** अथवा जो मरुत् **वयः**-अन्न को **मेदसा**-मेदस्तत्त्व (Fat) से **संसृजन्ति** संसृष्ट करते हैं, २. **ये मरुतः**-जो मरुत् **अद्भिः**-जलों के द्वारा **ईशानाः**-हमारे जीवनों के ईशान होते हुए **वर्षयन्ति**=जलों की वृष्टि करते हैं, **ते** वे मरुत् **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**=पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—मरुत् ही हमें अन्न व जल प्राप्त कराते हैं। ये ही अन्न में मेदस्तत्त्व को पैदा करते हैं। ये वृष्टि करनेवाले मरुत् हमें प्रभूत अन्न आदि प्राप्त कराके पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मारुतेन दैव्येन

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

१. प्राणसाधना करते हुए यदि हठपूर्वक प्राणायाम करने से शरीर में कोई दोष हो जाए तो यह 'मारुत' अपराध कहलाता है। उससे उत्पन्न कष्टों को भी मरुतों ने ही दूर करना है। **इदम्**-यह अनुभूयमान मेरा दुःख हे **मरुतः**=मरुतो ! **मारुतेन**-प्राणों के विषय में किये गये अपराध से **इत्**=ही **ईदृक्**-ऐसा कष्ट **यदि**-यदि **आर**-प्राप्त हुआ है अथवा हे **देवाः**-वायुरूप देवो! **यदि**-यदि यह कष्ट **दैव्येन**=वायु आदि देवों के विषय में किय गये अग्निहोत्र आदि यज्ञों के न करनेरूप पाप से हमें प्राप्त हुआ है तो **यूयम्**=हे मरुतो! आप **तस्य**=उस कष्ट के **निष्कृतेः**-बाहर निकालने व परिहार के लिए **ईशिध्वे**=समर्थ हो। हे मरुतो! आप इन कष्टों का निराकरण करके **वसवः**-हमें उत्तमता से बसानेवाले हो। २. **ते**-वे मरुत् (प्राण) **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चन्तु**=मुक्त करें। '**प्राणायामैर्दहेद् दोषान्**'—प्राणसाधना से दोष दूर होते ही हैं।

भावार्थ—यदि हठपूर्वक प्राणसाधना से कोई कष्ट प्राप्त हुआ है अथवा अग्निहोत्रादि न करने से वृष्टिवाहक मरुतों का कार्य ठीक न होने से कष्ट हुआ है, तो मरुत् ही उन कष्टों को दूर कर हमें पाप-मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उग्रं शर्धः

तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम्।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ७ ॥

१. **मारुतम्** प्राणों का **अनीकम्**-बल **तिग्मम्**-बड़ा तीव्र है। यह **सहस्वत् विदितम्** शत्रुओं का मर्षण करनेवाला माना गया है। प्राणसाधना से शरीर में रोगकृमिरूप सब शत्रुओं का नाश होता है तो मानसक्षेत्र में वासनारूप शत्रुओं का मर्षण होता है। यह **शर्धः** प्राणों का बल **पृतनासु उग्रम्** संग्रामों में बड़ा उद्‌गूर्ण—शत्रुओं का नाशक है। २. मैं इन **मरुतः**-प्राणों की **स्तौमि** स्तुति करता हूँ, **नाथितः** कष्टों से सन्तप्त हुआ हुआ **जोहवीमि** इन प्राणों को ही पुकारता हूँ। **ते** वे प्राण **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चन्तु**=मुक्त करें।

भावार्थ—प्राणों का बल बड़ा प्रचण्ड है। यह रोगकृमियों व वासनाओं को नष्ट करके हमें व्याधि व आधि के कष्टों से बचाता है। हम इन प्राणों का स्तवन करते हैं। ये हमें पाप से मुक्त करें।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'मृगार' है—

२८. [अष्टाविंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**भवाशर्वौ** ॥ छन्दः—**अतिजागतगर्भाभुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

भव+शर्व

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद्विरोचते।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ १॥

१. 'भवति अस्मात्' इस व्युत्पत्ति से भव का अर्थ है—'सर्वजगत् का उत्पादक प्रभु'। 'शृणाति हिनस्ति सर्वम्' इस व्युत्पत्ति से शर्व का अर्थ है 'प्रलयकर्ता रुद्र'। **भवाशर्वौ मन्वे** मैं उस उत्पादक और प्रलयकर्त्ता प्रभु का मनन करता हूँ। हे भव और शर्व! **वाम्** आप **तस्य वित्तम्** उस मुझसे किये जाते हुए मनन को जनिए। मैं आपका दृग्गोचर बना रहूँ। आपकी कृपादृष्टि मुझे सदा प्राप्त हो। **ययोः वाम्** जिन आपके **प्रदिशि** प्रदेशन—प्रशासन में **यत् इदम्** जो यह सम्पूर्ण जगत् है, वह **विरोचते**-प्रकाशित होता है। **यौ** जो आप **अस्य द्विपदः ईशाथे** इस पादद्वयोपेत (दो पाँववाले) प्राणिजगत् के ईश हैं, **यौ** जो आप **चतुष्पदः**-पादचुष्टयोपेत गवादि के ईश हैं, **तौ** वे आप **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतम्** मुक्त करें।

भावार्थ—हम उत्पादक व प्रलयकर्त्ता प्रभु का स्मरण करें। सब जगत् प्रभु के शासन में ही दीप्त हो रहा है। प्रभु ही द्विपाद् व चतुष्पाद् के ईश हैं। वे प्रभु हमें पाप मुक्त करें। प्रभु स्मरण निष्पाप बनाता ही है।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**भवाशर्वौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

इषुभृताम् असिष्ठौ

ययोरभ्यध्व उत यद्दूरे चिद्यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ २॥

१. **अभ्यध्वे**-(अभि अध्वनः-अभ्यध्वः समीपदेशे) जो समीप देश में है **उत** और **यत्** जो **दूरे चित्**-बहुत ही दूर है, वह सब **ययोः**-जिन भव और शर्व के प्रशासन में है। **यौ**-जो भव और शर्व हैं वे **इषुभृताम्** अस्त्रधारण करनेवालों में **असिष्ठौ विदितौ**-सर्वोत्तम क्षेप्ता माने गये हैं। इन भव और शर्व के समान शत्रुओं पर वज्रप्रहार कौन कर सकता है? 'भूकम्प व ज्वालामुखी का फटना' आदि इन भव और शर्व के अस्त्र हैं—ये क्षणों में ही विनाश कर देते हैं। २. **यौ** जो भव और शर्व **अस्य द्विपदः**-इन दो पाँववालों के **ईशाथे** ईश हैं, **यौ**-जो **चतुष्पदः**-चार पावोंवालों के ईश हैं **तौ** वे **नः**-हमें **अंहसः** पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करें।

भावार्थ—भव और शर्व दूर से दूर और समीप से समीप सर्वत्र शासकरूप से विद्यमान हैं। ये क्षण में ही वज्रप्रहार द्वारा विनाश कर सकते हैं। वे हमें पापमुक्त करें। इनका चिन्तन हमें पाप प्रवणता से बचाए।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**भवाशर्वौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सहस्राक्षा वृत्रहणा' भवाशर्वौ

सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ३॥

१. ये भव और शर्व **सहस्राक्षौ**-अनन्त आँखोंवाले हैं, **वृत्रहणा** वासनारूप वृत्र के विनष्ट करनेवाले हैं, **अहम्** मैं इन्हें **हुवे**-पकारता हूँ। **दूरेगव्यूती**-(दूरेगव्यतिः गोसंचारभूमिः ययोः) इन्द्रियरूप गौओं के संचारदेश से ये दूर हैं। इन्द्रियों की पहुँच इन तक नहीं है। ये अतीन्द्रिय हैं। मैं इन **उग्रौ**=उद्गूर्ण बलवाले भव और शर्व को **स्तुवन्**=स्तुत करता हुआ **एमि**-जीवन-यात्रा में चलता हूँ। २. **यौ**-जो भव और शर्व **अस्य**-इस **द्विपदः**-द्विपाद् जगत् के **ईशाथे**-ईश हैं और **यौ**-जो **चतुष्पदः**-चतुष्पाद् जगत् के ईश हैं, **तौ**-वे **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चतम्**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—भव और शर्व अनन्त आँखोंवाले हैं, हमारी वासनाओं को विनष्ट करनेवाले हैं, इन्द्रियातीत व उग्र हैं। मैं इनका स्तवन करता हूँ। ये मुझे पाप से मुक्त करते हैं।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**भवाशर्वौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मानवजन्म व अभिदीप्ति की प्राप्ति

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ४॥

१. हे भव और शर्व! **यौ**-जो आप **अग्रे**=सृष्टि के प्रारम्भ में **बहु साकम्**-(बहुनां साकं सहभावो यस्मिन्) बहुत-से प्राणियों के सहभाव (जनसंघ) को **आरेभाथे**-आरम्भ—उत्पन्न करते हो **च**-और **जनेषु**-उन उत्पन्न प्राणियों में **अभिभाम्**-अभिदीप्ति को **इत्**-निश्चय से आप ही **प्र अस्राष्ट्रम्**-प्रकर्षेण उत्पन्न करते हो। २. **यौ**-जो आप **अस्य द्विपदः**-इस द्विपाद् जगत् के **ईशाथे**=ईश हो, **यौ**-जो **चतुष्पदः**-चतुष्पाद् जगत् के ईश हो **तौ**=वे दोनों **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु ही सृष्टि के आरम्भ में जनसमूह को जन्म देते हैं और उनमें अभिदीप्ति स्थापित करते हैं। वे प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**भवाशर्वौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु का अप्रतिकार्य वध

ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ५॥

१. **ययोः**-जिन भव और शर्व के **वधात्**=हनन-साधन आयुध से **न देवेषु अन्तः कश्चन**-न तो सूर्य-चन्द्र, तारे आदि देवों में कोई **उत**-और न ही **मानुषेषु**-मनुष्यों में कोई **अपपद्यते**=भागकर जा सकता है, अर्थात् जब प्रभु प्रलय करते हैं तब कोई बच नहीं सकता। प्रभु सूर्य को समाप्त करेंगे तो सूर्य बच नहीं सकता। इसीप्रकार कोई मनुष्य भी प्रतिरोध करनेवाला नहीं होता। २. **यौ**-जो भव और शर्व **अस्य द्विपदः**-इस द्विपाद् जगत् के **ईशाथे**-ईश हैं, **यौ चतुष्पदः**=जो चतुष्पाद् जगत् के ईश हैं, **तौ**-वे **नः**-हमें **अंहसः**=पाप से **मुञ्चतम्**-मुक्त करें। प्रभु के रुद्ररूप

का स्मरण हमें पाप-भीत करता ही है।

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—भवाशर्वौ ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

यातुधान-हिंसन

यः कृत्याकृन्मूलकृद्यातुधानो नि तस्मिन्धत्तं वज्रमुग्रौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ६॥

१. **यः**-जो **कृत्याकृत्**=(कृती छेदने) छेदन भेदन करनेवाला है और जो **यातुधनः**-पीड़ा पहुँचानेवाला राक्षस **मूलकृत्**-वंशाभिवृद्धि के मूल सन्तानों को ही नष्ट करनेवाला है, **तस्मिन्** उस यातुधान पर हे **उग्रौ** तेजस्वी भव और शर्व! आप **वज्रं निधत्ताम्**-वर्जक आयुध को फेंकिए। इस वज्र द्वारा उसका वध करके उसे समाप्त कीजिए। २. **यौ** जो आप **अस्य द्विपदः** इस द्विपाद प्राणिजगत् के **ईशाथे** ईश हैं और **यौ** जो **चतुष्पदः** चतुष्पाद प्राणिजगत् के ईश हैं, **तौ** वे **नः**=हमें **अहंसः**-पाप से **मुञ्चतम्** मुक्त करें।

भावार्थ—भव और शर्व हिंसक शत्रुओं को नष्ट करें। हमें भी पाप से मुक्त करें।

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—भवाशर्वौ ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

'किमीदी' का संहार

अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ७॥

१. हे **उग्रौ** उद्गूर्ण बलवाले, तेजस्वी भव और शर्व! आप **पृतनासु**-संग्रामों में **नः** हमें **अधिब्रूतम्** आधिक्येन उपदेश कीजिए। काम आदि शत्रुओं से संग्राम होने पर 'हमें क्या करना चाहिए' इसका ज्ञान दीजिए। **यः** जो **किमीदी**-(किम् इदानीम् उत्पन्नम्, किम् इदानीम् उत्पन्नम् इति रन्ध्रान्वेषी) पर छिद्रान्वेषी स्वार्थी पुरुष है, उसे **वज्रेण** वज्र से **संसृजतम्** संसृष्ट करो—वज्र मे समाप्त कर दीजिए। २. मैं **भवाशर्वौ**-उस उत्पादक और पालनकर्त्ता प्रभु का **स्तौमि**-स्तवन करता हूँ। **नाथितः**-वासनाओं से सन्तप्त किया गया मैं उसे **जोहवीमि**-पुकारता हूँ। **तौ** वे प्रभु **नः**-हमें **अहंसः मुञ्चतम्**=पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु संग्रामों में शत्रु विजय के लिए हमें उपदेश करें, पर छिद्रान्वेषी पुरुष को नष्ट करें। ये प्रभु हमें पाप-मुक्त करें।

अगले सूक्त में भी ऋषि 'मृगार' ही है—

२९. [एकोनत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—मृगारः ॥ देवता—मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

'ऋतवृधौ सचेतसौ' मित्रावरुणौ

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ १॥

१. 'मित्र' शब्द स्नेह का सूचक है, 'वरुण' द्वेष-निवारण व निर्द्वेषता का प्रतीक है। हे **मित्रावरुणौ** स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! मैं **वां मन्वे**-आपका मनन करता हूँ। आप **ऋतावृधौ** मेरे जीवन में ऋत (ठीक, यज्ञ) का वर्धन करनेवाले हो तथा **सचेतसौ**-हमारे जीवनों को चेतना (ज्ञान) से युक्त करते हो। आप वे हैं **यौ**-जो **द्रुह्वणः नुदेथे** द्रोह करनेवालों को हमसे दूर करते हो। २. और **सत्यावानम्**-सत्ययुक्त पुरुष को **भरेषु**-संग्रामों में **प्र अवथः**-प्रकर्षेण रक्षित करते

हो। **तौ**=वे आप—मित्र और वरुण **नः**=हमें **अंहसः**=पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करो।

भावार्थ—हम स्नेह व निर्द्वेषता का पाठ पढ़ें। इससे हममें ऋत व चेतना का वर्धन होगा और द्रोह की भावना समाप्त होकर हमारा जीवन सत्ययुक्त होगा।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'नचृक्षसौ' मित्रावरुणौ

सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ २॥

१. **सचेतसौ**=हमारे जीवनों को चेतना से युक्त करनेवाले हे मित्र और वरुण! **यौ**=जो आप **द्रुह्वणः**=द्रोह करनेवालों को **नुदेथे**=हमसे दूर करते हो, वे आप **सत्यावानम्**=सत्ययुक्त पुरुष को **भरेषु**=संग्रामों में **प्र+अवथः**=प्रकर्षेण रक्षित करते हो। २. **यौ**=जो आप दोनों **बभ्रुणा**=धारणात्मक कर्मों को करनेवाले पुरुष से किये गये **सुतम्**=यज्ञ को **गच्छथः**=जाते हो **तौ**=वे **नृचक्षसौ**=(नृणां द्रष्टारौ) मनुष्यों के देखनेवाले—उनके हित का ध्यान करनेवाले आप **नः**=हमें **अंहसः**=पाप से **मुञ्चतम्**=मुक्त करो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता का उपासक बभ्रु=धारणकर्त्ता बनता है। यह धारणात्मक कर्मों को ही करता है। इसका जीवन द्रोहरहित व सत्य से युक्त होता है। यह सभी का ध्यान करता है। ये स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें पाप-मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अङ्गिरा से वसिष्ठ तक

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम्।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ३॥

१. **मित्रावरुण** स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **यौ**=जो आप **अङ्गिरसम् अवथः**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले को रक्षित करते हैं, **यौ**=जो **अग-स्तिम्**=पाप का संघात करनेवाले को रक्षित करते हैं (स्त्यै संघाते), जो आप **जमदग्निम्**=जीमनेवाली है जाठराग्नि जिसकी, अर्थात् अतिभोजन आदि दोषों के कारण जिसकी जाठराग्नि मन्द नहीं हो जाती तथा **अत्रिम्**='काम क्रोध-लोभ'—इन तीनों से रहित को आप रक्षित करते हो। २. **यौ**=जो आप **कश्यपम्**=(कश्यप-पश्यकः) तत्त्वद्रष्टा ज्ञानी का **अवथः**=रक्षण करते हो, **यौ**=जो आप **वसिष्ठम्**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले को रक्षित करते हो **तौ**=वे आप **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चतम्**=पाप से मुक्त करो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें 'अङ्गिराः, अगस्ति, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप व वसिष्ठ बनाते हैं। ये हमें पाप से मुक्त करते हैं।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

श्यावाश्व से सप्तवध्रि तक

यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम्।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ४॥

१. **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **यौ**=जो आप **श्यावाश्वम् अवथः**=(श्यै गतौ) गतिशील इन्द्रियाश्वोंवाले—क्रियाशील पुरुष का रक्षण करते हैं और **वध्र्यश्वम्**=व्रतों की रज्जु से इन्द्रियाश्वों को बाँधनेवाले—जितेन्द्रिय पुरुष का रक्षण करते हो (वध्री=रस्सी), **पुरुमीढम्**=शक्ति

का अपने में खूब ही सेचन करनेवाले का (मिह सेचने) रक्षण करते हो, और **अत्रिम्**-'काम क्रोध लोभ' से अतीत का रक्षण करते हो, **यौ**-जो आप **विमदम्**-मदशून्य—गर्वरहित—गौरवान्वित पुरुष का **अवथः** रक्षण करते हो, **सप्तवध्रिम्**-सात रज्जुओंवाले—अपने-आपको सात मर्यादाओं के बन्धनों में बाँधनेवाले को रक्षित करते हो (सप्त मर्यादः कवयस्ततक्षुः०), **तौ**-वे आप मित्र और वरुण **नः** हमें **अंहसः** पाप से **मुञ्चतम्** मुक्त करो।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें श्यावाश्व, पुरुमीढ, अत्रि, विमद व सप्तवध्रि' बनाते हैं। वे हमें पाप-मुक्त करते हैं।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

भरद्वाज से कण्व तक

यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ५ ॥

१. **वरुण मित्र** निर्द्वेषता व स्नेह के भावो! **यौ** जो आप **भरद्वाजम् अवथः** अपने में शक्ति का भरण करनेवाले को रक्षित करते हो, **यौ**-जो आप **गविष्ठिरम्**-वेदात्मिका वाणी में स्थिर पुरुष का रक्षण करते हो—ज्ञानी पुरुष का रक्षण करते हो, **विश्वामित्रम्**-सबके प्रति स्नेह करनेवाले का रक्षण करते हो और **कुत्सम्**-वासनाओं का संहार करनेवाले का रक्षण करते हो। २. **यौ**-जो आप **कक्षीवन्तम्**-प्रशस्त कटिबन्धन—रज्जुवाले—कमर कसे हुए दृढ़ निश्चयी पुरुष का **अवथः**-रक्षण करते हो **उत** और **कण्वम्** कण-कण करके ज्ञान का सञ्चय करनेवाले मेधावी पुरुष का **प्र** प्रकर्षेण रक्षण करते हो, **तौ** वे आप **नः** हमें **अंहसः**-पाप से **मुञ्चतम्**-मुक्त करें।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें 'भरद्वाज, गविष्ठिर, विश्वामित्र, कुत्स, कक्षीवान व कण्व' बनाते हैं। वे हमें पाप से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'मेधातिथि से मुद्गल' तक

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६ ॥

१. हे **मित्रावरुणौ**-स्नेह व निर्द्वेषता के भावो! **यौ** जो आप **मेधातिथिम्**-(मेधां अतति) निरन्तर बुद्धि की ओर चलनेवाले को **अवथः**-रक्षित करते हो, अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता को अपनानेवाला बुद्धिमान् बनता है। **यौ** जो आप **त्रिकशोकम्** 'शरीर, मन व बुद्धि' तीनों को दीप्त करनेवाले को रक्षित करते हो, **यौ**-जो आप **उशनाम्**-(वष्टि)प्रभु-प्राप्ति की प्रबल कामनावाले पुरुष को रक्षित करते हो, और **काव्यम्** (कौति) प्रभु नामों का उच्चारण करनेवाले ज्ञानी भक्त का रक्षण करते हो। २. **यौ**-जो आप **गोतमम्**-अतिशयेन प्रशस्त इन्द्रियोंवाले का **अवथः** रक्षण करते हो **उत**-और **मुद्गलम्**-(मुदं गलति Drops) सांसारिक मौजों को अपने जीवन से पृथक् कर देता है, उस मुद्गल को आप **प्र**-प्रकर्षेण रक्षित करते हो, **तौ**-वे आप **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चतम्**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता के भाव हमें 'मेधातिथि, त्रिशोक, उशना, काव्य, गोतम व मुद्गल' बनाते हैं। ये हमें पापों से मुक्त करें।

ऋषिः—**मृगारः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**शक्वरीगर्भाऽतिजगती** ॥

मित्रावरुण का 'सत्यवर्मा ऋजुरश्मि' रथ

ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन्।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ ७॥

१. **ययोः**-जिन मित्र और वरुण का—स्नेह व निर्द्वेषता के दिव्य भावों का **रथः**=रथ **सत्यवर्त्मा**=सत्य के मार्गवाला है और **ऋजुरश्मिः**=अकुटिल प्रग्रहों (लगामों)-वाला है। यह रथ **मिथुया चरन्तम्**=असत्य व्यवहारवाले को **दूषयन्**-दूषित करने के हेतु से **अभियाति**-उसकी ओर आता है—उसपर आक्रमण करता है, अर्थात् स्नेह व निर्द्वेषता का व्रती सत्य व ऋजुता (सरलता) को अपनाता है। यह मिथ्याव्यवहार को आक्रान्त करके दूषित करता है। मैं इन **मित्रावरुणौ**=स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को **स्तौमि**-स्तुत करता हूँ—इनके महत्त्व का गायन करता हूँ। **नाथितः**=वासनाओं से सन्तप्त किये जाने पर **जोहवीमि**=मैं इन्हें पुकारता हूँ। **तौ**=वे **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चतम्**=पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—स्नेह व निर्द्वेषता का व्रती सत्य व सरलता को अपनाता हुआ मिथ्या व्यवहार को अपने से दूर करता है। स्नेह व निर्द्वेषता का स्तवन करता हुआ यह पापों से मुक्त रहता है।

विशेष—पापमुक्त होकर अपने अन्दर आत्मतत्त्व को देखनेवाला यह व्यक्ति 'अथर्वा' (अथ अर्वाङ्) बनता है। अगले सूक्त का यही ऋषि है। यह प्रभु से इसप्रकार उपदिष्ट होता है—

३०. [त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

देवों के साथ महादेव

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥ १॥

१. प्रभु कहते हैं कि **अहम्**-मैं **रुद्रेभिः वसुभिः चरामि**=रुद्रों व वसुओं के साथ गति करता हूँ। **अहम्**=मैं ही **आदित्यैः**=आदित्यों के साथ **उत**=और **विश्वदेवैः**-सब देवों के साथ गति करता हूँ। जब कोई उपासक मुझे प्राप्त करता है तो इन सब देवों को भी प्राप्त करता है अथवा जो इन देवों को प्राप्त करने का यत्न करता है, वही मुझे प्राप्त करता है। देवों को—दिव्य भावों को प्राप्त करनेवाला ही तो महादेव की प्राप्ति का अधिकारी होता है। २. **अहम्**=मैं **मित्रावरुण उभा**=स्नेह व निर्द्वेषता की भावनाओं को—दोनों वृत्तियों को **बिभर्मि**-धारण करता हूँ। प्रभु का उपासक किसी के प्रति द्वेषवाला नहीं होता, वह सबके प्रति स्नेहवाला होता है। **अहम्**=मैं **इन्द्राग्नी**-इन्द्र और अग्नि का धारण करता हूँ। प्रभु का उपासक **इन्द्र**=जितेन्द्रिय होता है तथा **अग्नि**=प्रगतिशील होता है। यह शक्ति (इन्द्र) व प्रकाश (अग्नि) का पुञ्ज बनता है। **अहम्**=मैं **अश्विना उभा**=प्राण और अपान दोनों का धारण करता हूँ। प्रभु का उपासक प्राणापान की साधना द्वारा आधिव्याधि-शून्य जीवनवाला बनता है।

भावार्थ—हम रुद्र बनें (रुत् द्र)—रोगों को अपने से दूर भगाएँ, वसु बनें—उत्तम निवास-वाले हों, आदित्य बनें—गुणों का आदान करें, सब दिव्यताओं को अपनाने के लिए यत्नशील हों—ऐसा करने पर प्रभु का हमारे साथ निवास होगा। प्रभु की उपासना ही हमें इन दिव्य गुणों को प्राप्त कराएगी।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्** ॥ छन्दः —**त्रिष्टुप्** ॥

'सबके शासक, सबके आधार' प्रभु

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः॥ २॥

१. **अहम् राष्ट्री**-मैं ही इस विश्वराष्ट्र की शासिका—ईश्वरी हूँ, **वसूनां संगमनी**-सब वसुओं को—निवास के लिए धनों को प्राप्त करानेवाली हूँ, **चिकितुषी** ज्ञानवाली हूँ, अतएव **यज्ञियानां प्रथमा**-उपास्यों में प्रथम हूँ। २. **ताम्**-उस **मा** मुझे **देवाः** देववृत्ति के लोग **पुरुत्रा** पालन व पूरण के दृष्टिकोण से खूब ही **व्यदधुः** धारण करते हैं। उस मुझे धारण करते हैं जोकि **भूरिस्थात्राम्** पालक व पोषकरूप में सर्वत्र स्थित हूँ तथा **भूरि आवेशयन्तः** पालक व पोषक तत्त्वों को सब जीवों में प्रवेश करानेवाली हूँ। प्रभु सूर्यादि देवों को भी देवत्त्व प्राप्त कराते हैं तथा सब जीवों का पोषण भी वही करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सबके शासक और सबके आधार हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्** ॥ छन्दः —**त्रिष्टुप्** ॥

उग्र ऋषि, ब्रह्मा व सुमेधा

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥ ३॥

१. **अहम् स्वयम् एव** मैं स्वयं ही **इदं वदामि** इस ज्ञान को उच्चारित करता हूँ, जो ज्ञान **देवानां जुष्टम्**-देवताओं से प्रीतिपूर्वक सेवित होता है **उत** और **मानुषाणाम्**-विचारशील पुरुषों से सेवित हुआ करता है। प्रभु अग्नि आदि देवों के हृदयों में इस ज्ञान का प्रकाश कर देते हैं। अग्नि आदि से यह ज्ञान विचारशील पुरुषों को प्राप्त होता है। २. **यं कामये**-जिन्हें मैं चाहता हूँ, जो मेरे प्रिय बनते हैं **तं तम् उग्रं कृणोमि**-उन-उनको मैं तेजस्वी बनाता हूँ, **तं ब्रह्माणम्** उसे ज्ञानी बनाता हूँ, **तम् ऋषिम्** उसे तत्त्वद्रष्टा व गतिशील बनाता हूँ, **तं सुमेधाम्** उसे उत्तम मेधावाला बनाता हूँ।

भावार्थ—प्रभु सृष्टि के आरम्भ में अग्नि आदि देवों को वेद-ज्ञान प्रदान करते हैं। उनसे यह ज्ञान मनुष्यों को प्राप्त होता है। हम प्रभु-प्रिय बनते हैं तो वे प्रभु हमें 'उग्र, ब्रह्मा, ऋषि व सुमेधा' बनाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सर्वपालक प्रभु

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि॥ ४॥

१. **सः**-वह **मया**-मुझसे ही **अन्नम् अत्ति**-अन्न खाता है, **यः**-जो **विपश्यति** देखता है। वे प्राणी जो देखते हैं—कुछ समझते नहीं, वे अत्यन्त स्थिर सी अवस्था में पड़े हुए क्षुद्र जन्तु मुझसे ही भोजन खाते—प्राप्त करते हैं। इसीप्रकार **यः**-जो **प्राणति** श्वासोच्छ्वास लेते हुए जीवन बिता रहे हैं, वे भी मुझसे ही अन्न प्राप्त करते हैं। केवल देखनेवालों से ये कुछ उत्कृष्ट हैं। इनसे भी उत्कृष्ट वे हैं, **ये**-जो **ईम्**-निश्चय से **उक्तम् शृणोति**-कहे हुए को सुनता है। इसप्रकार श्रवण से ज्ञान की वृद्धि करनेवाले मनुष्य भी मुझसे ही अन्न खाते हैं। २. **ते अमन्तवः** वे मनन व विचार से शून्य लोग—अतएव मुझे न माननेवाले—भोगप्रधान वृत्तिवाले लोग भी **माम्**

उपक्षियन्ति=मेरे आधार से ही निवास करते हैं। मेरे आधार से जीते हुए भी वे माया से मोहित हुए हुए मुझे नहीं देखते, परन्तु प्रभु का प्रिय पुत्र तो वही है जो मायामूढ़ न बनकर प्रभु की प्रेरणा को सुनता है। 'अमन्तवः' शब्द का अर्थ मन्तुरहित (आगोऽपराधो मन्तुश्च), अर्थात् अपराधरहित निर्दोष भी है, **ते**-वे निर्दोष जीवनवाले व्यक्ति **माम् उपक्षियन्ति**=मेरे समीप निवास करते हैं। जितने जितने हम निर्दोष होते जाते हैं, उतने उतने ही प्रभु के प्रिय बनते जाते हैं। हे **श्रुत**=अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले जीव! **श्रुधि**=सुन। **श्रद्धेयम्**=श्रद्धा से लभ्य आत्मज्ञान को मैं **ते वदामि** तेरे लिए कहता हूँ। प्रभु की वाणी को सुननेवाला श्रद्धावान् पुरुष ही ज्ञान प्राप्त करता है।

भावार्थ—केवल देखनेवाले, श्वासोच्छ्वास लेनेवाले तथा सुनकर ज्ञान प्राप्त करनेवाले—सभी प्रभु से ही अन्न प्राप्त करते हैं। मननरहित भोगप्रधान पुरुषों को भी प्रभु ही भोजन देते हैं और श्रद्धायुक्त होकर उपासक प्रभु से ही आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'संग्राम-विजेता' प्रभु

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥ ५॥

१. राष्ट्र में प्रजाओं के कष्टों का निवारण करनेवाला राजा रुद्र है (रुत् कष्टं द्रावयति)। यह अपने धनुष् से प्रजा पीड़कों का संहार करता है। इसके लिए धनुष आदि साधनों को प्राप्त करानेवाले प्रभु ही हैं। **अहम्**=मैं ही **रुद्राय**-प्रजा-कष्ट-निवारक इस राजा के लिए **धनुः**-धनुष् को **आतनोमि**=ज्या इत्यादि से युक्त करता हूँ, जिससे यह राजा **ब्रह्मद्विषे**-ज्ञान के साथ प्रीति न रखनेवाले **शरवे**-हिंसक पुरुष के **हन्तवा उ**=हनन के लिए निश्चय से समर्थ हो सके। इसप्रकार राजा राष्ट्र की उन्नति में विघ्नभूत लोगों को उचित दण्ड देने का सामर्थ्य उस प्रभु से ही प्राप्त करता है। २. लोगों का जो अपने अन्तःशत्रु काम-क्रोध आदि से युद्ध चलता है, उस युद्ध में भी प्रभु ही विजय प्राप्त कराते हैं। **अहम्**=मैं ही **जनाय**-लोगों के लिए **समदं कृणोमि**-संग्राम करता हूँ वस्तुतः काम आदि शत्रुओं का संहार प्रभु ही करते हैं। **अहम्** मैं ही **द्यावापृथिवी आविवेश**-सम्पूर्ण द्युलोक व पृथिवीलोक में व्याप्त हो रहा हूँ। सर्वत्र मेरी ही शक्ति काम कर रही है।

भावार्थ—राजा को राष्ट्र पालन की शक्ति प्रभु से ही प्राप्त होती है। मनुष्यों को काम-क्रोध आदि को जीतने की शक्ति भी प्रभु ही देते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'हविष्मान्, यजमान, सुन्वन्'

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या३ यजमानाय सुन्वते॥ ६॥

१. **अहम्**-मैं **सोमम्**-उस सोम (वीर्यशक्ति) को उपासकों के शरीर में **बिभर्मि** धारण करता हूँ जोकि **आहनसम्**-शरीर के सब रोगों का हनन करनेवाला है। **अहं त्वष्टारम्**-मैं निर्माण की देवता को **उत**-और **पूषणं भगम्**-पोषण के लिए आवश्यक ऐश्वर्य को धारण करता हूँ, **अहं** मैं **हविष्मते** हविष्मान् के लिए—सदा दानपूर्वक अदन (भोग) करनेवाले के लिए **द्रविणा दधामि**=धनों का धारण करता हूँ, इस हविष्मान् को धनों की कमी नहीं रहती। **सुन्वते**-अपने

अन्दर सोमशक्ति का सम्पादन करनेवाले **यजमानाय**-यज्ञशील पुरुष के लिए मैं **सुप्राव्या** उत्तमता से प्रकृष्ट रक्षण करनेवाले धनों का धारण करता हूँ। 'सुन्वन्' का भाव 'निर्माणात्मक कर्मों को करना' भी है। इस निर्माण के कार्य में लगे हुए व्यक्ति के लिए भी प्रभु धनों की कभी कमी नहीं होने देते।

भावार्थ—प्रभु वीर्यशक्ति प्राप्त कराके उपासक को नीरोग बनाते हैं, उसे निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त करके पोषण के लिए पर्याप्त धन प्राप्त कराते है। प्रभु 'हविष्मान्, यज्ञमान व सुन्वन्' पुरुष को उत्तम धन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सूर्य व जलों के निर्माता' प्रभु

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे।

ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥ ७॥

१. **अहम्**-मैं **अस्य**-इन जगत् के **मूर्धन्** मस्तकरूप आकाश में—द्युलोक में **पितरम्**-इस पालक सूर्य को **सुवे**-उत्पन्न करता हूँ—'**प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः**'—यह सूर्य ही सब प्रजाओं का प्राण है। २. **मम**-मेरा **योनिः**-गृह **अप्सु अन्तः**-जलो के अन्दर **समुद्रे**-समुद्र में है। जल व समुद्रों में भी मेरा ही वास है। मेरे ही कारण उनमें रस है—'रसोऽहमप्सु कौन्तेय'। ३. **ततः**-इसप्रकार सूर्य व जलों का निर्माण करके **विश्वा भुवनानि**-सब भुवनों में **वितिष्ठे** मैं स्थित होता हूँ। **उत** और **वर्ष्मणा** मैं अपने शरीर प्रमाण से **अमूं द्याम्**-उस सुदूरस्थ द्युलोक को **उपस्पृशामि**-छूता हूँ। वस्तुतः यह द्युलोक मेरे विराट् शरीर का मूर्धा ही तो है।

भावार्थ—प्रभु सूर्य को द्युलोक में स्थापित करते हैं। प्रभु ही जलों में रसरूप से स्थित हैं। वे सब लोकों में व्याप्त हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

एतावनस्य महिमा, अतो ज्यायाँश्च पूरुषः

अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव॥ ८॥

१. **अहम् एव**-मैं ही **विश्वा भुवनानि आरभमाणा**-सब भुवनों को बनाता हुआ **वातःइव प्रवामि**-वायु की भाँति गतिवाला होता हूँ। जिस प्रकार वायु निरन्तर चल रही है, इसीप्रकार प्रभु की क्रिया भी स्वाभाविक है। वे अपनी इस क्रिया से ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं। इस निर्माण कार्य में उन्हें किसी दूसरे की सहायता अपेक्षित नहीं होती। २. वे प्रभु **दिवा परः** इस द्युलोक से परे भी हैं और **एना पृथिव्या परः**-इस पृथिवी से भी परे हैं। ये द्युलोक और पृथिवीलोक प्रभु को अपने में नहीं समा पाते। **महिम्ना**-अपनी महिमा से वह प्रभु शक्ति **एतावती** इतनी **संबभूव** है, अर्थात् प्रभु की महिमा इस ब्रह्माण्ड के अन्दर ही दीखती है, ब्रह्माण्ड से परे तो प्रभु का अचिन्त्य, निर्विकार, निराकार रूप ही है।

भावार्थ—प्रभु अपनी स्वाभाविकी क्रिया से इस ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं। यह ब्रह्माण्ड प्रभु की महिमा है, प्रभु इससे सीमित नहीं हो जाते, वे इससे परे भी हैं।

विशेष—यह ब्रह्म का विचार करनेवाला 'ब्रह्मा' बनता है। वासनाओं पर आक्रमण करने से यह 'स्कन्द' कहलाता है। यह 'ब्रह्मास्कन्दः' अगले सूक्त का ऋषि है—

इत्यष्टमः प्रपाठकः

अथ नवमः प्रपाठकः

३१. [एकत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अग्निरूप नरों का उपप्रयाण

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन्।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः॥ १॥

१. हे **मन्यो**-ज्ञान! **त्वया**=तेरे साथ **सरथम्**=समान रथ पर आरूढ़ हुए-हुए **आरुजन्तः** समन्तात् शत्रुओं को नष्ट करते हुए **हर्षमाणाः**-आनन्द का अनुभव करते हुए **हृषितासः**-शत्रु संहार के लिए अस्त्रों से सुसज्जित (armed) **नरः**=मनुष्य **उपप्रयन्तु**=अभ्युदय व निःश्रेयस सम्बन्धी क्रियाओं के प्रति प्राप्त हों। २. हे **मरुत्वन्**-प्राणोंवाले—प्राणसाधना से बुद्धि की तीव्रता को प्राप्त होनेवाले **मन्यो**=ज्ञान! **तिग्मेषवः**=तीव्र (इषु) प्रेरणाओंवाले—प्रभु प्रेरणाओं को ठीक से सुननेवाले, आयुधा **संशिशानाः**-इन्द्रिय, मन व बुद्धिरूप अस्त्रों को तीव्र करते हुए **अग्निरूपाः**=अग्नि के समान तेजस्वी अथवा उस अग्निनामक प्रभु के ही छोटेरूप बने हुए ये लोग (उप प्रयन्तु) प्रभु के समीप प्राप्त हों।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

'सेनापति' ज्ञान

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सुहरे हूत एधि।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व॥ २॥

१. हे **मन्यो**-ज्ञान! **अग्निः इव**=अग्नि के समान **त्विषितः**=दीप्तिवाला होता हुआ तू **सहस्व**-हमारे शत्रुओं का पराभव कर। हे **सहुरे**=शत्रुओं का पराभव करनेवाले ज्ञान! **हूतः**-पुकारा गया तू **नः** हमारा **सेनानीः**-सेनापति **एधि**-हो। ज्ञान ही वस्तुतः उन सब साधनों में मुख्य है जो वासनाओं का नाश करनेवाले हैं। २. **शत्रून्**=काम-क्रोध आदि सब शत्रुओं को **हत्वाय**-नष्ट करके **वेदः**-जीवन-धन को **विभजस्व**-विशेषरूप से हमें प्राप्त करा। काम क्रोध आदि से भरा जीवन जीवन ही प्रतीत नहीं होता। ज्ञान इन काम-क्रोध आदि को नष्ट करता है और हमारे लिए उत्कृष्ट जीवन-धन को प्राप्त कराता है। ३. **ओजः मिमानः**=हमारे जीवनों में ओजस्विता का निर्माण करते हुए **मृधः**=हिंसक शत्रुओं को **विनुदस्व**=विशेषरूप से दूर धकेल दे। ज्ञान हमें ओजस्वी बनाता है और काम आदि शत्रुओं के संहार के लिए समर्थ करता है।

भावार्थ— ज्ञान हमारा सेनापति बनता है और इन्द्रियों, मन व बुद्धि आदि साधनों द्वारा शुत्रओं को नष्ट कर डालता है.

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान द्वारा अभिमान का विनाश

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन्मृणन्प्रमृणन्प्रेहि शत्रून्।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम्॥ ३॥

१. हे **मन्यो** ज्ञान! तू **अस्मै** हमारे लिए **अभिमातिम्**=अभिमानरूप शत्रु को **सहस्व**=कुचल डाल। **शत्रून्**-इन काम क्रोध आदि शत्रुओं को **रुजन्**-भग्न करते हुए **मृणन्**-कुचलते हुए और **प्रमृणन्**=एकदम मसलते हुए **प्रेहि**-प्रकर्षेण आगे बढ़नेवाला हो। २. **ते पाजः**-तेरी शक्ति

उग्रम्-अत्यन्त तेजोमय है। यह **नु** अब **न आरूरुजे** रोकी नहीं जा सकती अथवा यह निश्चय से शत्रुओं का निरोध करती है। **त्वम्**=तू **एकज**-अकेला ही **वशी** सब शत्रुओं को वश में करनेवाला है और **वशं नयासा**-सब शत्रुओं को वशीभूत करता है।

भावार्थ—ज्ञानोपर्जन द्वारा हम अभिमानरूप शत्रु को दूर करें। यह ज्ञान हमारे काम क्रोधादि सब शत्रुओं को भस्म कर दे।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान+उपासना=विजय

एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि॥ ४॥

१. हे **मन्यो**-ज्ञान। **ईडिता**-प्रभु का पूजक होता हुआ तू **एकः** अकेला ही **बहूनाम्** काम क्रोध आदि बहुत से शत्रुओं का **असि** पराभव करने में समर्थ है तू **विशंविशम्**-प्रत्येक प्रजा को **युद्धाय**-इन कामादि शत्रुओं से युद्ध करने के लिए **संशिशाधि**-सम्यक् तीक्ष्ण करता है। जब तक मनुष्य ज्ञानोपासना में नहीं चलता तब तक वह काम-क्रोध आदि को शत्रुओं में समझता ही नहीं, उन्हें पराजित करने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। ज्ञान व उपासना के आते ही वह इन काम क्रोध आदि को शत्रुरूप में देखने लगता है और अब वह इनके साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है। २. यह ज्ञान **अकृत्तरुक्**-अविच्छिन्न क्रान्तिवाला है। यह ज्ञानी पुरुष प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि हे ज्ञानपुञ्ज प्रभो (मन्यो)! **त्वया युजा** तुझ साथी के साथ **वयम्** हम **विजयाय** विजय के लिए **द्युमन्तं घोषम्**-ज्योतिर्मय स्तोत्रोच्चारणों को **कृण्महे**-करते हैं जब हमारा स्तवन ज्ञानपूर्वक होता है तब यह स्तवन हमें इन शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ करता है। इस विजय के लिए हम ज्ञानपूर्वक स्तवन में प्रवृत्त होते हैं।

भावार्थ-ज्ञान ही हमें काम क्रोध आदि शत्रुओं के उच्छेद के लिए समर्थ करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'ज्ञान की चरमसीमा' प्रभु

विजेषकृदिन्द्रइवानवब्रवो३ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ॥ ५॥

१. हे **मन्यो**-ज्ञान! तू **विजेषकृत्**-विजय प्राप्त करनेवाला है **इन्द्रः इव** एक जितेन्द्रिय पुरुष की भाँति तुझे **अनब्रवः**-हुँकार द्वारा पराजित करके भगाया नहीं जा सकता। काम क्रोधादि की हुँकार तुझे उसी प्रकार भयभीत नहीं कर पाती जैसेकि एक जितेन्द्रिय पुरुष को आसुरवृत्तियाँ पराजित नहीं कर पातीं। हे ज्ञान! तू **इह**-इस जीवन यज्ञ में **अस्माकम्**-हमारा **अधिपाः भव**-रक्षक हो। २. हे **सहुरे**-शत्रुओं का मर्षण करनेवाले ज्ञान! हम **ते** तेरे **प्रियम्**-प्रिय **नाम गृणीमसि** नाम का उच्चारण करते हैं, अर्थात् ज्ञान की महिमा को हृदय में अंकित करने के लिए आपका स्तवन करते हैं और ज्ञान के महत्त्व को समझते हुए **तम् उत्सम्** उस स्रोत को भी **विद्म** जानते हैं **यतः आबभूथ**-जहाँ से कि यह ज्ञान उत्पन्न होता है। इस ज्ञान के स्रोत प्रभु का ज्ञान ही ज्ञान की चरमसीमा है। यहाँ पहुँचने पर सब पापों का ध्वंस हो जाता है।

भावार्थ—ज्ञान काम आदि का पराभाव व ध्वंस करता है। यही हमारा रक्षक है। ज्ञान के स्रोत प्रभु का दर्शन ही ज्ञान की चरमसीमा है, एवं ज्ञान प्राप्ति ही उपासना है।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'ऐश्वर्य के साथ उत्पन्न होनेवाला' ज्ञान

आभूत्या सहजा वंज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम्।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्ये॑धि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि॥ ६॥

१. **आभूत्या**=सब कोशों में व्याप्त होनेवाली भूति (ऐश्वर्य) के **सहजाः**=साथ उत्पन्न होनेवाले ज्ञान के प्रकट होने पर अन्नमयकोश तेज से पूर्ण होता है, प्राणमय वीर्य से पूर्ण होता है, मनोमय ओज व बल से भर जाता है, विज्ञानमय तो इस मन्यु से युक्त होता ही है, आनन्दमय सहस् से परिपूर्ण बनता है, **वज्रः**=(वज गतौ) गति को उत्पन्न करनेवाले ज्ञान से जीवन गतिमय होता है। **सायक**=(षोऽन्तकर्मणि) सब बुराइयों का अन्त करनेवाले ज्ञान से सब मलिनताएँ नष्ट हो जाती हैं। **सहभूते**=भूति (ऐश्वर्य) के साथ निवास करनेवाले ज्ञान! तू **उत्तरं सह बिभर्षि**-उत्कृष्ट बल को धारण करता है। हे **मन्यो**=ज्ञान! तू **क्रत्वा सह**-यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के साथ **नः मेदी एधि**=हमारे साथ स्नेह करनेवाला हो। हम ज्ञान प्राप्त करके यज्ञादि उत्तम कर्मों को करनेवाले बनें। हे **पूरुहूत**=पालक व पूरक है पुकार जिसकी ऐसे ज्ञान! तू **महाधनस्य**-उत्कृष्ट ऐश्वर्य के **संसृजि**=निर्माण में हमसे (मेदी एधि) स्नेह करनेवाला हो! तुझे मित्र के रूप में पाकर हम उत्कृष्ट ऐश्वर्य का उत्पादन करनेवाले हों।

भावार्थ—ज्ञान ही सब ऐश्वर्यों का मूल है। यह उत्कृष्ट बल देता है, यह हमें क्रियाशील बनाकर हमारा सच्चा मित्र होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

श्रद्धा व ज्ञान का समन्वय

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम्॥ ७॥

१. **मन्युः**=ज्ञान **च**-तथा **वरुणः**-ज्ञान के द्वारा सब बुराइयों का निवारण करनेवाले प्रभु **अस्मभ्यम्**-हमारे लिए **अभयम्**-ज्ञान व श्रद्धारूप उभयविध **धनम्**=धन को जोकि **समाकृतम्**=सम्यक् उत्पन्न किया हुआ तथा **संसृष्टम्**=परस्पर मिला हुआ है, उसे **धत्ताम्**-दें। हमारे जीवनों में ज्ञान व श्रद्धा का समन्वय हो। वस्तुतः 'ठीक ज्ञान' श्रद्धा को उत्पन्न करता है, 'श्रद्धा' ज्ञान को। २. इसप्रकार हमारे मस्तिष्क व हृदय के परस्पर संगत हो जाने पर **शत्रवः**-काम आदि सब शत्रु **हृदयेषु भियं दधानाः**=अपने हृदयों में भय को धारण करते हुए **पराजितासः**=पराजित हुए-हुए **अपनिलयन्ताम्**=कहीं सुदूर निलीन हो जाएँ, हम इनसे आक्रान्त न हों।

भावार्थ—ज्ञान के द्वारा प्रभु-दर्शन होने पर हमारे जीवनों में ज्ञान व श्रद्धा के धन का वह समन्वय होता है कि काम आदि सब शत्रु सुदूर विनष्ट हो जाते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'ब्रह्मास्कन्दः' ही है—

३२. [द्वात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'वज्रसायक' मन्यु की प्राप्ति व शत्रु-मर्षण

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता॥ १॥

१. हे **मन्यो**-ज्ञान (मन् अवबोधे)! **वज्र**-हमें गतिशील बनाने वाले—'**क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः**', **सायक** हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं का अन्त करनेवाले (षो॰ऽन्तकर्मणि)! **यः** जो **ते** तेरी **अविधत्** उपासना करता है, वह व्यक्ति **विश्वम्** सम्पूर्ण **सहःओजः** साथ ही उत्पन्न होनेवाले नैसर्गिक ओज को **आनुषक्**-निरन्तर **पुष्यति** अपने में धारण करता है। यह अपने में ओजस्विता को धारण करता है। २. हे ज्ञान! **त्वया युजा** तुझ मित्र के साथ **वयम्** हम **दासम्** उपक्षय करनेवाले **आर्यम्**-(ऋ गतौ) हमपर आक्रमण करनेवाले शत्रु को **साह्याम**-पराभूत करें। उस तेरे साथ जो तू **सहस्कृतेन**-सहस् (शत्रुमर्षक बल) के उदेश्य से उत्पन्न किया गया है। **सहसा**-सहस् से—ज्ञान तो है ही सहस्—यह शत्रुओं का पराभव करनेवाला है, **सहस्वता** सहस्वाला है, यह अवश्य ही कामदि शत्रुओं का मर्षण करेगा।

भावार्थ—हम ज्ञानी बनें। ज्ञान के द्वारा काम आदि शत्रुओं का पराभव करें।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

इन्द्र देव-वरुण-जातवेदाः

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः।
मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः॥ २॥

१. यह **मन्युः**-ज्ञान ही **इन्द्रः**-इन्द्र है। ज्ञान ही हमें इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनाता है। इस ज्ञान से ही हम आसुरवृत्तियों का संहार करनेवाले वृत्रहन्ता 'इन्द्र' बनते हैं। **मन्युः एव** यह ज्ञान ही **देवः आस**-देव है। यही हमें दिव्य वृत्तियोंवाला बनाता है। ज्ञानी पुरुष ही संसार की सब क्रियाओं को एक खिलाड़ी की मनोवृत्ति से करता हुआ सच्चा देव बनता है (दिव् क्रीडायाम्)। **मन्युः** ज्ञान ही **होता** दानपूर्वक अदन करनेवाला—यज्ञ करके यज्ञशेष का सेवन करनेवाला होता है। ज्ञानी कभी अकेला नहीं खाता—सबके साथ बाँटकर ही खाता है। यह मन्यु ही **वरुणः** हमसे द्वेष का निवारण करनेवाला होता है और **जातवेदाः**-(वेदस् wealth) आवश्यक धनों को उत्पन्न करनेवाला है। ज्ञान से मनुष्य में आवश्यक धन को उत्पन्न करने की योग्यता आ जाती है। २. **याः मानुषीः विशः** जो विचारशील प्रजाएँ हैं वे **मन्युः** (मन्युम्) **ईडते**-ज्ञान को उपासित करती हैं। ये ज्ञान की साधना में प्रवृत्त होती हैं। हे **मन्यो**-ज्ञान! **तपसा सजोषाः** तप के साथ हमारे लिए समान प्रीतिवाला होता हुआ **नः पाहि**-तू हमारा रक्षण कर। तपस्या के साथ ही ज्ञान का निवास है।

भावार्थ—ज्ञान से हम जितेन्द्रिय, दिव्य गुणोंवाले, दाता, निर्द्वेष तथा धनार्जन की क्षमतावाले होते हैं। यह ज्ञान ही हमारा रक्षण करता है। ज्ञान-साधना के लिए तप आवश्यक है।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शत्रुनाश व वसु-प्राप्ति

अभी३हि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः॥ ३॥

१. हे **मन्यो**-ज्ञान! तू **अभि इहि** हमारी ओर आनेवाला हो—हमें प्राप्त हो तू **तवसः तवीयान्** बलवान् से भी बलवान् है। ज्ञान सर्वाधिक शक्तिवाला है। हे ज्ञान! **तपसा युजा** तपरूप साथी के साथ तू **शत्रून् विजहि** काम क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट कर दे। तप से ज्ञान उत्पन्न होता है और यह ज्ञान काम आदि शत्रुओं का विध्वंस करनेवाला होता है। २. हे मन्यो! **अमित्रहा** तू हमारे शत्रुओं का नाश करनेवाला है, **वृत्रहा** ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को

नष्ट करता है **च**-और **दस्युहा**-तू दास्यववृत्ति को समाप्त करनेवाला है। यह ज्ञान हमारी ध्वंसक वृत्तियों को दूर करता है। हे ज्ञान! तू **नः**-हमारे लिए **विश्वा वसूनि**=निवास के लिए आवश्यक सब तत्त्वों को **आभर**=प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ—ज्ञान एक प्रबल शक्ति है। यह हमारे सब शत्रुओं को समाप्त करती है। यह ज्ञान हमें वसुओं को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान एक प्रबलशक्ति के रूप में

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि॥ ४॥

१. हे **मन्यो**-ज्ञान! **त्वम् हि**-तू ही **अभिभूत्योजाः**=शत्रुओं को पराभूत करनेवाले ओजवाला है। तेरे द्वारा काम आदि शत्रुओं का पराभव होता है। यह ज्ञान **स्वयंभूः**-स्वयं होनेवाला है—(अग्नि आदि ऋषियों के) हृदय में प्रभु के द्वारा स्थापित किया जाता है। ईर्ष्या द्वेष आदि के आवरण के कारण हमारा यह ज्ञान आवृत-सा हुआ रहता है। यह ज्ञान **भामः**-तेज है—हमें तेजस्वी बनाता है, **अभिमातिषाहः**=अभिमान का यह पराभव करनेवाला है—ज्ञानी पुरुष सदा विनीत होता है। २. यह ज्ञान **विश्वचर्षणिः**-सर्वद्रष्टा है, अर्थात् यह केवल अपने ही हित को न देखकर सभी के हित का ध्यान करता है। **सहुरिः**-सहनशील होता है। **सहीयान्**=खूब ही सहन शक्तिवाला होता है। यह ज्ञानी दूसरों से किये गये अपमान से उत्तेजित नहीं हो जाता। हे ज्ञान! तू **पृतनासु**-काम-क्रोध आदि के साथ चलनेवाले आध्यात्मिक संग्रामों में **अस्मासु**-हममें **ओजः धेहि**-ओजस्विता का आधान कर। तेरे द्वारा ओजस्वी बनकर हम इन आध्यात्म-संग्रामों में कभी पराजित न हों।

भावार्थ—ज्ञान वह शक्ति है जिसके द्वारा हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव कर पाते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान के प्रति अरुचि=दौर्भाग्य

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि॥ ५॥

१. हे **प्रचेतः**=प्रकृष्ट ज्ञान! **अभागः सन्**=कुछ अल्प भाग्यवाला होता हुआ मैं **तविषस्य**=महान् शक्तिशाली **तव**=तेरे **क्रत्वा**-कर्म से, अर्थात् ज्ञान-साधक कर्मों से **अपपरेतः अस्मि**=दूर होता हुआ मार्ग से भटक गया हूँ। यह मेरे सौभाग्य की कमी है कि मैं ज्ञान-प्राप्ति के कर्मों में नहीं लगा रह सका। हे **मन्यो**-ज्ञान! **तं त्वा**-उस तुझसे **अक्रतुः**-अकर्मण्य होता हुआ मैं **जिहीड**=घृणा करता हूँ। आलस्य के कारण तेरे प्रति मेरी रुचि नहीं होती। २. परन्तु अब मैं समझता हूँ कि आलस्य व अकर्मण्यता से दूर होकर सतत प्रयत्न से ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है, अतः हे ज्ञान! **स्वा तनूः** (मम शरीरभूतः त्वम्—सा०) मेरा शरीर बना हुआ तू **बलदावा**=बल को देनेवाला **नः आ इहि**-हमें प्राप्त हो। ज्ञान मेरा शरीर ही बन जाए। मैं सदा ज्ञान में निवास करनेवाला बनूँ। इसी से मुझे इस संघर्षमय संसार में आनेवाले विघ्नों को सहन करने की शक्ति प्राप्त होगी।

भावार्थ—सबसे बड़ा दौर्भाग्य यह है कि हम ज्ञान-प्राप्ति के साधक कर्मों से दूर हो जाते

हैं। ज्ञान में ही निवास करने पर वह शक्ति प्राप्त होती है जो संसार में आगे बढ़ने में समर्थ बनाती है।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान के प्रति रुचि=सौभाग्य

अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन्।
मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥ ६ ॥

१. ज्ञान रुचि बनकर यह कहता है कि हे ज्ञान! **अयं ते अस्मि**-यह मैं तेरा हूँ, अर्थात् अब मैं ज्ञान का भक्त बन गया हूँ। **उप नः अर्वाङ् आ इह**-तू हमें समीपता से अभिमुख होता हुआ प्राप्त हो। **प्रतीचीनः** मेरे शत्रुओं के प्रति गति करता हुआ तू मुझे प्राप्त हो। **सहुरे**-हे शत्रुओं का पराभव करनेवाले ज्ञान! **विश्वदावन्**-तू हमारे लिए सब ऐश्वर्यों का देनेवाला है। **हे वज्रिन्**-क्रियाशील—हमें क्रियाशील बनानेवाले **मन्यो** ज्ञान! तू **नः अभिः** हमारी ओर **आववृत्स्व** आनेवाला हो। तू हमें सदा प्राप्त हो। **दस्यून् हनाव** हम तेरे साथ मिलकर दस्युओं का हनन करनेवाले हों। तेरे द्वारा हम दास्यववृत्तियों को नष्ट कर सकें, **उत** और हे ज्ञान! तू **आपेः** अपने मित्र का—मेरा **बोधि** ध्यान करनेवाला हो। तुझे ही शत्रुओं के संहार के द्वारा हमारा रक्षण करना है।

भावार्थ—जिस दिन हम ज्ञान के आराधक बनते हैं, वह दिन हमारे सौभाग्यवाला होता है। इस ज्ञान के साथ मिलकर हम दास्यववृत्तियों का संहार करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मास्कन्दः** ॥ देवता—**मन्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान+ध्यान=सोमरक्षण

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७ ॥

१. हे ज्ञान! तू **अभि प्रेहि** मुझे अभिमुख्येन प्राप्त हो। **नः**-हमारे **दक्षिणतः भव**-दक्षिण की ओर हो, अर्थात् मैं तेरा आदर करनेवाला बनूँ। जिसे हम आदर देते हैं, उसे दाहिनी ओर ही बिठाते हैं। **अध**-अब हम तेरे साथ मिलकर **वृत्राणि** ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को **भूरि** खूब ही **जंघनाव**-नष्ट करें। २. **ते**-तेरे उद्देश्य से, तेरी प्रगति के लिए **धरुणम्** शरीर का धारण करनेवाले **मध्वः अग्रम्**-मधुर वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ इस सोम को **जुहोमि** अपने अन्दर आहुत करता हूँ। सोमरक्षण से बुद्धि की तीव्रता होकर ज्ञान में वृद्धि होती है। हे ज्ञान! तू और मैं **उभा** दोनों मिलकर **उपांशु**-चुपचाप—मौनपूर्वक—ध्यानावस्था को अपनाकर **प्रथमा पिबाव**-सबसे प्रथम इस सोम का पान करते हैं। ज्ञान प्राप्ति व ध्यान सोमरक्षण के साधन बनते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञान को साथी बनाकर वृत्र आदि शत्रुओं का हनन करें। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए सोम का पान करें। ये ज्ञान और ध्यान हमें सोम रक्षण में समर्थ बनाएँ।

विशेष—ज्ञान और ध्यान द्वारा वासना-विनाश करता हुआ तथा सब शक्तियों का विकास करता हुआ यह व्यक्ति 'ब्रह्मा' बनता है। पाप का नाश करनेवाला यह 'ब्रह्मा' प्रार्थना करता है—

३३. [त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

पवित्र धन

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥

१. **नः**-हमसे होनेवाला **अघम्**-पाप **अप**=दूर होकर **शोशुचत्**=ठहरने का स्थान न रहने से शोक-सन्तप्त होकर नष्ट हो जाए। हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **रयिम्**-हमारे धनों को **शुशुग्धि**-सब प्रकार से शुद्ध कर दीजिए। हमारा धन सुपथ से कमाया जाकर प्रकाशमय ही हो। २. 'वस्तुतः शुद्ध मार्ग से ही धन कमाना है', इस वृत्ति के आते ही पाप समाप्त हो जाते हैं। अन्याय से धन कमाने की वृत्ति के मूल में 'लोभ' है। यह लोभ ही सब पापों का मूल है, अतः हे प्रभो! आप हमारे इस लोभ को दूर करके धन को पवित्र कीजिए, जिससे हमारा यह सब **अघम्**=पाप **अप**=हमसे दूर होकर **शोशुचत्**=शोक सन्तप्त होकर नष्ट हो जाए।

भावार्थ—हम पवित्र कर्मों से ही धन कमाएँ। ऐसा होने पर न लोभ होगा और न पाप। पवित्र धन हमारे सब पापों को नष्ट कर देगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

सुक्षेत्र+सुगातु+वसु

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम्॥ २॥

१. **सुक्षेत्रिया**-इस उत्तम शरीररूप क्षेत्र को शोभन बनाने की इच्छा से **यजामहे**-हे प्रभो! हम आपका पूजन करते हैं। प्रभु-पूजन से हम प्रकृति के भोगों में नहीं फँसते और शरीर में रोग नहीं आते। एवं, यह शरीररूप क्षेत्र नीरोगता के द्वारा सुक्षेत्र बना रहता है। २. **सुगातुया**=उत्तम मार्ग की कामना से हम हे प्रभो! आपका संगतिकरण करते हैं। आपके साथ चलते हुए हम भटकते नहीं। आप हमारा मार्ग-दर्शन करते हैं और इसप्रकार हम जीवन में शुभ मार्ग से ही चलते हैं **च**=और **वसूया**=वसुओं को प्राप्त करने की कामना से (यजामहे)—हम आपके प्रति अपना दान करते हैं। प्रभु के प्रति अपना अर्पण करनेवाला प्रभु से सब वसुओं को प्राप्त करता है। ३. हे प्रभो! हमारी ये कामनाएँ बनी रहें कि (क) हमें प्रभु-पूजन द्वारा भोग-प्रवणता से ऊपर उठकर शरीर के नीरोग बनाना है, (ख) प्रभु के सम्पर्क में रहकर सदा उत्तम मर्ग पर चलना है और (ग) प्रभु के प्रति अपना अर्पण करके—दानवृत्ति को अपनाकर वसुओं को प्राप्त करना है। ऐसा होने पर **अघम्**=पाप **नः**=हमसे **अप**=दूर होकर **शोशुचत्** शोक-सन्तप्त होकर नष्ट हो जाए।

भावार्थ—शरीर को उत्तम बनाने की कामना, उत्तम मार्ग पर चलने की कामना व वसु-प्राप्ति की कामना से 'प्रभु-पूजन, प्रभु-संगतिकरण व प्रभु के प्रति अर्पण' में प्रवृत्त होने पर हम पापों से दूर हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

लोकहितप्रवृत्ति व सज्जन-संग

प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम्॥ ३॥

१. **यत्**-क्योंकि मैं **एषाम्**-इन मनुष्यों का **प्रभन्दिष्ठः**=(भदि कल्याणे सुखे च) अधिक-से-अधिक कल्याण व सुख करनेवाला हूँ **च**-और **अस्माकासः**=हमारे साथ मेलवाले लोग **प्रसूरयः**-प्रकृष्ट ज्ञानी हैं, अर्थात् हम ज्ञानियों के सम्पर्क में ही उठते बैठते हैं, अतः **नः**-हमारा **अघम्** पाप **अप**-हमसे पृथक् होकर **शोशुचत्**=शोक-सन्तप्त होकर नष्ट हो जाए। २. पाप को दूर करने के लिए आवश्यक है कि (क) हम लोकहित के कर्मों में लगे रहें, आराम की वृत्ति आई तो पाप भी आये, (ख) हम सदा ज्ञानियों के सम्पर्क में रहें, उन्हीं के साथ हमारा उठना-बैठना हो। सत्सङ्ग पाप से बचाता है, कुसंग पाप में फँसाता है।

भावार्थ—पाप से बचने के लिए हम लोकहित के कामों में लगे रहें और सदा सत्संग में रहें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

ज्ञान व पाप-शोषण

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम्॥ ४॥

१. हे **अग्ने**-परमात्मन्! **यत्**-यदि **सूरयः**-ज्ञानी बनकर **वयम्**-हम **ते**-आपके और **ते**-आपके ही **प्रप्र जायेमहि**-प्रकर्षेण, पूर्णरूपेण हो जाएँ तो **नः**-हमारा **अघम्**-पाप **अप**-हमसे दूर होकर **शोशुचत्**-शोक-सन्तप्त होकर नष्ट हो जाए। २. जितना जितना हम प्रकृति की ओर झुकते हैं, उतनी उतनी ही पापों में फँसने की आशंका बढ़ती जाती है। प्रभु-प्रवणता हमें प्रकाशमय जीवनवाला 'सूरी' बनाती है। ये 'सूरी' प्रभु के ही हो जाते हैं और ऐसा होने पर पापों की सम्भावना ही नहीं रहती।

भावार्थ—हम प्रभु के ज्ञानीभक्त बनें और इसप्रकार पापों का समूल शोषण करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

शक्ति व प्रकाश

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम्॥ ५॥

१. **यत्**-जब **सहस्वतः**-सहस्वाले—सहोरूप (शक्तिपुञ्ज) **अग्नेः**-अग्रणी प्रभु की **भानवः**-ज्ञानदीप्तियाँ **विश्वतः**-हमारे जीवन में सब ओर **प्रयन्ति**-प्रकर्षेण गति करती हैं, तब **नः**-हमारे **अघम्**-पाप **अप**-हमसे दूर होकर **शोशुचत्**-शोक-सन्तप्त होकर नष्ट हो जाते हैं। २. ज्ञान के प्रकाश में पापान्धकार विलीन हो जाता है। सहस्वान् प्रभु के सहस् से सहस्वाले बनकर हम पापरूप शत्रुओं को कुचल डालते हैं (**सहस्**-शत्रु मर्षक बल)।

भावार्थ—प्रभु के सम्पर्क में हम प्रकाश व बल को प्राप्त करके पापों को कुचल डालते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

विश्वतोमुख प्रभु का उपासन

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम्॥ ६॥

१. हे **विश्वतोमुख**-सब ओर मुखोंवाले परमात्मन्! **त्वम्**-आप **हि**-निश्चय से **विश्वतः**-सब ओर से **परिभूः**-हमारे रक्षक **असि**-हैं (**परिभू**-परिग्रहीता)। चारों ओर से आक्रमण करनेवाले इन शत्रुओं को विश्वतोमुख आप ही नष्ट कर सकते हो। २. हे प्रभो! आपके रक्षण में **अघम्**-यह पाप **नः**-हमसे **अप**-दूर होकर **शोशुचत्**-शोक सन्तप्त होकर नष्ट हो जाए। किसी भी ओर से पाप का आक्रमण हो, ये विश्वतोमुख प्रभु उसका नाश करते ही हैं। अन्दर-ही-अन्दर पैदा हो जानेवाले (मनसिज) कामादि शत्रु भी हृदयस्थ प्रभु के तेज से दग्ध हो जाते हैं।

भावार्थ—विश्वतोमुख प्रभु का उपासन हमें सब ओर से रक्षित करता है, हमपर पापों का आक्रमण नहीं होने देता।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

द्वेष के पार

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम्॥ ७॥

१. हे **विश्वतोमुख**-सब ओर मुखोंवाले—सर्वद्रष्टा प्रभो! **नः**-हमें **द्विषः**-द्वेष की भावनाओं से उसी प्रकार **अतिपारय**-पार कीजिए **इव**-जैसेकि **नावा**-नौका से किसी नदी को पार किया

जाता है। २. हम द्वेष की वृत्तियों से ऊपर उठकर प्रेम के क्षेत्र में विचरें, जिससे **नः**=हमारा **अघम्**-पाप हमसे दूर होकर **शोशुचत्**-शोक-सन्तप्त होकर नष्ट हो जाए।

भावार्थ—द्वेष की वृत्तियों से ऊपर उठकर ही हम पाप को विनष्ट कर पाते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

प्रभुरूपी नाव

स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम्॥ ८॥

१. हे प्रभो! **सः**=वे आप **नः**-हमें **स्वस्तये**-उत्तम स्थिति व कल्याण के लिए उसी प्रकार **अतिपर्षा**=सब पापों से पार करके पालित व पूरित कीजिए, **इव**=जैसे **नावा**=नाव के द्वारा **सिन्धुम्**-नदी को पार करते हैं। आपका नाम ही इस भव सागर से तैरने के लिए नाव बन जाए, और **नः** हमारा **अघम्** पाप **अप** हमसे दूर होकर **शोशुचत्** शोक सन्तप्त होकर नष्ट हो जाए।

भावार्थ—जैसे समुद्र को पार करने के लिए नाव साधन होती है, उसी प्रकार प्रभु का नाम हमारे लिए संसार-सागर को तैरने के लिए नाव हो जाए। पाप से पार होकर हम सुखमय स्थिति में हों।

विशेष—प्रभु-नाम का स्मरण करनेवाला यह व्यक्ति अपने अन्दर 'ब्रह्मौदन' (ज्ञान-भोजन) का परिपाक करता है। यह अथर्वा होता है—अथ अर्वाङ्-आत्म-निरीक्षण करता है, अपने अन्दर देखता है और (अ-थर्व) डाँवाडोल नहीं होता।

३४. [चतुस्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्मौदन का स्वरूप

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः॥ १॥

१. **अस्य**=इस **ओदनस्य**=ब्रह्मौदन का **ब्रह्म**=ज्ञान ही **शीर्षम्**-सिर है। **बृहत्**-(बृहि वृद्धौ) हृदय की विशालता ही **अस्य पृष्ठम्**-इसकी पीठ है और **वामदेव्यम्**-सुन्दर दिव्य गुणोंवाला होता ही **उदरम्**-उदर है। ब्रह्मौदन को यदि एक पुरुष के रूप में चित्रित करें तो ये 'ब्रह्म, बृहत् और वामदेव्य' इसके भिन्न-भिन्न अङ्ग है। २. इसीप्रकार **छन्दांसि**-पापों को अपवारित करनेवाले वेदमन्त्र इस ओदन के **पक्षौ**=पासे—पार्श्व हैं तथा **सत्यम्**=सत्य **अस्य**=इसका **मुखम्**=मुख है। इसप्रकार **तपसः अधि**=ज्ञानग्रहणरूप तप से विष्टारी **यज्ञः जातः**=हमारी सब शक्तियों का विस्तार करनेवाला यज्ञ उत्पन्न हुआ है, अर्थात् ज्ञान हमारे जीवनों में यज्ञ को जन्म देता है, उस यज्ञ को जो हमारी सब शक्तियों के विस्तार का साधन बनता है।

भावार्थ—हम ज्ञानभोजन करनेवाले बनें। इस ज्ञानग्रहणरूप तप से ही उस यज्ञ की भावना का हममें उदय होता है जो हमारी सब शक्तियों का विस्तार करती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पूताः, शुचयः

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम्॥ २॥

१. **अनस्थाः**-जो हाड मांस से बने हुए शरीर से ऊपर उठ जाते हैं—स्थूलशरीर के भोगों से ऊपर उठे हुए हैं, **पूताः**-जो पवित्र वृत्तिवाले हैं, **पवनेन शुद्धाः**-प्राणायाम के द्वारा शुद्ध जीवनवाले बने हैं, **शुचयः**=ज्ञान से दीप्त मस्तिष्कवाले हैं—ये व्यक्ति **शुचिम् लोकम्** पवित्र लोक को **अपियन्ति**-प्राप्त होते हैं। २. **एषाम्**-इनके **शिश्नम्** उपस्थेन्द्रिय को **जातवेदाः**-कामाग्नि न **प्रदहति**-जलाती नहीं। ये कामाग्नि से सन्तप्त नहीं होते। इनका घर स्वर्ग-सा बन जाता है और **एषाम्**-इनके इस **स्वर्गे लोके**-स्वर्गलोक में **बहु स्त्रैणम्** बहिनों, भौजाइयों, पत्नी व माता आदि कितनी ही स्त्रियों का सुखपूर्वक निवास होता है।

भावार्थ—ज्ञान भोजन करनेवाले लोग भौतिक सुखों से ऊपर उठकर प्राणसाधना करते हुए पवित्र व दीप्त जीवन बिताते हैं। ये लोग कामाग्नि से सन्तप्त नहीं होते। इनका घर स्वर्ग लोक-सा बन जाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

विष्टारी ओदन का परिपाक

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः॥ ३॥

१. **ये** जो **विष्टारिणम्**-शक्तियों का विस्तार करनेवाले **ओदनम्**-ज्ञान भोजन को **पचन्ति**-पकाते हैं, अर्थात् जो ज्ञान-प्रधान जीवनवाले बनकर, भोगासक्ति से ऊपर उठ कर अपनी शक्तियों का विस्तार करते हैं, **एनान्**-ब्रह्मौदन का सेवन करनेवाले इन व्यक्तियों को **अवर्तिः** (वर्ति जीविका) जीविका के लिए आवश्यक धन का अभाव **कदाचन**-कभी भी **न सचते**=नहीं प्राप्त होता। ज्ञानी दारिद्र्य पीड़ित नहीं होता। २. यह ज्ञानी **यमे**-उस सर्वनियन्ता प्रभु में **आस्ते**-आसीन होता है, **देवान् उपयाति** दिव्य गुणों को प्राप्त होता है। ब्रह्म-उपासना दिव्य गुण प्राप्ति का साधन बनती है। यह **सोम्येभिः** सोम का रक्षण करनेवाले—विनीत **गन्धर्वैः**=ज्ञान वाणियों के धारक पुरुषों के साथ **संमदते**-उत्कृष्ट हर्षयुक्त होता है।

भावार्थ—ज्ञानप्रधान जीवनवाला व्यक्ति १. दरिद्र नहीं होता, २. प्रभु का उपासक होता है, ३. दैवीसम्पत्ति को प्राप्त होता है, ४. विनीत ज्ञानियों के सम्पर्क में हर्ष का अनुभव करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रथी-पक्षी

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान्यमः परि मुष्णाति रेतः।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति॥ ४॥

१. **ये**-जो **विष्टारिणाम्**-शक्तियों का विस्तार करनेवाले **ओदनम्**-ज्ञान-भोजन को **पचन्ति** पकाते हैं, अर्थात् ज्ञानप्रधान जीवनवाले बनकर, भोगासक्ति से ऊपर उठे हुए, अपनी शक्तियों का विस्तार करते हैं—ब्रह्मौदन का सेवन करनेवाले होते हैं, **यमः** सर्वनियन्ता प्रभु **एनान्** इन व्यक्तियों की **रेतः न परिमुष्णाति**-शक्तियों का अपहरण नहीं करता। यह ज्ञानी वासनाओं से आक्रान्त न होने के कारण शक्तिशाली बना रहता है। २. यह **ह** निश्चय से **रथी भूत्वा** उत्तम शरीर रथवाला होकर **रथयाने**-रथ के मार्ग पर **ईयते**-गतिवाला होता है। यह कभी मार्ग भ्रष्ट नहीं होता और **ह**-निश्चय से **पक्षी**-उत्तम बातों का परिग्रहवाला होकर **दिवः अति**-द्युलोक से भी ऊपर उठकर सूर्यद्वार से **समेति** प्रभु से साथ सङ्गत होता है।

भावार्थ—ब्रह्मौदन का सेवन करनेवाला ज्ञानप्रधान व्यक्ति १. शक्तिशाली बना रहता है, २.

उत्तम शरीर-रथवाला होता हुआ कभी मार्ग-भ्रष्ट नहीं होता, ३. उत्तम बातों का परिग्रह करता हुआ द्युलोक से भी ऊपर उठकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनम्** ॥ छन्दः—**सप्तपदाकृतिः** ॥

'वितत वहिष्ठ' ज्ञानयज्ञ

एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥ ५॥

१. **एषः**-यह ज्ञानयज्ञ **यज्ञानाम्**-यज्ञों में **विततः**=सर्वाधिक विशालतावाला है—ज्ञानयज्ञ का कहीं अन्त नहीं है—**'अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्'**। यह **वहिष्ठः**=वोढृतम है—हमें अधिक-से अधिक प्रभु के समीप प्राप्त करानेवाला है। **विष्टारिणम्**=शक्तियों का विस्तार करनेवाले इस ज्ञान भोजन को **पक्त्वा**=पकाकर मनुष्य **दिवम् आविवेश**=स्वर्ग में प्रवेश करता है। २. यह अपने घर में **आण्डीकम्**=अण्डाकृति कन्द से उत्पन्न होनेवाले **कुमुदम्**-कमलों को घर के चारों ओर होनेवाले जलकुण्डों में (ह्रदेषु) **सन्तनोति**=विस्तृत करता है। ये कुमुद (को मोदते) घर के वातावरण को शोभायुक्त करते हैं। इन ह्रदों में **विसम्**=मृणाल (अब्जमूल) कमल-फूल होते हैं। ये रोगों के विनाश का करण बनते हैं (मृण हिंसायाम्) और शरीर में रुधिराभिसरण के लिए सहायक होते हैं (विस प्रेरणे)। **शालूकम्**=यहाँ उत्पलकन्द दिखते हैं, **शफकः**-शफ की आकृति के कन्दविशेष होते हैं और **मुलाली**=मृणालियाँ होती हैं—इसप्रकार **समन्ताः**=पर्यन्तवर्तिनी—चारों दिशाओ में होनेवाली **पुष्करिण्यः**=कमल की सरसियाँ (छोटे-छोटे तलाब) **त्वा उपतिष्ठन्तु**-तेरे समीप उपस्थित हों। ३. **एताः**=ये **सर्वाः**=सब **धाराः**=धारण करनेवाली मृणालियाँ **त्वा**-तुझे **उपयन्तु**=समीपता से प्राप्त हों। ये **स्वर्गे लोके**=स्वर्गतुल्य इस गृहप्रदेश में **मधुमत् पिन्वमानाः**=माधुर्ययुक्त रस का सचेन करनेवाली हों। इन विविध प्रकार के कमलों से युक्त पुष्करिणियाँ गृह को लक्ष्मीयुक्त (शोभा सम्पन्न) बनाती हैं। लक्ष्मी का नाम ही 'पद्मालया' है। इनका केसर 'किञ्जल्क' है (किञ्चित् जलति, जल अपवारणे) कुछ रोगादि का अपवारण करनेवाला है। इस पवित्र वातावरण में ज्ञानयज्ञ अधिक सुन्दरता से चल पाता है।

भावार्थ—ज्ञानयज्ञ हमें लक्ष्य-प्राप्ति में सर्वाधिक सहायक है। यह शक्तिप्रसारक यज्ञ हमें स्वर्ग में ले-जाता है। इस यज्ञ के लिए वातावरण को उपयुक्त बनाने के लिए हम घरों में छोटी-छोटी पुष्करिणियों का आयोजन करें। उनमें खिले कमल गृह को लक्ष्मी-सम्पन्न बनाएँगे। इनका केसर नीरोगता का कारण बनता हुआ आनन्द का सञ्चार करेगा।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनम्** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिशक्वरी** ॥

क्षीर, उदक, दधि

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥ ६॥

१. **घृतह्रदाः**=घृत के तालाब **मधुकूलाः**=जिसके किनारे शहद के बने हुए हैं तथा ऐसे तालाब जोकि **सुरोदकाः**=(सुर् to shine) चमकते हुए जलवाले हैं। वे तालाब जोकि **क्षीरेण**-दूध से **पूर्णाः**-भरे हुए हैं, **उदकेन**=जल से पूर्ण हैं और **दध्ना**=दही से भरे हुए हैं। **एताः**-ये

सर्वाः सब **धाराः** धारण करनेवाले तालाब **त्वा उपयन्तु**-तुझे समीपता से प्राप्त हों, अर्थात् घर में 'घृत, मधु, पवित्रजल, दूध, दही' की कमी न हो। २. ये सब धारण करनेवाले तालाब **स्वर्गे लोके**-स्वर्गतुल्य इस गृहप्रदेश में **मधुमत् पिन्वमानाः**-माधुर्ययुक्त रस का सेचन करनेवाले हों और **समन्ताः** चारों दिशाओं में होनेवाली **पुष्करिणीः** कमलों की सरसियाँ **त्वा** तेरे गृह में **उपतिष्ठन्तु**-उपस्थित हों।

भावार्थ—हमारे घरों में 'घृत मधु, पवित्रजल, दूध व दही' की कमी न हो। घर में चारों ओर कमलों के छोटे-छोटे तालाब हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनम्** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाभुरिक्शक्वरी** ॥

चार घड़े

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ७ ॥

१. **क्षीरेण**-दूध से **उदकेन**-जल से, **दध्ना** तथा दधि से **पूर्णान्**-भरे हुए **चतुरः कुम्भान्**-चार घड़ों को **चतुर्धा**-पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में चार प्रकार से **ददामि**-(दधामि) धारण करता हूँ **एताः**-ये **सर्वाः** सब **धाराः**-धारण करनेवाली दूध, जल व दही की घटियाँ (घड़े) **त्वा उपयन्तु** तुझे समीपता से प्राप्त हों। २. **स्वर्गे लोक** स्वर्गतुल्य गृहप्रदेश में **मधुमत् पिन्वमानाः** माधुर्ययुक्त रस का सेचन करती हुई **समन्ताः**-पर्यन्तवर्तिनी **पुष्करिणीः**-कमल सरसियाँ **त्वा उपतिष्ठन्तु**=तेरे लिए उपस्थित हों।

भावार्थ—घर में दूध, उदक व दधि से पूर्ण घड़े मङ्गल के प्रतीक हैं। ये घर में माधुर्य का सचेन करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनम्** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'विश्वरूपा कामदुघा' धेनुः

इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु॥ ८ ॥

१. प्रभु कहते हैं कि **इमम् ओदनम्**=इस ब्रह्मौदन (ज्ञान भोजन) को **ब्राह्मणेषु निदधे**-ज्ञानप्रधान जीवनवाले व्यक्तियों में उपस्थित करता हूँ। यह ओदन **विष्टारिणम्**-शक्तियों का विस्तार करनेवाला है, **लोकजितम्** पुण्यलोक (ब्रह्मलोक) का विजय करनेवाला है, यह **स्वर्गम्**-सुख प्राप्त करानेवाला है। २. **सः** वह **मे** मेरा ज्ञान भोजन **मा क्षेष्ट**-क्षय को प्राप्त न हो। **स्वधया पिन्वमानः** यह मुझे आत्मधारणशक्ति से सींचनेवाला हो। **विश्वरूपा** सब सत्यविद्याओं का निरूपण करनेवाली यह **धेनुः**-वेदवाणीरूप कामधेनु **मे** मेरे लिए **कामदुघा**='आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' रूप सब काम्य वस्तुओं का दोहन करनेवाली **अस्तु**-हो।

भावार्थ—ज्ञानप्रधान जीवनवाला बनकर मैं ज्ञान भोजन का पात्र बनूँ। इससे मेरी शक्तियों का विस्तार होगा, उत्तम लोक की प्राप्ति होगी, प्रकाश व सुख मिलेगा। यह ज्ञान मुझे आत्मधारणशक्ति से युक्त करे और सब काम्य वस्तुओं को प्राप्त करानेवाला हो।

विशेष—इस ज्ञान के द्वारा सब प्रजाओं का रक्षण करनेवाला 'प्रजापति' अगले सूक्त का ऋषि है। ज्ञान के द्वारा मृत्यु को तैर जाने का इस सूक्त में उल्लेख है—

३५. [पञ्चत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अतिमृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

लोकधारण आदेन

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥ १॥

१. **ऋतस्य प्रथमजाः**=ऋत के—सब सत्यविद्याओं के प्रथम उत्पत्तिस्थान **प्रजापतिः**=सब प्रजाओं के रक्षक प्रभु ने **तपसा**=अपने ज्ञानरूप तप के द्वारा (तस्य ज्ञानमयं तपः) **यम् ओदनम्**=जिस ज्ञान भोजन (ब्रह्मौदन) को **ब्रह्मणे** ज्ञान के लिए—लोगों को ज्ञान देने के लिए **अपचत्**=पकाया, प्रभु ने ही सृष्टि के प्रारम्भ में लोकहित के लिए इस ज्ञानभोजन को परिपक्व किया, २. **यः**=जो ज्ञान का भोजन **लोकानाम्**=सब लोकों का **विधृतिः**=धारण करनेवाला है और **न अभिरेषात्**=जो हमारा हिंसन नहीं करता—हमें हिंसित होने से बचाता है, **तेन ओदनेन**=उस ज्ञान-भोजन से **मृत्युम् अतितराणि**=मृत्यु को तैर जाऊँ। प्रकृति का ज्ञान मुझे प्राकृतिक पदार्थों के यथायोग द्वारा रोगों से बचाता है तथा आत्मज्ञान जन्म-मरण के चक्र से बचानेवाला बनता है।

भावार्थ—प्रभु ने ही सृष्टि के आरम्भ में इस ज्ञान-भोजन का परिपाक किया। यह ज्ञान ही सब लोकों का धारक है। यह मुझे मृत्यु से तराता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अतिमृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

तप और श्रम के द्वारा

येनातरन्भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन्तपसा श्रमेण।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥ २॥

१. **येन** जिस ज्ञान के द्वारा **भूतकृतः**=(भूत=right, proper, fit) ठीक कार्यों को करनेवाले ज्ञानी पुरुष **मृत्युम्**=मृत्यु को **अति अतरन्**=लाँघ गये, **यम्**=जिस ज्ञान को **तपसा**=तप के द्वारा तथा **श्रमेण**=श्रम से **अन्वविन्दन्**=क्रमशः प्राप्त करते हैं, अर्थात् तप और श्रम के द्वारा प्राप्त होनेवाले इस ज्ञान को प्राप्त करके उचित कार्यों को करनेवाले लोग मृत्यु को तैर जाते हैं। २. **यम्**=जिस ज्ञान को **पूर्वम्**=सर्वप्रथम **ब्रह्म**=परमात्मा ने **ब्रह्मणे**=ज्ञानवृद्धि के लिए **पपाच**=परिपक्व किया, **तेन ओदनेन**=उस ज्ञानभोजन से मैं भी **मृत्युम् अतितराणि**=मृत्यु को तैर जाऊँ।

भावार्थ—तप और श्रम के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य उचित क्रियाओं को करता हुआ मृत्यु को तैर जाता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अतिमृत्युः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥

नीरोगता, स्नेह, उच्च विचार

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद्रसेन।
यो अस्तभ्नाद्दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥ ३॥

१. **यः**=जो ज्ञान भोजन (ओदन) **विश्वभोजसम्**=सब अङ्ग प्रत्यङ्गों का पालन करनेवाली **पृथिवीम्**=शरीररूपी पृथिवी को **दाधार**=धारण करता है, **यः**=जो ज्ञान **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को **रसेन आपृणात्**=प्रेमरस से प्रपूरित करता है। ज्ञान के द्वारा खान-पान के ठीक होने से शरीर सुदृढ़ बना रहता है। इसीप्रकार राग द्वेष से ऊपर उठकर हृदय से सबके प्रति स्नेहवाला होता

है। २. **यः** जो ज्ञान **महिम्ना**-अपनी महिमा से **दिवम् ऊर्ध्वा अस्तभ्नात्** मस्तिष्क को ऊपर थामता है, अर्थात् ज्ञान से मस्तिष्क बड़ी उन्नत स्थिति में बना रहता है। यह मस्तिष्क बड़े ऊँचे विचारों का स्रोत बनता है। **तेन ओदनेन** उस ज्ञान भोजन से **मृत्युम् अतितराणि** मृत्यु को तैर जाऊँ। यह ज्ञान मुझे रोगों व जन्म मरण के चक्र से बचानेवाला हो।

भावार्थ—ज्ञान द्वारा शरीर नीरोग बनता है, हृदय स्नेहरस से परिपूर्ण होता है, मस्तिष्क उच्च विचारोंवाला बना रहता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अतिमृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

नैत्यिके नास्त्यनध्यायः

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥ ४॥

१. **यस्मात्**-जिस ओदन के हेतु से **त्रिंशत् अराः** तीस दिनरूप अरोंवाले **मासाः**-महिने **निर्मिताः** बनाये गये हैं और **यस्मात्** जिसके हेतु से **द्वारशारः** बारह मासरूप अरोंवाला **संवत्सरः** संवत्सर (वर्ष) **निर्मितः**-बनाया गया है, अर्थात् प्रभु ने ये वर्ष व महीने वस्तुत: बनाये ही इसलिए हैं कि हम इनमें सदा स्वाध्याय करनेवाले बनें। वर्ष में बारह महिनों व महिने के तीस दिनों में स्वाध्याय करना ही है—'**नैत्यिके नास्त्यनध्यायः**'—इस नैत्यिक कर्त्तव्यरूप स्वाध्याय में कभी अनध्याय नहीं करना। २. **परियन्तः** दिन-रात्रि के क्रम से पर्यावर्त्तमान होते हुए **अहोरात्राः** दिन रात **यं न आपुः** जिस ओदन को समाप्त नहीं कर लेते, अर्थात् दिन प्रतिदिन जिसे प्राप्त करने के लिए यत्नशील होते हुए भी हम जिसका अन्त नहीं पा सकते, **तेन ओदनेन** उस ब्रह्मौदन से मैं **मृत्युम् अतितराणि**-मृत्यु को तैर जाऊँ। ज्ञान मुझे जन्म मरण के चक्र से ऊपर उठानेवाला हो।

भावार्थ—प्रभु ने दिन-रात्रि, महिने व वर्ष हमारे स्वाध्याय के लिए ही बनाये हैं। हमारा मुख्य कर्त्तव्य इस ब्रह्मौदन को प्राप्त करना है। यही हमें मृत्यु से तराता है।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अतिमृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्राण+प्रकाश

यः प्राणदः प्राणदवान्बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥ ५॥

१. **यः प्राणदः** जो ज्ञानरूप ओदन प्राणशक्ति देनेवाला है, **प्राणदवान् बभूव**-जो प्राणशक्ति के तत्त्वों को देनेवाला है—प्राणदोंवाला है। ज्ञान 'वासना' को दग्ध करके सोम (वीर्य) का रक्षण करता है। इस सोम में ही सब प्राणदायी तत्त्वों का निवास है। **यस्मै**-जिस ज्ञान के लिए **घृतवन्तः** दीप्तिवाले **लोकाः** लोक **क्षरन्ति**-स्रुत होते हैं, अर्थात् जिसके द्वारा दीप्तिमय लोकों में जन्म प्राप्त होता है। २. **यस्य**-जिस ज्ञानरूप ओदन की **सर्वाः प्रदिशः**-सब दिशाएँ **ज्योतिष्मतीः**-प्रकाशमय होती है, अर्थात् जिस ज्ञान के होने पर जीवन के सब मार्ग प्रकाशमय हो जाते हैं—हमें सदा कर्त्तव्यमार्ग दिखता है, **तेन ओदनेन** उस ज्ञानरूप भोजन से **मृत्युम्** मृत्यु को **अतिताणि**=तैर जाऊँ।

भावार्थ—ज्ञान वासनाओं को दग्ध करके प्राणशक्ति का रक्षण करता है। ज्ञान से दीप्तिमय लोकों की प्राप्ति होती है। ज्ञान से जीवन में कर्त्तव्यमार्ग दीखता है। इस ज्ञान से कर्त्तव्यों का पालन करते हुए हम मृत्यु से ऊपर उठें।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अतिमृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गायत्री का अधिपति

यस्मात्पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव।
यस्मिन्वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥ ६ ॥

१. **यस्मात् पक्वात्**=जिस परिपक्व हुए-हुए भोजन से **अमृतं सम्बभूव**=अमृत की उत्पत्ति होती है। ज्ञान का परिपाक होने पर निष्पापता होती है। यह निष्पापता 'नीरोगता व अमृतत्व' का साधन बनती है। **यः**-जो ज्ञान **गायत्र्याः**-गायत्री का **अधिपतिः बभूव**-अधिपति है (प्राणो गायत्रम् तां० ७.१.९) यह ज्ञान प्राणशक्ति का स्वामी है। वासना-दहन द्वारा यह प्राणशक्ति का रक्षण करता है। अथवा (गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः—निरु० १.८) यह ज्ञान स्तुति का अधिपति है—ज्ञानी स्तोता ही सर्वोत्कृष्ट स्तोता है। २. **यस्मिन्**-जिस ज्ञान में **विश्वरूपाः**=सब सत्यविद्याओं का निरूपण करनेवाले **वेदाःनिहिताः**-वेद निहित हैं, अर्थात् जो ज्ञान इन वेदों से निर्दिष्ट हुआ है, **तेन ओदनेन**-उस ज्ञानरूप भोजन से **मृत्युम् अतितराणि**=मैं मृत्यु को पार कर जाऊँ।

भावार्थ—ज्ञान अमृतत्व का साधन है। यह प्राणशक्ति का अधिपति है। वेदों द्वारा प्रभु ने यह ज्ञान दिया है। इस ज्ञान से हम मृत्यु को तैर जाएँ।

ऋषिः—**प्रजापतिः** ॥ देवता—**अतिमृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

विश्वजित् ब्रह्मौदन का पाक

अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः॥ ७ ॥

१. मैं ज्ञान के द्वारा **द्विषन्तम्**-द्वेष करनेवाले शत्रु को **अवबाधे**-अपने से दूर रखता हूँ—द्वेष की भावना को अपने समीप नहीं आने देता, **देवपीयुम्**-देवों की हिंसक—दिव्य गुणों को नष्ट करनेवाली वृत्ति को दूर रखता हूँ। **ये**=जो **मे**=मेरे **सपत्नाः**=रोगरूप शत्रु हैं, **ते अपभवन्तु**-वे सब दूर हों। २. मैं **विश्वजितम्**-सम्पूर्ण संसार का विजय करनेवाले—काम आदि सब शत्रुओं को पराजित करनेवाले **ब्रह्मौदनम्** ज्ञान के भोजन को **पचामि**=पकाता हूँ—अपने में ज्ञानवृद्धि के लिए यत्नशील होता हूँ। **श्रत्-दधानस्य**=श्रद्धा से युक्त **मे**=मेरी प्रार्थना को **देवाः**-ज्ञानी पुरुष **शृण्वन्तु**-सुनें, सब देव मुझे ज्ञानभोजन देने का अनुग्रह करें। इनकी कृपा से ही मुझे ज्ञान प्राप्त होगा।

भावार्थ—ज्ञान से द्वेष व अन्य काम-क्रोधादि शत्रु नष्ट हो जाते हैं। यह ज्ञानभोजन सबका विजय करता है। श्रद्धायुक्त होकर मैं देवों से ज्ञान प्राप्त करता हूँ।

विशेष—ज्ञान के द्वारा शत्रुओं को नष्ट करनेवाला यह 'चातन' बनता है (one who destroys)। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

३६. [षट्त्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'सत्यौजा-वैश्वानर-वृषा' अग्नि

तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा।
यो नो दुरस्याद्दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात्॥ १ ॥

१. **सत्यौजाः**-सत्य के बलवाला या सत्य बलवाला **वैश्वानरः**-सब मनुष्यों का हित

करनेवाला **वृषा** सबपर सुखों का सेचन करनेवाला **अग्निः** अग्रणी प्रभु **तान् प्रदहतु:** उन्हें भस्म कर दे **यः** जो **नः** हमें **दुरस्यात्** बुरी अवस्था में फेंकनेवाला हो—हममें अविद्यमान दोषों का भी यूँही उद्भावन करता रहे, **च** और **दिप्सात्** हिंसित करने की इच्छा करे (धिप्सेत्) **अथ उ** और निश्चय से **यः** जो शत्रु **नः** हमारे प्रति **अरातियात्**-अराति-(शत्रु) वत् आचरण करे जो हमारे प्रति सदा शत्रुता की भावनावाला है। २. अध्यात्म में 'काम' रूप शत्रु हमें बड़ी दुरवस्था में फेंकनेवाला होता है, 'क्रोध' हमें हिंसित करता है (दिप्सात्) तथा 'लोभ' हमारे प्रति अराति की भाँति आचरणवाला होता है (अ-राति-न देने की वृत्ति) वस्तुत: न देने की वृत्ति (अ+राति) ही तो लोभ है। काम को जीतकर हम सत्य बलवाले होंगे, क्रोध को जीतकर ही 'वैश्वानर' बनेंगे। लोभ को जीतकर दान करते हुए सबपर सुखों का वर्षण करनेवाले होंगे (वृषा)। इसप्रकार उन्नति-पथ पर बढ़नेवाले हम 'अग्नि' ही बन जाएँगे।

भावार्थ—हम काम क्रोध व लोभ को जीतकर 'सत्यौजा वैश्वानर वृषा' अग्नि बनें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वैश्वानर अग्नि की दंष्ट्राओं में

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम्॥ २॥

१. **यः** जो **अदिप्सतः**-हिंसित करना न चाहते हुए **नः** हमें **दिप्सात्**-हिंसित करने की इच्छा करे **च** और **यः** जो **दिप्सतः**-अपराध करने पर हिंसित करने की कामनावाले राजपुरुषों को **दिप्सति**=हिंसित करना चाहता हैं, अर्थात् जो राजपुरुषों (Police) पर ही आक्रमण कर देता है, **तम्**-उसे **वैश्वानरस्य**=सारे मानवसमाज का हित करनेवाले **अग्नेः** राष्ट्र के अग्रणी राजा के **दंष्ट्रयोः** दाढ़ों में **अपिदधामि**-धारण करते हैं—उसे राजा के सुपुर्द करते हैं। वह राजा की न्यायदंष्ट्राओं से ही दण्डित होगा। २. न्याय को अपने हाथ में न लेकर अपराधी को राजा के न्यायालय को ही सौंपते हैं।

भावार्थ—जो हिंसा न करनेवाले हमारी हिंसा करे अथवा जो न्याय को अपने हाथ में ले अथवा रक्षा-पुरुषों पर ही आक्रमण करे, उसे राजा के न्याय के जबड़ों में स्थापित करना ही उत्तम है।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आगरे प्रतिक्रोशे अमावास्ये

य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशे ऽमावास्ये।
क्रव्यादो अन्यान्दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे॥ ३॥

१. **ये** जो हमें **आगरे** (आ गीर्यते समन्ताद् युज्यते अत्र) भोजनालय (Hotel) में **मृगयन्ते**-मारने के लिए ढूँढते फिरते हैं, प्रतिक्रोशे—प्रतिकूल शत्रुओं से किये हुए आक्रोश के अवसर पर—कलह के अवसर पर **अमावास्ये** अमावास्या की रात्रि में—अन्धकार में—मारने के लिए खोजते फिरते हैं, इन **क्रव्यादः** मांसभोजी **अन्यान् दिप्सतः**=औरों को मारने की इच्छा करनेवाले **तान् सर्वान्** उन सबको **सहसा**-शत्रुमर्षक बल के द्वारा **सहे** पराभूत करता हूँ।

भावार्थ—भोजनालयों में, कलहों के अवसर पर, अन्धकारमयी रात्रि में जो औरों को मारने की इच्छा करते हैं, 'वैश्वानर अग्नि' उन सबको बल से पराभूत करें।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पिशाचों का विनाश

सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे। सर्वान्दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम्॥ ४॥

१. 'वैश्वानर अग्नि', अर्थात् सभी प्रजा का हितकारी राजा कामना करता है कि **पिशाचान् सहसा सहे**=औरों का मांस खानेवाले राक्षसों को मैं बल से अभिभूत करता हूँ। **एषां द्रविणम्**=लूट आदि के द्वारा उपार्जित इनके धन को **आददे**=छीन लेता हूँ। २. **दुरस्यतः**=औरों की दुष्ट अवस्था चाहनेवाले **सर्वान्**=सबको **हन्मि**=नष्ट करता हूँ। **मे**=मेरा यह **आकूतिः**=संकल्प **संऋध्यताम्**=सम्यक् सफल हो।

भावार्थ—राजा राष्ट्र से पिशाचों को दूर करे, इनके द्रव्यों को छीन ले, औरों की दुरवस्था के कारणभूत इन दुष्टों को नष्ट करे। राजा की यही कामना हो कि राष्ट्र को पिशाचों से रहित करना है।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देवों व पशुओं का भी रक्षण

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम्। नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे॥ ५॥

१. राजा कहता है कि ये **देवाः**=राष्ट्र में देववृत्ति के जो पुरुष **तेन**=गतमन्त्र में वर्णित पिशाचों से **हासन्ते**=(जिहास्यते—सा०) धन आदि से पृथक् किये जाते हैं, **सूर्येण जवं मिमते**=जो देववृत्ति के पुरुष सूर्य के साथ वेग को मापते हैं, अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक कर्त्तव्यकर्मों में लगे रहते हैं, **तैः**=उनके साथ **संविदे**=संज्ञानवाला होता हूँ, उनसे सब बात जानकर दुष्टों को दण्ड देने के लिए यत्नशील होता हूँ। २. **नदीषु पर्वतेषु**=नदियों पर या पर्वतों पर **ये** जो पशु विचरते हैं **तैः पशुभिः**=उन पशुओं के साथ भी, उनके निरोधक राक्षसों को नष्ट करके, संज्ञानवाला होता हूँ, उन्हें सम्यक् प्राप्त करता हूँ।

भावार्थ—राजा को केवल देवों का ही रक्षण नहीं करना, अपितु नदी-तटों व पर्वतों पर संचरण करनेवाले पशुओं का भी रक्षण करना है।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पिशाचों को न्यञ्चन का न मिलना

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम्॥ ६॥

१. राजा कहता है कि मैं **पिशाचानाम्**=पर-मांसभोजियों का **तपनः अस्मि**=सन्तप्त करनेवाला हूँ, **इव**=जैसे **गोमताम्**=गवादि पशुओं के स्वामियों का **व्याघ्रः**=व्याघ्र सन्तापक होता है। २. **इव**=जैसे **श्वानः**=कुत्ते **सिंहं दृष्ट्वा**=शेर को देखकर घबरा जाते हैं, इसीप्रकार **ते**=वे पिशाच मुझे देखकर **न्यञ्चनम्**=(नि+अञ्चनम्) इधर-उधर भागकर छिपने का स्थान **न विन्दते**=नहीं पा सकते।

भावार्थ—राजा पिशाचों का सन्तापक होता है। राजा से भयभीत हुए-हुए ये पिशाच छिपने के स्थानों को भी नहीं पा सकते।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पिशाच-पलायन

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे॥ ७॥

१. राजा कहता है कि मैं **पिशाचैः** औरों का मांस खानेवाले राक्षसों के साथ **न संशक्नोमि**-किसी प्रकार से मेल नहीं कर सकता—इन्हें कठोर दण्ड देता हूँ, **स्तेनैः न**-चोरों के साथ भी मेल नहीं कर सकता और **न** न ही **वनर्गुभिः** वनगामी डाकुओं के साथ मेल कर सकता हूँ। २. मैं **यम्**-जिस भी **ग्रामम् आविशे**-ग्राम में प्रवेश करता हूँ **तस्मात्**-उस ग्राम से **पिशाचाः नश्यन्ति**=पिशाच नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—राजशासन का सौन्दर्य यही है कि राष्ट्र से 'स्तेनों व वनर्गुओं' का नामोनिशान भी मिट जाए। राष्ट्र इनके उपद्रवों से रहित हो।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पाप का उग्र-दण्ड

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते॥ ८॥

१. राजा कहता है कि **मम**-तेरा **इदम्** यह **उग्रम्** तीक्ष्ण—पिशाच सन्तापनकारी **सह** बल **यम् ग्रामम्**-जिस भी ग्राम में **आविशते** प्रविष्ट होकर कार्य करता हूँ, **तस्मात्**-उस ग्राम से **पिशाचाः**-पर-मांसभोजी पिशाच **नश्यन्ति** भाग जाते हैं। २. राजभय से पिशाच अपनी वृत्ति में परिवर्त्तन करते हैं और **पापम् न उपजानते**-पाप को नहीं जानते—पाप करना उन्हें भूल ही जाता है। अब ये चोरी आदि का नाम नहीं लेते। पाप का दण्ड उग्र होने पर पाप समाप्त हो जाता है।

भावार्थ—राजा पापी को ऐसा उग्र दण्ड दे कि आगे से लोग पाप करना भूल ही जाएँ।

ऋषिः—**चातनः** ॥ देवता—**सत्यौजा अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

जन-मार्ग से पिशाचों को दूर करना

ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशकाइव।
तानहं मन्ये दुर्हिताञ्जने अल्पशयूनिव॥ ९॥

१. राजा कहता है कि **ये**-जो पिशाच **लपिताः**-व्यर्थ बकवास करनेवाले होते हुए—झूठ के द्वारा अपने अपराध को छिपाने का प्रयत्न करते हुए **मा क्रोधयन्ति**-मुझे क्रुद्ध कर देते हैं, उसी प्रकार **इव** जैसेकि **मशकाः**=शब्द करते हुए मच्छर **हस्तिनम्** हाथी को, **तान्** उन्हें **अहम्**-मैं **दुर्हितान् मन्ये**-लोक में दुःख बढ़ानेवाला—अस्थान में स्थित (दुर् हित) **मन्ये**=मानता हूँ। २. **जने**-जनसंघ में—जनसमूह के सञ्चरण स्थल में अवस्थित **अल्पशयून् इव**-अल्पकाय शयनस्वभाव (संचार अक्षम) कीटों की भाँति मैं उन्हें मार्ग से हटाने योग्य ही समझता हूँ। ये पिशाच लोक-व्यवहार में विघ्नरूप ही होते हैं। इन्हें दूर करना नितान्त आवश्यक होता है।

भावार्थ—झूठे, चोर, ऊटपटाँग बातें बनानेवाले व्यक्ति राजा के क्रोध के पात्र होते हैं। राजा इन्हें प्रजा के मार्ग से हटा देना आवश्यक समझता है।

ऋषिः—चातनः॥ देवता—सत्यौजा अग्निः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

दुष्ट-बन्धन

अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते॥ १०॥

१. **तम्**=राष्ट्र के शत्रु उस पिशाच को **निर्ऋतिः**-दुर्गति **अभिधत्ताम्**=इसप्रकार बाँध ले—अपने पाशों में जकड़ ले, **इव**-जैसेकि **अश्वाभिधान्या**=रज्जु से **अश्वम्**=घोड़े को बाँधते हैं। २. **यः**=जो **मल्वः**=मलिन-आचरण पुरुष अपने पाप को झूठ से छिपाने का प्रयत्न करता हुआ **मह्यं क्रुध्यति** मुझे क्रुद्ध करता है **सः**=वह **उ**=निश्चय से **पाशात् न मुच्यते**=दण्ड-पाश से मुक्त नहीं होता। मैं उसे अवश्य दण्डित करता हूँ।

भावार्थ—कोई भी दुष्ट राजा के दण्डपाश से मुक्त न हो।

विशेष—आधिभौतिक उपद्रवों से शून्य इस राष्ट्र में स्थिरवृत्ति से कार्य करनेवाला 'वादरायणि' (वद स्थैर्ये) अजशृंगी आदि ओषधियों के प्रयोग से आध्यात्मिक कष्टों को भी दूर करने के लिए यत्नशील होता है।

३७. [सप्तत्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—बादरायणिः॥ देवता—ओषधिः (अजशृङ्गी)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

अथर्वा, कश्यप, कण्व, अगस्त्य

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे। त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः॥ १॥

१. हे **ओषधे**=दोषों का दहन करनेवाली ओषधे! **त्वया**-तेरे द्वारा **पूर्वम्**=सबसे प्रथम **अथर्वाणः**-(न थर्व्) स्थिरवृत्ति के लोग **रक्षांसि**=रोगकृमियों को **जघ्नुः** नष्ट करते हैं। २. **त्वया**-तेरे द्वारा **कश्यपः**=ज्ञानी पुरुष **जघान**-रोगकृमियों का नाश करता है और **अगस्त्यः**=पाप का संघात (विनाश) करनेवाला व्यक्ति तेरे द्वारा इन कृमियों को विनष्ट करता है।

भावार्थ—ओषधि द्वारा 'अथर्वा, कश्यप, कण्व व अगस्त्य' रोगकृमियों का विनाश करते हैं। ओषधि का प्रयोग इन लोगों द्वारा ही ठीक से होता हे जो स्थिरवृत्ति के हैं, ज्ञानी हैं, कण-कण करके शक्ति का सञ्चय करते हैं व पाप का विनाश करते हैं।

ऋषिः—बादरायणिः॥ देवता—ओषधिः (अजशृङ्गी)॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥

अप्सरस् गन्धर्वों का चातन

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे। अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय॥ २॥

१. हे **अजशृंगि**-'विषाणी' नामवाली ओषधे! **त्वया**-तेरे द्वारा **वयम्**=हम **अप्सरसः**=जल में गति करनेवाले—फैलनेवाले **गन्धर्वान्**-गुञ्जनरूप गायन करनेवाले कृमियों को **चातयामहे**=विनष्ट करते हैं। २. हे अजशृंगि! तू इन रोगकृमियों को **अज**=परे फेंक—दूर कर, **सर्वान् रक्षः**=सब रोगकृमियों को **गन्धेन**-अपनी गन्ध से **नाशय**=नष्ट कर दे—दूर भागा दे।

भावार्थ—अजशृंगी ओषधि के गन्ध से जल प्रदेश-विहारी मच्छर आदि रोगकृमि नष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—बादरायणिः॥ देवता—अप्सरसः॥ छन्दः—षट्पदात्रिष्टुप्॥

ओषधि पञ्चक

नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम्। गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगन्धिः प्रमन्दनी।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन॥ ३॥

१. **अप्सरसः** जलप्राय स्थानों में विहरण करनेवाले कृमि **अपां तारम्**-(तारऽत्युच्चैः) जलों से ऊपर तक भरी हुई **नदीम्** नदी को ही **यन्तु** जाएँ। ये वहाँ **अवश्वसम्** प्राणशून्य होकर नष्ट हो जाएँ (अव, श्वस प्राणने)। २. हे **अप्सरसः**-जलप्रायः स्थानों में विचरनेवाले रोगकृमियो! **गुल्गुलूः, पीला, नलदी, ओक्षगन्धि, प्रमन्दनी**-इन नामोंवाली ये ओषधियाँ **प्रतिबुद्धाः अभूतन**-प्रतिबुद्ध हुई हैं—हमारे ज्ञान का विषय बनी हैं, **तत् परेत**=अब तुम यहाँ से बाहर हो जाओ। इन ओषधियों के प्रयोग से हम तुम्हारा नाश करते हैं। ३. गुल्गुलू के नाम 'भूतहर, यातुघ्न व रक्षोहा' भी हैं। पीला के नाम 'गुडफल व स्रंसी' हैं। नलदी 'भूतघ्नी, दाहघ्नी, पित्तघ्नी' है ओक्षगन्धी का दूसरा नाम 'ऋषभक' भी है। यह वाजीकरण औषध है। प्रमन्दनी (घातकी) 'क्रिमि व विसर्प'-जित् है (विसर्प–एग्ज़िमा)।

भावार्थ—'गुल्गुलू, पीला, नलदी, ओक्षगन्धि, व प्रमन्दनी' नामक ओषधियाँ जलप्राय स्थानों में हो जानेवाले कृमियों का नाश कर देती हैं।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**ओषधिः (अजशृङ्गी)** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अश्वत्थ, न्यग्रोध, शिखण्डी (महावृक्ष) का रोपण

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः। तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन॥ ४॥

१. हे **अप्सरसः**-जलप्राय स्थानों में विहरण करनेवाले कृमियो! **यत्र**=जहाँ **अश्वत्थाः** पीपल **न्यग्रोधाः** वट व **शिखण्डिनः** शिखण्डी (a kind of Jasmine) आदि **महावृक्षाः** महत्त्वपूर्ण वृक्ष **प्रतिबुद्धाः अभूतन**-प्रतिबुद्ध हो गये हैं, ज्ञान का विषय बन गये हैं, अतः **तत् परेत** तुम यहाँ से दूर भाग जाओ। २. अश्वत्थ व न्यग्रोध दोनों योनि दोषों का निराकरण करनेवाले हैं। इसीप्रकार शिखण्डी (चमेली) गन्ध द्वारा कृमियों की नाशक है।

भावार्थ—अश्वत्थ, वट व शिखण्डी आदि महावृक्षों का रोपण रोगकृमि विनाशक है।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**अप्सरसः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

अर्जुनाः, आघाटाः, कर्कर्यः

यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन॥ ५॥

१. हे **अप्सरसः** जलप्राय स्थानों में विहरण करनेवाले कृमियो! **यत्र**=जहाँ **वः**-तुम्हें **प्रेङ्खाः**-दूर करने के लिए (प्रईंख) **हरिताः** हरिद्वर्ण **अर्जुनाः** अर्जुनवृक्ष **उत** और **यत्र**-जहाँ **आघाटाः**-(आहन्) समन्तात् तुम्हारा हनन करती हुई अपामार्ग ओषधि तथा **कर्कर्यः**-(gourd) घिया की बेलें **संवदन्ति**=परस्पर संवाद सा करती हैं, अतः तुम **तत् परेत**-वहाँ से दूर भाग जाओ। यहाँ तो ये 'अर्जुनवृक्ष, अपामार्ग व घिया की बेलें' **प्रतिबुद्धा अभूतन** जागरित हो गई हैं, अतः अब यहाँ तुम्हारा काम नहीं।

भावार्थ—रोगकृमियों को दूर करने के लिए 'अर्जुनवृक्ष, अपामार्ग तथा घिया की बेलों' का रोपण करना चाहिए।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**ओषधिः (अजशृङ्गी)** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अजशृंगी=अराटकी

एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती।
अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु॥ ६॥

१. **ओषधीनाम्**-दोषों का दहन करनेवाली **वीरुधाम्**-विरोहण स्वभाववाली लताओं में **इयम्**-यह **वीर्यावती**-अतिशयित सामर्थ्यवाली अजशृंगी नामवाली ओषधि **आ आगन्**-प्राप्त हुई है। २. **अराटकी**-(अरान् आटयति) शरीर में कुत्सित गति करनेवाले कृमियों का नाश करने-वाली **तीक्ष्णशृंगी**-उग्र गन्धवाली व शृंगाकृति फलोंवाली यह **अजशृंगी व्यृषतु**-रोगकृमियों को (हिनस्तु) विशेषरूप से नष्ट करनेवाली हो।

भावार्थ—अजशृंगी ओषधि बड़ी शक्तिशाली है। यह रोगकृमियों को नष्ट करनेवाली है।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**गन्धर्वाप्सरसः** ॥ छन्दः—**परोष्णिक्** ॥

कृमि-प्रजनन-निरोध

आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः॥ ७॥

१. **आनृत्यतः**-चारों ओर नृत्य सा करते हुए **शिखण्डिनः**-चूड़ा (चोटी) वाले **गन्धर्वस्य**=गायन सा करनेवाले **अप्सरापतेः**-जलसञ्चारी कृमियों के मुखिया के **मुष्कौ**=अण्डकोशों को **भिनद्मि**-तोड़ देता हूँ और **शेपः अपियामि**=उसके प्रजननांग का नाश करता हूँ।

भावार्थ—कृमियों के प्रजनन को समाप्त करके हम इन्हें बीमारी फैलाने से रोकते हैं।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**गन्धर्वाप्सरसः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

भीमा इन्द्रस्य हेतयः

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः।
ताभिर्हविरदान्गन्धर्वानवकादान्व्यृषतु॥ ८॥

१. **इन्द्रस्य**-सूर्य की **हेतयः**=कृमियों का विनाश करनेवाली किरणें **भीमाः**=बड़ी भयंकर हैं। ये **शतम्**-सैकड़ों **ऋष्टीः**-दुधारी तलवारों के समान हैं। **अयस्मयीः**=ये तलवारें लोहे की बनी हुई हैं, बड़ी दृढ़ हैं। २. **ताभिः**-उन किरणरूप दुधारी तलवारों से यह सूर्य **हविरदान्**-अन्न को खा जानेवाले और **अवकादान्**=जल-उपरिस्थ शैवाल (काई) को भी खा जानेवाले **गन्धर्वान्**-गायक कृमियों को **व्यृषतु**=हिंसत कर दे।

भावार्थ—सूर्यकिरणें कृमियों को नष्ट करने के लिए दुधारी तलवारों के समान हैं।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**गन्धर्वाप्सरसः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

चमकती हुई किरणरूप तलवारें

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः।
ताभिर्हविरदान्गन्धर्वानवकादान्व्यृषतु॥ ९॥

१. कृमियों का नाश करनेवाली **इन्द्रस्य**=सूर्य की किरणें **हेतयः**-अस्त्रों के समान हैं। ये **शतम् ऋष्टीः**=सैकड़ों दुधारी तलवारों के समान हैं जोकि **हिरण्ययीः**=स्वर्ण के समान चमक रही हैं। २. **ताभिः**-उन चमकती हुई किरणरूप तलवारों से **हविरदान्**-अन्न को खा जानेवाले **अवकादान्**=जलोपरिस्थ शैवाल को भी खा जानेवाले **गन्धर्वान्**=इन गायक कृमियों को **व्यृषतु**=यह सूर्य हिंसित करनेवाला हो।

भावार्थ—चमकती हुई सूर्यकिरणें वे तलवारें हैं जो अन्न तथा शैवाल को खा जानेवाले इन कृमियों को नष्ट कर देती हैं।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**ओषधिः (अजशृङ्गी)** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'अवकाद, अभिशोच' पिशाच

अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान्।
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च॥ १०॥

१. हे **ओषधे**=अजशृङ्ग! तू **अवकादान्**-जल पर के शैवाल को भी खा जानेवाले **अभिशोचान्** दाह व सन्ताप पैदा करनेवाले **अप्सु** शरीरस्थ जलांशों में रहनेवाले **मामकान्** मेरे **पिशाचान्** मांस को खा जानेवाले कृमियों को **ज्योतय**-जला दे। २. **सर्वान्**-मांस खा जानेवाले इन सब कृमियों को **प्रमृणीहि**-तू हिंसित कर **च**-और **सहस्व**-इन रक्तशोषक कृमियों का मर्षण कर दे—इन्हें कुचल डाल।

भावार्थ—जो कृमि रक्त का शोषण करते हैं और मांस को भी खा जाते हैं, उन्हें अजशृङ्गी नष्ट कर डाले।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**गन्धर्वाप्सरसः** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

ब्राह्मी ओषधि

श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः। प्रियो दृशइव भूत्वा गन्धर्वः
सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्या᳡वता॥ ११॥

१. यह **गन्धर्वः**=गायन करनेवाला **एकः**-एक कृमि **श्वा इव**-कुत्ते के समान है—इसका स्वर भौंकता-सा प्रतीत होता है। **एकः**-एक कृमि **कपिः इव**-बन्दर के समान अत्यन्त चञ्चल है। यह **कुमारः**-बुरी भाँति मारनेवाला है। **सर्वकेशकः**-सब ओर बालोंवाला कृमि **दृशः प्रियः इव भूत्वा** आँखों के लिए प्रिय-सा होता हुआ—दिखने में अच्छा लगता हुआ **स्त्रियः सचते** स्त्री शरीरों में प्रवेश करता है। २. **तम्**-उस कृमि को **इतः** यहाँ से—शरीर से **वीर्यावता**-बड़ी शक्तिवाली **ब्रह्मणा** ब्राह्मी ओषधि से **नाशयामसि**-दूर भगाते हैं।

भावार्थ—स्त्री-शरीरों में प्रविष्ट होकर योनि-दोषों को उत्पन्न करनेवाले कृमियों को ब्राह्मी के प्रयोग से दूर करते हैं।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**गन्धर्वाप्सरसः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥

गन्धर्व+अप्सराः

जाया इद्वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम्। अप धावतामर्त्या मर्त्यान्मा सचध्वम्॥ १२॥

१. हे **गन्धर्वाः** गायन-सा करनेवाले कृमियो! **अप्सरसः** जलप्राय स्थानों में विचरनेवाली ये अप्सराएँ—कृमिविशेष **इत्** ही **वः जायाः** तुम्हारी पत्नियाँ हैं, **यूयम्** तुम इनके **पतयः** पति हो। २. हे **अमर्त्याः**-जिनका मारना बड़ा कठिन है, ऐसे कृमियो! **अपधावत** तुम यहाँ से दूर भाग जाओ, हम **मर्त्यान्**-मनुष्यों को **मा**-मत **सचध्वम्**=प्राप्त होओ, हमपर तुम्हारा आक्रमण न हो।

भावार्थ—नर कृमि 'गन्धर्व' हैं तो मादा 'अप्सरस्'। इनका मारना आसान नहीं। प्रभु के अनुग्रह से ये कृमि हमसे दूर रहें। हम स्वच्छता आदि की ऐसी व्यवस्था रक्खें कि इन कृमियों का यहाँ उद्भव ही न हो।

अगले सूक्त का ऋषि भी 'वादरायणि' ही है—

३८. [अष्टात्रिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**बादरायणिः** ॥ देवता—**अप्सराः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अप्सरा का आवाहन

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे॥ १॥

१. मैं **इह**-इस घर में **ताम्**-उस **अप्सराम्**=(अप्-कर्म, सृ गतौ) क्रियाशील, आलस्यरहित गृहिणी को **हुवे**=पुकारता हूँ—प्रभु से ऐसी गृहिणी के लिए प्रार्थना करता हूँ जो **उद्भिन्दतीम्**-वासनारूप शत्रुओं को उखाड़ देनेवाली है—जिसका जीवन वासनामय नहीं है, **सञ्जयन्तीम्**-जो वासनारूप शत्रुओं पर सदा विजय पाती है, **साधुदेविनीम्**=जो उत्तम व्यवहारवाली है—घर के सब कार्यों को कुशलता से करती है। २. मैं उस गृहिणी को चाहता हूँ जो **ग्लहे**=स्पर्धा के समय **कृतानि कृण्वानाम्**-उत्तम कृत्यों को करनेवाली है और **अप्सराम्**-खूब ही क्रियाशील है। जुए में जैसे स्पर्धा से अधिक और अधिक शर्त लगाते हैं, उसी प्रकार यह गृहिणी 'घर को उत्तम बनाने में' औरों को जीतने की कामनावाली होती है।

भावार्थ—पत्नी के मुख्य गुण हैं—(क) वासनाओं का विदारण—इनपर विजय पाना, (ख) क्रियाशील होना, (ग) उत्तम व्यवहारवाली होना—क्रियाओं को कुशलता से करना, (घ) घर को उत्तम बनाने की स्पर्धावाला होना।

ऋषिः—**बादरायणिः** ॥ देवता—**अप्सराः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विचिन्वती-आकिरन्ती

विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे॥ २॥

१. **इह**=इस घर में **ताम्**=क्रियाओं में विचरण करनेवाली गृहिणी को **हुवे**=पुकारता हूँ जोकि **विचिन्वन्तीम्**-धन का सञ्चय करनेवाली है और **आकिरन्तीम्**=सञ्चित धन को यज्ञात्मक विविध कर्मों के लिए विकीर्ण करनेवाली है, **साधुदेविनीम्**-उत्तम व्यवहारवाली है—कार्यों को कुशलता से करनेवाली है। २. **ग्लहे**=घर को उत्तम बनाने की स्पर्धा में यह गृहिणी **कृतानि गृह्णानाम्**=उत्तम कर्मों का स्वीकार करनेवाली है और **अप्सराम्**=सदा क्रियाओं में विचरनेवाली—आलस्यशून्य है।

भावार्थ—उत्तम पत्नी की विशेषता यह है कि वह १. धनों का सञ्चय करती है, पति के कमाये गये धन को जोड़ती है, २. उसका यज्ञात्मक कर्मों में विनियोग करती है, ३. क्रियाशील है—सदा उत्तम व्यवहारवाली है और ४. घर को उत्तम बनाने की स्पर्धा में उत्तम कर्मों का स्वीकार करती है।

ऋषिः—**बादरायणिः** ॥ देवता—**अप्सराः** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

शुभ कर्मों में नृत्य करनेवाली

यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात्।
सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया।
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम्॥ ३॥

१. हमारे घर में उस गृहिणी का प्रवेश हो **या**=जो **अयैः**=शुभावह विधियों से—पुण्यमार्गों

से **परिनृत्यति** कार्यों में नृत्य करती है—कार्यों को स्फूर्ति से करती है। वह पत्नी **ग्लहात्** घर को उत्तम बनाने की स्पर्धा से **कृतम् आददाना**-उत्तम कर्मों का आदान करती है। २. **सा**-यह गृहिणी **नः** हमारे **कृतानि**-कर्त्तव्यकर्मों को **सीषती**-नियमबद्ध करती हुई (ओहाङ् गतौ) अथवा प्रकृष्ट त्याग—सब अशुभों के दूरीकरण को (ओहाक् त्यागे) **आप्नोतु**-प्राप्त करे। ३ **सा**-वह पत्नी **पयस्वती**-दूध आदि उत्तम पदार्थोंवाली **नः** हमें **आ एतु** सर्वथा प्राप्त हो। गृहिणी इस बात का ध्यान करे कि दूसरे लोग **नः इदं धनम्** हमारे इस उत्तम गृहरूप धन को **मा जैषुः**-जीतनेवाले न हों। हमारा घर उत्तमता में पिछड़ न जाए।

भावार्थ—१. पत्नी शुभ-कर्मों को सदा स्फूर्ति से करनेवाली हो, २. गृह को उत्तम बनाने की स्पर्धा से शुभकर्मों का स्वीकार करे, ३. समझदारी से घर को आगे और आगे ले चले, ४. घर में दूध आदि पदार्थों की कभी न होने दे, ५. गृह धन को अपव्ययित न होने दे।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**अप्सराः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शुचं क्रोधं च बिभ्रती

या अ॒क्षेषु॑ प्र॒मोद॑न्ते॒ शुचं॒ क्रोधं॑ च॒ बिभ्र॑ती।
आ॒न॒न्दिनीं॑ प्रमो॒दिनी॑मप्स॒रां तामि॒ह हु॑वे॥ ४॥

१. **ताम्**-उस **अप्सराम्**-गृहकार्यों में प्रवृत्त होनेवाली सुन्दर पत्नी को **इह**-यहाँ—गृहों में **हुवे** पुकारते हैं **याः**-जो **अक्षेषु प्रमोदन्ते**-इन्द्रियों में सदा प्रमोदवाली हैं—सदा प्रसन्न मुख हैं, **शुचम्** शोक को **च** और **क्रोधम्**-क्रोध को **बिभ्रती**-धारण करती हुई—अपने वश में करनेवाली होती है—क्रोध इसे धारण नहीं कर लेता। २. **आनन्दिनीम्**-जो घर में सभी को अपने यथायोग्य व्यवहार से आनन्दित करनेवाली है तथा **प्रमोदिनीम्**-सदा प्रहृष्टा है।

भावार्थ—पत्नी वही उत्तम है जोकि (क) प्रसन्नमुख है (ख) शोक व क्रोध को वशीभूत करती है, (ग) अपने यथोचित व्यवहार से सबको प्रसन्न करनेवाली है, (घ) प्रसनचित्त और क्रियाशील है।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**वाजिनीवान् ऋषभः** ॥ छन्दः—**भुरिगत्यष्टिः** ॥

उत्तम पति-पत्नी

सूर्य॑स्य र॒श्मीननु॒ याः सं॒चर॑न्ति॒ मरी॑चीर्वा॒ या अ॑नुसं॒चर॑न्ति।
यासा॑मृष॒भो दू॑र॒तो वा॒जिनी॑वान्त्स॒द्यः सर्वाँ॑ल्लो॒कान्पर्ये॑ति॒ रक्ष॑न्।
स न॒ ऐतु॒ होम॑मि॒मं जु॑षा॒णो॒३॒॑ऽन्तरि॑क्षेण स॒ह वा॒जिनी॑वान्॥ ५॥

१. गृहिणियाँ वे ही उत्तम हैं **याः**-जो **सूर्यस्य रश्मीननु सञ्चरन्ति**-सूर्य की रश्मियों के अनुसार सञ्चरण करती हैं, अर्थात् सूर्योदय से सूर्योस्त तक कार्यों में लगी रहती हैं, **वा**-तथा **याः** जो **मरीचीः**-सूर्यप्रकाश में **अनुसञ्चरन्ति** अनुकूलता से सञ्चरण करती हैं—अँधेरे कमरों में नहीं बैठी रहतीं। २. **यासाम्**-जिनका **ऋषभः** सेचन-समर्थ—सन्तान को जन्म देने की सामर्थ्यवाला श्रेष्ठ पति **दूरतः वाजिनीवान्**-(वाजिनी-उषा) दूर से उषावाला है, अर्थात् उषाकाल से भी पहले ही (Early in the morning) प्रबुद्ध होनेवाला है यह ऋषभ **सद्यः** शीघ्र ही **सर्वान् लोकान्** सब लोगों का **रक्षन्**-रक्षण करता हुआ **परिएति**-चारों ओर गति करता है—अपने सब कर्त्तव्यकर्मों का सम्यक् पालन करता है। ३. पत्नी कामना करती है कि **सः** वह गृहपति **नः** हम गृहिणियों को **आ एतु**-सर्वथा प्राप्त हो, जो **इमं होमं जुषाणः**-इस यज्ञ को प्रतिदिन प्रीतिपूर्वक करनेवाला हो (पत्युर्नो यज्ञसंयोगे), जोकि **अन्तरिक्षेण सह**-अन्तरिक्ष के साथ, अर्थात् सदा

मध्यमार्ग में चलता हुआ **वाजिनीवान्**-प्रशस्त उषावाला है। पति का कर्त्तव्य है कि अति में न जाता हुआ—कार्यों को मर्यादा मैं करता हुआ—उषाकाल में प्रबुद्ध हो।

भावार्थ—वही घर स्वर्ग बनता है जहाँ पत्नी (क) सूर्योदय से सूर्यास्त तक क्रियाशील हो, (ख) अँधेरे कमरे में न बैठी रहकर सूर्यप्रकाश में अपने कार्य को करती हुई स्वस्थ हो। इस स्वर्गतुल्य गृह में पति शक्तिशाली होता है, रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है, यज्ञशील बनता है, मध्यमार्ग में चलता हुआ उषा में प्रबुद्ध होनेवाला यह गृहपति मर्यादित जीवनवाला होता है।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**वाजिनीवान् ऋषभः** ॥ छन्दः—**भुरिगत्यष्टिः** ॥

आदर्श पति

अ॒न्तरि॑क्षेण स॒ह वा॑जिनीवन्क॒र्की व॒त्सामि॒ह र॑क्ष वाजिन्।
इ॒मे ते स्तो॒का ब॑हु॒ला एह्य॒र्वाङि॒यं ते क॒र्कीह ते॒ मनो॑ऽस्तु॥ ६॥

१. पत्नी पति से कहती है कि हे **वाजिनीवन्**-प्रशस्त उषावाले **वाजिन्**-बलवाले—उषा में प्रबुद्ध होनेवाले सबल पते! **अन्तरिक्षेण सह**-सदा मध्यमार्ग में चलने के साथ, अर्थात् मर्यादित जीवनवाला होते हुए **इह**-इस गृहस्थजीवन में अपनी **कर्कीम्**=शुद्ध जीवनवाली (श्वेत घोड़ी) की भाँति शुद्ध, पवित्र व क्रियाशील **वत्साम्**=प्रिय व प्रातः प्रबुद्ध होने पर प्रभु-स्तोत्रों का उच्चारण करनेवाली (वदति) इस पत्नी का **रक्ष**-तू रक्षण करनेवाला है। २. **इमे**=ये **ते**=तेरे **स्तोका**=(स्तुच् घञ् स्तोचते to be light, to shine) दीप्त-(शानदार)-कर्म **बहुलाः**=बहुत समृद्धियों को प्राप्त करानेवाले हों। तू यहाँ **अर्वाङ् एहि**-घर की ओर ही आनेवाला हो—क्लब आदि में जानेवाला न बन जाए। **इयम्**-यह **ते**-तेरी **कर्की** शुद्ध, क्रियाशील पत्नी है। **इह**=यहाँ घर में ही ते **मनः अस्तु**-तेरा मन हो। तेरे लिए घर का वातावरण मनःप्रसाद देनेवाला हो।

भावार्थ—पत्नी चाहती है कि उसका पति (क) मर्यादित जीवनवाला हो, (ख) उषा में प्रबुद्ध होनेवाला हो (ग) वस्तुतः गृहरक्षक हो, (घ) शुद्ध कर्मों से गृह को समृद्ध करनेवाला हो—घर में अशुद्ध कमाई न आये, (ङ) घर का वातावरण उसके लिए मनःप्रसाद-जनक हो—क्लब-लाइफ़वाला न हो।

ऋषिः—**वादरायणिः** ॥ देवता—**वाजिनीवान् ऋषभः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा-पुरउपरिष्टाज्ज्योतिष्मतिजगती** ॥

उत्तम घर

अ॒न्तरि॑क्षेण स॒ह वा॑जिनीवन्क॒र्की व॒त्सामि॒ह र॑क्ष वाजिन्।
अ॒यं घा॒सो अ॒यं व्र॒ज इ॒ह व॒त्सां नि ब॑ध्नीमः। य॒था॒ना॒म व॑ ईश्महे॒ स्वाहा॑॥ ७॥

१. हे **वाजिनीवन्**-प्रशस्त उषाकालवाले! उषाकाल में प्रबुद्ध होनेवाले **वाजिन्**=शक्तिशाली गृहपते! **अन्तरिक्षेण सह**=अन्तरिक्ष के साथ, अर्थात् सदा मध्यमार्ग में चलने के साथ **इह**=इस जीवन में **कर्कीम्**-क्रियाशील **वत्साम्**-प्रभु-स्तोत्रों का उच्चारण करनेवाली प्रिय पत्नी की **रक्ष**-तू रक्षा करनेवाला हो। २. पति उत्तर देता हुआ कहता है कि **अयं घासः**=यह वानस्पतिक भोजन यहाँ घर में है। **अयं व्रजः**=यह क्रियाशील जीवन है (व्रज गतौ)। **इह**=यहाँ **वत्साम्**-तुझ प्रभु-भक्तिवाली प्रिय पत्नी को हम **निबध्नीमः**=बाँधते हैं। वस्तुतः पति का मुख्य कर्त्तव्य यही हो कि वह घर में पोषण के लिए आवश्यक पदार्थों की कमी न होने दे और आलसी जीवनवाला न हो। ये दो बातें ही पत्नी को घर में बाँधनेवाली होती हैं। पति विवाह-संस्कार के समय कहता

है कि—'ध्रुवैधि पोष्ये मयि'। ३. ये पति पत्नी अपनी सन्तानों के साथ मिलकर प्रातः-सायं प्रभु का उपासन करते हैं और कहते हैं कि हे प्रभो! **वः यथानाम**-आपके नाम के अनुसार, अर्थात् जितना-जितना आपका नाम लेते हैं, उतना-उतना ही हम **ईश्महे** ऐश्वर्यवाले होते हैं, अतः **स्वाहा** हम आपके प्रति ही अपना (स्व) अर्पण करते हैं (हा)—आपकी शरण में आते हैं।

भावार्थ—पति प्रातः प्रबुद्ध होनेवाला हो, शक्तिशाली हो, घर में खान पान की कमी न होने दे—क्रियाशील हो। घर में पति-पत्नी अपनी सन्तानों के साथ प्रभु का उपासन करनेवाले बनें।

विशेष—अपने जीवन को सुन्दर बनानेवाले पति पत्नी 'अंगिरस्' बनते हैं। अगले सूक्त का ऋषि 'अंगिराः' ही है—

३९. [एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**अङ्गिराः** ॥ देवता—**पृथिव्यग्नी** ॥ छन्दः—**त्रिपदामहाबृहती** ॥

पृथिवी में अग्नि

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु॥ १॥

१. **पृथिव्याम्** इस पृथिवी में **अग्नये**-अग्नितत्त्व के लिए **समनमन्**-सब प्राणी संनत होते हैं। **सः** वह अग्नितत्त्व ही **आर्ध्नोत्**-(ऋध्=to cause, to succeed) इन प्राणियों को विजयी (सफल) बनाता है। **यथा** जैसे **पृथिव्याम्**-इस पृथिवीरूपी शरीर में **अग्नेय** अग्नि के लिए **समनमन्**-संनत (to make ready) होते हैं—अपने को तैयार करते हैं, **एव**-इसीप्रकार **मह्यम्** मेरे लिए **संनमः**-अभिलषित फलों की प्राप्तियाँ (संनतयः) **संनमन्तु**-संनत हों—प्राप्त हों।

भावार्थ—शरीररूप पृथिवी में अग्नितत्त्व ही प्रधान देवता है। इसके ठीक होने पर शरीर में सब अभिलषित (दिव्य) पदार्थ उपस्थित होते हैं। अग्नि प्रधान देव है—इसके होने पर अन्य पार्थिव देव क्यों न उपस्थित होंगे?

ऋषिः—**अङ्गिराः** ॥ देवता—**पृथिव्यग्नी** ॥ छन्दः—**संस्तारपङ्क्तिः** ॥

पृथिवीरूप धेनु का अग्निरूप वत्स

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः। सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा॥ २॥

१. **पृथिवी**-यह शरीररूप पृथिवी **धेनुः**-धेनु है तो **तस्याः**-उस धेनु का **अग्निः वत्सः**-अग्नि बछड़ा है। **सा**-वह धेनु इस **अग्निना वत्सने** अग्निरूप वत्स के साथ **मे**-मेरे लिए **इषम्**-अन्न, **ऊर्जम्**-बलकर रस और **कामम्**=काम्यमान अन्य तत्त्वों को **दुहाम्** प्रपूरित करे। २. **प्रथमं आयुः** शतसंवत्सर पर्यन्त विस्तीर्ण आयु **प्रजाम्** पुत्र आदिरूप उत्तम प्रजा व शक्ति-विकास **पोषम्**-अङ्ग प्रत्यङ्ग का पोषण और **रयिम्**-धन दे। **स्वाहा**-मैं इस अग्नितत्त्व के लिए अपने को अर्पित करता हूँ। शरीररूप पृथिवी में अग्निदेव के स्थापन के लिए यत्नशील होता हूँ।

भावार्थ—शरीररूप पृथिवी में अग्नितत्त्व के ठीक होने पर सब इष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं, दीर्घ जीवन, सब अंगों का पोषण व धन—सब सुलभ होते हैं।

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—वाय्वन्तरिक्षे ॥ छन्दः—त्रिपदामहाबृहती ॥

अन्तरिक्ष में वायु

अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु॥ ३॥

१. **अन्तरिक्षे**=इस हृदयरूप अन्तरिक्ष में **वायवे**=वायुतत्त्व के लिए—निरन्तर क्रियाशीलता के संकल्प के लिए **समनमन्**=सब प्राणी संनत होते हैं। **सः आर्ध्नोत्**=यह वायुतत्त्व ही—क्रियाशीलता का संकल्प ही (हृत्सु क्रतुम्) उन्हें सफल बनाता है। २. **यथा**=जैसे **अन्तरिक्षे**=हृदयान्तरिक्ष में **वायवे**=क्रियाशीलता के संकल्प के लिए **समनमन्**=संनत होते हैं, **एव**=इसीप्रकार **मह्यम्**=मेरे लिए **संनमः**=अभिलषित फलों की प्राप्तियाँ **संनमन्तु**=संनत हों।

भावार्थ—हृदयान्तरिक्ष में वायु ही मुख्य देव है। इसके होने पर अन्य सब देवों की उपस्थिति होती ही है। क्रियाशीलता सब अभिलषितों को सिद्ध करती है।

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—वाय्वन्तरिक्षे ॥ छन्दः—संस्तारपङ्क्तिः ॥

अन्तरिक्ष धेनु का वायुरूप वत्स

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः। सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा॥ ४॥

१. **अन्तरिक्षम् धेनुः**=हृदयान्तरिक्ष ही एक गौ है, **वायुः**=क्रियाशीलता ही **तस्याः**=उसका **वत्सः**=बछड़ा है। **सा**=वह अन्तरिक्षरूप **धेनु वायुना वत्सेन** क्रियाशीलतारूपी बछड़े के साथ **मे**=मेरे लिए **इषम्**=अन्न को **ऊर्जम्**=अन्न-रस को, **कामम्**=अन्य अभिलषित पदार्थों को **दुहाम्**=प्रपूरित करे। २. **प्रथमं आयुः**=शतसंवत्सर के दीर्घजीवन को, **प्रजाम्**=उत्तम सन्तान व शक्तिविकास को **पोषम्**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग के पोषण को **रयिम्**=धन को हमें यह प्राप्त कराए। **स्वाहा**=मैं इस वायुतत्त्व के लिए—क्रियाशीलता के लिए अपने को अर्पित करता हूँ। हृदयान्तरिक्ष में क्रियाशीलता के संकल्पवाला होता हूँ।

भावार्थ—हृदयान्तरिक्ष में क्रियाशीलता का संकल्प होने पर सब इष्ट-पदार्थ प्राप्त होते हैं। दीर्घजीवन, अङ्ग-प्रत्यङ्ग की पुष्टि व आवश्यक धन की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—दिवादित्यौ ॥ छन्दः—त्रिपदामहाबृहती ॥

द्युलोक में आदित्य

दिव्या ऽऽदित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा दिव्या ऽऽदित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु॥ ५॥

१. **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **आदित्याय**=ज्ञानसूर्य के लिए **समनमन्**=सब संनत होते हैं। **सः**=वह ज्ञानरूप सूर्य **आर्ध्नोत्**=सफलता का कारण बनता है। २. **यथा**=जैसे **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **समनमन्**=संनत होते हैं—आदर के भाववाले होते हैं, **एव**=इसप्रकार **मह्यम्**=मेरे लिए **संनमः**=अभिलषित फलों की प्राप्तियाँ **संनमन्तु**=संनत हों।

भावार्थ—मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य ही प्रमुख देव है। इसके होने पर द्युलोक के अन्य सब देव उपस्थित होंगे ही। ज्ञान सब अभिलषितों को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—दिवादित्यौ ॥ छन्दः—संस्तारपङ्क्तिः ॥

द्युलोकरूप धेनु का आदित्यरूप वत्स

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः। सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा॥ ६॥

१. **द्यौः धेनुः**-मस्तिष्करूप द्युलोक धेनु है। **आदित्यः**-ज्ञानरूप सूर्य **तस्याः वत्सः** उसका बछड़ा है। **सा**-वह धेनु **वत्सेन आदित्येन**-ज्ञानरूप बछड़े के साथ **मे** मेरे लिए **इषम्** अन्न को, **ऊर्जम्**-रस को, **कामम्**-सब अभिलषित पदार्थों को **दुहाम्** प्रपूरित करे। २. **प्रथमं आयुः**-शतसंवत्सर का विस्तीर्ण जीवन **प्रजाम्**-उत्तम सन्तति व शक्ति विकास **पोषम्**-अङ्ग प्रत्यङ्ग का पोषण और **रयिम्**-धन हमें दे। **स्वाहा**-मैं इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए अपना अर्पण करता हूँ।

भावार्थ—मस्तिष्क में ज्ञान होने पर सब इष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं। दीर्घजीवन, अङ्ग-प्रत्यङ्ग का पोषण व आवश्यक धन इस ज्ञान से प्राप्त होता है।

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—दिक्चन्द्रमसः ॥ छन्दः—त्रिपदामहाबृहती ॥

दिशाओं में चन्द्रमा

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु॥ ७॥

१. **दिक्षु** पूर्व पश्चिम आदि शरीर के दिग्भागों में **चन्द्राय**-आह्लाद (विकास)-रूप चन्द्रमा के लिए **समनमन्** सब प्राणी संनत होते हैं। शरीर के सब प्रदेश आह्लादित व विकसित हों तो सबको अच्छा लगता है। **सः** वह आह्लाद व विकास **आर्ध्नोत्** सफलता प्राप्त कराता है। २. **यथा** जैसे **दिक्षु**-शरीर के सब प्रदेशों में **चन्द्राय**-आह्लाद व विकास के लिए **समनमन्**-संनत होते हैं, **एव**-इसी प्रकार **मह्यम्**-मेरे लिए **संनमः** अभिलषित फलों की प्राप्तियाँ **संनमन्तु**-संनत हों। सब शरीरावयवों के विकास में ही अभिलषित प्राप्ति होती है।

भावार्थ—शरीर के सब देश—अङ्ग आह्लादमय हों। ऐसा होने पर ही सब अभिलषित सिद्ध होते हैं।

ऋषिः—अङ्गिराः ॥ देवता—दिक्चन्द्रमसः ॥ छन्दः—संस्तारपङ्क्तिः ॥

दिशारूप धेनुओं का वत्स 'चन्द्र'

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः। ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा॥ ८॥

१. **दिशः धेनवः**-शरीर के सब दिग्भाग धेनुएँ हैं, तो **चन्द्रः** आह्लाद व विकास ही **तासाम्**-उनका **वत्सः**-बछड़ा है। **ताः**-वे दिशाएँ **वत्सेन चन्द्रेण** इस वत्सभूत चन्द्र (विकास) के साथ **मे**-मेरे लिए **इषम्**-अन्न को, **ऊर्जम्**-बलकर रस को तथा **कामम्** अभिलषित तत्त्वों को **दुहाम्** प्रपूरित करें। २. ये मुझे **प्रथमम्**-शतसंवत्सरपर्यन्त विस्तीर्ण आयुष्य **प्रजाम्**-शक्तियों का प्रादुर्भाव, **पोषम्** अङ्ग प्रत्यङ्ग का पोषण व **रयिम्**-उत्कृष्ट धन प्राप्त कराएँ। **स्वाहा** मैं इन चन्द्र शक्तियों के विकास व आह्लाद के लिए अपना अर्पण करता हूँ—पूर्ण प्रयत्न से इन्हें प्राप्त करने में लगता हूँ।

भावार्थ—शरीर के सब दिग्भागों के विकसित होने पर सब अभिलषित तत्त्वों की प्राप्ति

होती है। इसी से दीर्घ जीवन, शक्तियों का विकास व पोषण प्राप्त होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**जातवेदसोऽग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-स्मरण

अ॒ग्नाव॒ग्निश्च॑रति॒ प्रवि॑ष्ट॒ ऋषी॑णां पु॒त्रो अ॑भिशस्ति॒पा उ॑।
न॒म॒स्का॒रेण॒ नम॑सा ते जुहोमि॒ मा दे॒वानां॑ मिथु॒या क॑र्म भा॒गम्॥ ९॥

१. **अग्नौ**=प्रगतिशील जीव में **प्रविष्टः**=प्रविष्ट हुआ-हुआ **अग्निः**=अग्रणी प्रभु (तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशन्) **चरति**=सब क्रियाओं को करता है। एक ज्ञानी पुरुष सब कार्यों को अन्तःस्थित प्रभु की शक्ति से होता हुआ जानता है। यह प्रभु **ऋषीणां पुत्रः**=इन तत्त्वद्रष्टा पुरुषों को पवित्र करनेवाला (पुनाति) व त्राण करनेवाला (त्रायते) है। तत्त्वद्रष्टा पुरुष अन्तःस्थित प्रभु को देखते हैं। यह प्रभु-दर्शन उन्हें पवित्र हृदयवाला व नीरोग शरीरवाला बनाता है। **उ**=निश्चय से ये प्रभु **अभिशस्तिपाः**=हिंसन से बचानेवाले हैं। प्रभु को देखनेवाला ऋषि पापों व रोगों से आक्रान्त नहीं होता। २. हे प्रभो! मैं **ते**=तेरे प्रति **नमस्कारेण**=नमस्कार के साथ **नमसा**=हविर्लक्षण अन्न के द्वारा **जुहोमि**=अग्निहोत्र करता हूँ। हम **देवानां भागम्**=वायु आदि देवों के भजनीय इस हविर्लक्षण अन्न को कभी **मिथुया मा कर्म**=मिथ्या न करें—अग्निहोत्र की सारी प्रक्रिया को पवित्रता से करें।

भावार्थ—ऋषि सब कार्यों को अन्तःस्थित प्रभु की शक्ति से होते हुए देखता है। यह भावना इन्हें विनाश से बचाती है। प्रभु के प्रति नमन करते हुए हम सदा पवित्रता के साथ अग्निहोत्र करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**जातवेदसोऽग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पवित्र यज्ञ

हृ॒दा पू॒तं मन॑सा जातवेदो॒ विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्।
स॒प्तास्या॑नि॒ तव॑ जातवे॒दस्तेभ्यो॑ जुहोमि॒ स जु॑षस्व ह॒व्यम्॥ १०॥

१. हे **जातवेदः**=अग्ने! मैं **हृदा**=हृदय से—श्रद्धा से तथा **मनसा**=मन से—ज्ञानपूर्वक **पूतम्**=पवित्र हवि को **जुहोमि**=आहुत करता हूँ। हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! आप **विश्वानि**=सब **वयुनानि**=प्रज्ञानों को **विद्वान्**=जानते हैं। आपके स्मरण से मैं सदा पवित्र कर्मों को ही करनेवाला बनूँ। हे जातवेदः! **तव**=तेरे **सप्त आस्यानि**='काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरुची' इन नामोंवाली सात जिह्वाएँ (मुख) हैं। मैं **तेभ्यः**=उनके लिए इस हविर्लक्षण अन्न को आहुत करता हूँ। **सः**=वह तू **हव्यम्**=इस होतव्य पदार्थ का **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन कर।

भावार्थ—प्रभु हमारे सब विचारों को जानते हैं। हम प्रभु-स्मरण करते हुए सदा यज्ञादि पवित्र कर्मों को करनेवाले बनें।

विशेष—प्रभु-स्मरणपूर्वक पवित्र कर्मों को करता हुआ यह व्यक्ति वासना-विनाश द्वारा शरीर में शक्ति की ऊर्ध्वगतिवाला होता है। यह सब शत्रुओं को नष्ट करनेवाला शक्तिशाली 'शुक्र' बनता है। यह शुक्र ही अगले सूक्त का ऋषि है—

४०. [चत्वारिंशं सूक्तम्]

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**जातवेदः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्राची दिक् से

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशो ऽभिदासन्त्यस्मान्।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि॥ १॥

१. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **ये**=जो **पुरस्तात्**=सामने से—पूर्व दिशा से **जुह्वति**=(हु अदने) हमें खाने के लिए आते हैं, **प्राच्याः दिशः**=इस पूर्व दिशा से **अस्मान् अभिदासन्ति**=हमारा क्षय करना चाहते हैं **ते**=वे सब **अग्निम् ऋत्वा**=हमारे अन्दर स्थित अग्नितत्त्व को प्राप्त करके **पराञ्चः**=पराङ्मुख हुए-हुए **व्यथन्ताम्**=पीड़ित हों। मेरे अन्दर स्थित अग्नितत्त्व इन्हें दूर भगानेवाला हो। २. मैं **एनान्**=इन सब शत्रुओं को **प्रतिसरेण**=प्रतिसर के द्वारा—शरीर में उत्पन्न वीर्यशक्ति को अङ्ग-प्रत्यङ्ग में गतिवाला करके **प्रत्यग् हन्मि**=पराङ्मुख करके (प्रतीचीनम् निवर्त्य) नष्ट कर डालता हूँ।

भावार्थ—मेरे अन्दर का अग्नितत्त्व पूर्व से आक्रमण करनेवाले सब शत्रुओं को विनष्ट करनेवाला हो।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**जातवेदो यमः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

दक्षिण दिक् से

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशो ऽभिदासन्त्यस्मान्।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि॥ २॥

१. **ये**=जो **दक्षिणतः**=दक्षिणपार्श्व से **जुह्वति**=नष्ट करना चाहते हैं, **ते**=वे सब **यमम् ऋत्वा**=हमारे अन्दर स्थित नियन्त्रण की भावना को प्राप्त करके **पराञ्चः**=पराङ्मुख हुए-हुए **व्यथन्ताम्**=पीड़ित हों। मेरे अन्दर स्थित नियन्त्रण की भावना इन शत्रुओं को दूर भगानेवाली हो। २. मैं **एनान्**=इन शत्रुओं को **प्रतिसरेण**=प्रतिसर के द्वारा—शरीर में उत्पन्न वीर्यशक्ति को अङ्ग-प्रत्यङ्ग में गतिशील करके **प्रत्यग् हन्मि**=पराङ्मुख करके नष्ट कर डालता हूँ।

भावार्थ—मेरे अन्दर स्थित नियन्त्रण की भावना दक्षिणपार्श्व से आक्रमण करनेवाले सब शत्रुओं को विनष्ट करनेवाली हो।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**जातवेदो वरुणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रतीची दिक् से

ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशो ऽभिदासन्त्यस्मान्।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि॥ ३॥

१. **ये**=जो **पश्चात्**=पीछे से **जुह्वति**=हमें खाने को आते हैं, हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **प्रतीच्याः दिशः**=पश्चिम दिशा से **अस्मान् अभिदासन्ति**=हमारा उपक्षय करते हैं, **ते**=वे वरुणम् **ऋत्वा**=(वारयति) मेरे अन्दर स्थित द्वेष-निवारण—निर्द्वेषता की भावना को प्राप्त करके **पराञ्चः**=पराङ्मुख होकर **व्यथन्ताम्**=पीड़ित हों। २. मैं **एनान्**=इन शत्रुओं को **प्रतिसरेण**=शरीर में उत्पन्न सोम को अङ्ग-प्रत्यङ्ग में गतिवाला करके **प्रत्यग् हन्मि**=पराङ्मुख करके नष्ट कर डालता हूँ।

भावार्थ—मेरे अन्दर स्थित सौम्यता का भाव पीछे से आक्रमण करनेवाले सब शत्रुओं को

समाप्त कर देता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**जातवेदो भूमिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उदीची दिक् से

य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि॥ ४॥

१. **ये**=जो **उत्तरतः**=उत्तरभाग से **जुह्वति**=हमें खाने को आते हैं, हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **उदीच्याः दिशः**=उत्तर दिशा से **अस्मान् अभिदासन्ति**=हमारा उपक्षय करते हैं, **ते**=वे **सोमम् ऋत्वा**=हमारे अन्दर स्थित सोमतत्त्व को—सौम्यता—शान्ति को प्राप्त करके **पराञ्चः**=पराङ्मुख होकर **व्यथन्ताम्**=पीड़ित हों। २. मैं **एनान्**=इन शत्रुओं को **प्रतिसरेण**=शरीर में उत्पन्न सोम को अङ्ग-प्रत्यङ्ग में गतिवाला करके **प्रत्यग् हन्मि**=पराङ्मुख करके नष्ट कर डालता हूँ।

भावार्थ—मेरे अन्दर स्थित सौम्यता का भाव उत्तर से आक्रमण करनेवाले सब शत्रुओं को समाप्त कर देता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**जातवेदो भूमिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ध्रुवा दिक् से

ये३धस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि॥ ५॥

१. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **ये**=जो शत्रु **अधस्तात्**=नीचे की ओर से **जुह्वति**=हमें खाने को आते हैं, **ध्रुवायाः दिशः**=इस ध्रुवा दिक् से **अस्मान् अभिदासन्ति**=हमारा उपक्षय करते हैं, **ते**=वे शत्रु **भूमिम्**=(भवन्ति भूतानि अस्याम्) 'सब प्राणियों के कल्याण की कामना की वृत्ति' को **ऋत्वा**=प्राप्त करके **पराञ्चः**=पराङ्मुख होकर **व्यथन्ताम्**=पीड़ित हों। २. **एनान्**=इन शत्रुओं को **प्रतिसरेण**=शरीर में उत्पन्न सोम की अङ्ग-प्रत्यङ्ग में गति के द्वारा प्रत्यग् **हन्मि**=पराङ्मुख करके नष्ट कर डालता हूँ।

भावार्थ—हमारे हृदयों में सब प्राणियों के कल्याण की कामना हो। यह काम ध्रुवा दिक् से आक्रमण करनेवाले शत्रुओं का विनाश करेगी।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**जातवेदो वायुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

व्यध्वा दिक् से

ये३ऽन्तारिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि॥ ६॥

१. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **ये**=जो शत्रु **अन्तरिक्षात् जुह्वति**=अन्तरिक्ष से—मध्यलोक से हमें खाने को दौड़ते हैं **व्यध्वायाः**=विविध मार्गोंवाली (अध्वोंवाली) **दिशः**=दिशा से **अस्मान् अभिदासन्ति**=हमारा उपक्षय करते हैं, **ते**=वे शत्रु **वायुम्**=गतिशीलता के भाव को—हृदयस्थ कर्मसंकल्प को **ऋत्वा**=प्राप्त करके **पराञ्चः**=पराङ्मुख होकर **व्यथन्ताम्**=पीड़ित हों। २. **एनान्**=इन शत्रुओं को **प्रतिसरेण**=शरीर में उत्पन्न सोम के अङ्ग-प्रत्यंग में सरण के द्वारा **प्रत्यग् हन्मि**=पराङ्मुख करके नष्ट करता हूँ।

भावार्थ—हृदयों में कर्मशीलता का संकल्प व्यध्वा दिक् से आक्रमण करनेवाले सब शत्रुओं का विनाश करे।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**जातवेदः सूर्यः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ऊर्ध्वा दिक् से

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशो ऽभिदासन्त्यस्मान्।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि॥ ७॥

१. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **ये**=जो शत्रु **उपरिष्टात् जुह्वति**=ऊपर से हमें खाने को दौड़ते हैं, **ऊर्ध्वायाः दिशः**=ऊर्ध्वा दिक् से **अस्मान् अभिदासन्ति**=हमें उपक्षीण करते हैं, **सूर्यम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक में स्थित ज्ञानसूर्य को **ऋत्वा**=प्राप्त करके **ते**=वे शत्रु **पराञ्चः**=पराङ्मुख होकर **व्यथन्ताम्**=पीड़ित हों। २. **एनान्**=इन शत्रुओं को **प्रतिसरेण**=शरीरस्थ सोम के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में सरण के द्वारा **प्रत्यग् हन्मि**=पराङ्मुख करके नष्ट करता हूँ।

भावार्थ—मस्तिष्क में स्थित ज्ञानसूर्य के प्रकाश में ऊर्ध्वा दिक् से आक्रमण करनेवाले शत्रुओं का विलय हो जाता है।

ऋषिः—**शुक्रः** ॥ देवता—**जातवेदो ब्रह्मा** ॥ छन्दः—**परोऽतिशक्वरीपाद्युग्जगती** ॥

सब दिशाओं से

ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्यो ऽभिदासन्त्यस्मान्।
ब्रह्मर्त्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि॥ ८॥

१. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **ये**=जो शत्रु **दिशाम् अन्तर्देशेभ्यः**=दिशाओं के अन्तर्देशों से **जुह्वति**=हमें खाने को आते हैं, **सर्वाभ्यः दिग्भ्यः**=सब दिशाओं से **अस्मान् अभिदासन्ति**=हमारा उपक्षय करते हैं, **ब्रह्म**=उस सर्वव्यापक प्रभु की व्यापकता के स्मरण के भाव को **ऋत्वा**=प्राप्त होकर **ते**=वे शत्रु **पराञ्चः**=पराङ्मुख होकर **व्यथन्ताम्**=पीड़ित हों। २. **एनान्**=इन शत्रुओं को **प्रतिसरेण**=शरीरस्थ सोम के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में सरण के द्वारा **प्रत्यग्**=पराङ्मुख करके **हन्मि**=नष्ट करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु की व्यापकता का स्मरण सब दिशाओं से आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को विनष्ट करे।

सूचना—इस सूक्त में काव्यमयी भाषा में आक्रामक शत्रुओं के विनाश का बड़ा सुन्दर संकेत है। विविध दिशाओं से काम-क्रोध आदि शत्रु हमपर आक्रमण करते हैं। इनसे अपने को बचाने के लिए इन दिशाओं में 'अग्नि, यम, वरुण, सोम, भूमि, वायु, सूर्य व ब्रह्म' रूप पहरेदारों को नियुक्त करना है। आगे बढ़ने की भावना ही 'अग्नि' है, नियन्त्रण—संयम का भाव 'यम' है। निर्द्वेषता 'वरुण' है। सौम्यता का भाव 'सोम' है। 'सब प्रणियों के कल्याण की कामना' ही भूमि है, क्रियाशीलता वायु है। ज्ञान का सूर्य 'सूर्य' है तो सर्वव्यापक प्रभु का स्मरण ही 'ब्रह्म' है। ये आठ वृत्तियाँ पहरेदार हैं, ये हमें शत्रुओं के आक्रमण से बचाती हैं।

॥ इति चतुर्थं काण्डम्॥